बहता पानी

बहता पानी

मन्मथनाथ गुप्त

कवीन्द्र रवीन्द्र से लेकर शरतचन्द्र और आधुनिक से आधुनिक बँगला लेखक तक क्रान्तिकारी चरित्र की ओर आकृष्ट हुए हैं। हिन्दी में भी जैनेन्द्र तथा यशपाल इस पर अपना-अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत कर चुके हैं। एक क्रान्तिकारी होते हुए सैकड़ों छोटे-बड़े क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आ चुकने पर तथा उनके स्वीकृत इतिहासकार होने पर भी श्री मन्मथनाथ गुप्त ने अब तक अपने उपन्यासों में क्रान्तिकारी पात्र नहीं लिये थे। 'बहता पानी' में पहली बार वे क्रान्तिकारी चरित्रों को लेकर आते हैं, पर ये चरित्र सभी क्रान्तिकारियों का प्रतिनिधित्व नहीं करते। सव्यसाची उस युग में जेल से छूटकर बाहर आता है, जब उस ढंग के क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिए कोई गुंजाइश नहीं रह गई थी, जिससे वह बखूबी परिचित था। नये ढंग के क्रान्तिकारी आन्दोलन को पहचानकर अपनाने की बुद्धि या प्रशिक्षण उसे नहीं है। फिर भी गति तो उसमें है, इस कारण वह बहता है। उसी बहाव को लेकर इस उपन्यास की सृष्टि हुई है। सव्यसाची १९३६-३७ के युग का है अर्थात् प्राक पाकिस्तान युग का है, जब कि लाहौर भारत में था।

उन्हें—
जिनके लिए यह पुस्तक लिखी गई।

टन्...टन्.....टन्.....।

बरेली केन्द्रीय जेल के बाहर के घंटे में तीन बजे। सन्तरी ने घंटा बजाने की मुंगरी यथास्थान रख दी। फिर बन्दूक कंधे पर रखकर अर्द्ध-निद्रित अवस्था में चहलकदमी करने लगा। करीब-करीब साथ ही प्रतिध्वनि की तरह जेल के अन्दर के घंटे में टन्-टन् कर तीन बजे। रात्रि की निस्तब्धता में केवल तीन बार क्षीण खरौंच मार कर घंटे का घातक शब्द विलीन हो गया। जेल की असंख्य दीवारों, कोठरियों, कोलियों, अड़गड़ों में टकरा कर, ध्वनित-प्रतिध्वनित होकर घंटा बजने का शब्द क्षीणतर और दूरतर होते-होते अनन्त में खो गया।

फिर वही नीरव, निःस्पंद रात्रि।

ऊपर धवल नक्षत्रों का पहरा था। बीच-बीच में खूसट जाति की निशिचर चिड़ियों की चीख रात्रि की निस्तब्धता के सीने में पैनी छुरी-सी बैठ रही थी, और मानों उसी कर्कश आवाज़ के साथ होड़ लगाकर जेल की बैरकों में कैदियों की गिनती की कर्कश ध्वनि हो रही थी। प्रकृति मानो कैदी जगत् के प्रति समवेदना में बीच-बीच में डाढ़ मार कर रो उठती थी।

हड्डीतोड़ परिश्रम के बाद सभी कैदी रात में गहरी नींद सोते हैं। जो कैदी नितान्त अभागा है या रोगी है, जो अभी तक अपने अतीत में जी रहा है, जो अपने अतीत को नीरस वर्तमान के साथ समझौता कर सामंजस्य में नहीं ला सका है, वही इस समय जग रहा है। पर जेल के नियमानुसार उसे भी अपने बिछौने पर रहना पड़ता है। सोये या न सोये, कैदी को ऐसा बनना पड़ता है कि वह गहरी नींद में मस्त है। जेल-जीवन की करुण तथा हास्यास्पद विशेषता इन्हीं जैसी बातों में है। दुःखांत और सुखांत का अजीब समन्वय रहता है।

दूसरे चक्कर की दो नम्बर बैरक की ५२ नम्बर कोठरी में एक कैदी को नींद नहीं आ रही थी। वह न तो रोगी ही था, न सही मानो में अभागा ही था, और न उसके सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि वह अपने वर्तमान के साथ पैर मिलाकर चलने में असमर्थ था। आज सवेरे ही उसकी रिहाई है। इसलिए वह सोच रहा था, सोच रहा था, सोच रहा था......। उसके विचारों का कहीं ओर छोर नहीं था। विचारों की लहरें एक के बाद एक आकर उसकी नींद को कपूर की तरह उड़ा दे रही थीं। आंधी से विताड़ित पत्ते की तरह वह अपने टाट-फट्टे पर छटपटा रहा था, और करवटें बदल रहा था। उसने कई

बार उठ-उठ कर कुल्ला किया, मुंह पर पानी का छींटा दिया, दो घूंट पानी पीया, फिर बाँयी करवट लेटे रहने का प्रयत्न किया, पर जिस नींद के लिए यह साधना थी, वह नहीं आई, नहीं आई, नहीं आई, आकर भी नहीं आई। मजबूरन उसने अपनी अनिच्छा और अनजाने में चिन्ता के मृदु स्रोत के निकट आत्म-समर्पण कर दिया।

जब तीन घंटा बजा, तब सव्यसाची ने फिर संकल्प किया कि नींद की आखिरी चेष्टा की जाय। उसने फिर उठकर तसले से पानी लेकर मुंह पर पानी के छींटे डाले, कुल्ला किया, कोई पाव भर पानी पीया, और फिर वह अपने कम्बल पर लेट गया। लोहे के गोल छड़ोंवाले जंगले के बीच से उसने एक बार बाहर उन्मुक्त आकाश की ओर देखा। जहाँ पर शुक्रतारा होना चाहिए था, वहाँ वह दिखाई नहीं दिया। उसने एक लम्बी सांस ली। अभी जेल के खुलने में तीन घंटे बाकी थे। तीन घंटे के लिए यदि नींद आ जाय, तो क्या कहने।

पर नींद आती, तब न। नींद नहीं आई। चिन्ताओं और विचारों का वही तांता जारी रहा। उसने कुछ देर तक और मानसिक संग्राम किया कि सो जाय, पर परास्त होकर उसने हाथ पैर बांधकर अपने को चिन्ताओं के हाथों में अर्पित कर दिया। उस समय पूर्व दिशा में कुछ-कुछ आलोक का संचार हो चला था। उस रात का आखिरी गश्त आया, और चला गया। गश्तवालों के जूतों का सम्मिलित शब्द ध्वनि-प्रतिध्वनि उत्पन्न कर एक दुःस्वप्न की तरह विलीन हो गया।

... ...

यह कोई पांच, साढ़े पांच वर्ष की बात है, जब सव्यसाची ने इस जेल के अन्दर कदम रखा था। उसके बाद पूरा एक युग गुजर गया है, इस बीच में, जाति और व्यक्ति के जीवन में कितनी ही घटनाएं घटित हुई हैं, वह मातृ-हीन हो गया।

सव्यसाची घर पर पकड़ा नहीं गया था, इसलिए मां की उस समय की अवस्था को जानने का इसे अवसर प्राप्त नहीं हुआ था। पर वह उसकी कल्पना तो कर ही सकता था। इस बीच में उसकी मां कई बार उससे जेल में मिलने भी आई थी। जितनी बार वे आईं, उनके चेहरे पर एक मलिन उदास हँसी थी। इस हँसी में एक ऐसी बात थी, जिसे देखकर सव्यसाची अपनी मां की मानसिक अवस्था को समझ जाता था। उसकी मां सुखी नहीं थी। कोई भी माता, विशेषकर विधवा माता उस अवस्था में सुखी नहीं हो सकती, जबकि उसके

इकलौते लड़के को छः वर्ष की सख्त कैद हो चुकी हो। वे तब से केवल मानसिक कष्ट में ही रहीं, ऐसी बात नहीं, उनका स्वास्थ्य भी जवाब दे रहा था। प्रत्येक भेंट के अवसर पर यह बात अधिकाधिक स्पष्ट होती जाती थी।

सव्यसाची की माँ स्नेहलता की शिक्षा रामायण, महाभारत और सुखसागर से आगे नहीं थी। राजनीति से तो उनका कभी कोई भी सम्बन्ध नहीं था। उनका जगत् उनके परिवार तक ही सीमित था। पर इस कारण न तो वह संकीर्ण विचारों की थीं, और न स्वार्थपर ही। पूजापाठ और गंगा स्नान में उनका बहुत कुछ समय निकल जाता।

सव्यसाची ने जब से उग्र क्रान्तिवाद को अपनाया, तब से अपनी माँ का पूजा-पाठ उसे अप्रिय लगता था। एक सर्वग्रासी खीझ से वह शिवलिंग, फूलों की टोकरी तथा पूजा के अन्य उपकरणों को देखता था, पर वह मुँह खोल कर कुछ कहता नहीं था। सव्यसाची इतने ऊँचे बौद्धिक स्तर पर पहुँच गया था कि वहाँ कदाचित् असहिष्णुता का कोई स्थान नहीं था। फिर मां से असहिष्णुता क्या? सो भी विधवा माँ, जो सारा पूजापाठ उसी के लिए करती थी।

पर आज कैदी-जीवन की अन्तिम छोर पर पहुँच कर माँ की प्रत्येक बात स्मरण कर उसे वेदना मिश्रित आनन्द ही हो रहा था। साथ ही, अब वह माता नहीं रहीं यह स्मरण कर उसे बहुत दुःख हो रहा था। उसे वह दिन खूब याद है, जब एक पोस्टकार्ड हाथ में लेकर जेलर ने उसे माता की मृत्यु का दुःखद समाचार दिया था। उसी के मुहल्ले के एक भले आदमी ने दया कर उसे यह खबर भेजी थी।

फिर इसके बाद गत तीन वर्षों से उसे बाहर का कोई समाचार नहीं मिला था।

जेलर ने उसे वह पोस्टकार्ड देते हुए सहानुभूति का एक शब्द कहना चाहा था, पर उसने जेलर को एक आज्ञासूचक इंगित से चुप कर दिया था, कहा था—'नहीं-नहीं', उनके लिये यह मुक्ति है। जरा इन चीजों को माँ की दृष्टि से तो देखिए। उनके जीवन कष्टों की लम्बी शृंखला के अतिरिक्त क्या था? जब से मैं पकड़ा गया, तब से उनको कितने ही कष्ट झेलने पड़े।' फिर रुक कर रुँधे से गले से बोला, 'जीवन में उन्हें सुख की कौन सी आशा थी!'

जेलर किंकर्तव्यविमूढ़-सा होकर यह नहीं समझ पाया कि क्या कहे, सँभल कर बोला—'तो आपके छूटने में अब देरी ही कितनी थी, जल्दी ही तो आप उनके पास लौट जाते......।'

'वाह, अभी तो तीन साल रहते हैं !'

'तीन साल क्या हैं !'—कह कर जेलर ने कैदियों के एक नम्बरदार को दिखाते हुए कहा, 'देखिए न इस तफसीसिंह को, इसे जेल में असली चौदह साल हो गये हैं। रेमिशन (छूट) के साथ पच्चीस काटने का हुक्म आया है, पर वह समझता है, आज छूटा कल छूटा !' कह कर जेलर ने दुलार दिखलाने के लिए अपनी लाठी के अग्रभाग से तफसीसिंह को धक्का दे दिया। तफसीसिंह ने इस प्रकार चेहरा बनाया, मानो वह कृतार्थ हो गया हो। दूसरे कैदी तथा नम्बरदारों ने तफसीसिंह की तरफ ईर्ष्यापूर्ण नेत्रों से देखा। यह तफसीसिंह जेलर का खास एजेण्ट था।

सव्यसाची जेलर की बातों पर कोई ध्यान न देकर पोस्टकार्ड को ध्यान से पढ़ता रहा, मानो उसके प्रत्येक शब्द में कोई गम्भीर अर्थ निहित हो। कार्ड में केवल इतना ही लिखा था कि विगत शनिवार को रात के ग्यारह बजे उसकी मां की मृत्यु हो गई। क्या रोग था, कितने दिनों से रोग था, मरते समय पास कोई था या नहीं, इस सम्बन्ध में पत्र-लेखक ने कुछ नहीं लिखा था। अवश्य ही पत्र-लेखक ने प्रचुर सहानुभूति व्यक्त करने के बाद भगवान् के निकट यह प्रार्थना की थी कि वे उसे इस भयंकर विपत्ति को सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

पर सव्यसाची पत्र-लेखक की सहानुभूति का भूखा नहीं था। वह पत्र की पंक्तियों तथा अक्षरों के बीच कुछ दूसरी ही बातें तथा दूसरे ही ब्यौरे ढूँढ़ रहा था। हम किसी भी बात की एक पृष्ठभूमि के बगैर कल्पना नहीं कर सकते, न मृत्यु की ही कल्पना कर सकते हैं। सव्यसाची कार्ड में अपनी माता की मृत्यु की पृष्ठिभूमि ढूँढ़ रहा था, पर उसे वह प्राप्त नहीं हो रही थी।

आज तीन वर्ष बाद भी माँ की मृत्यु की परिस्थितियाँ उसके निकट रहस्य ही थीं। सव्यसाची ने पहले ही हिसाब करके देखा था कि जब वह वर्षों बाद रिहा होगा, उस समय इस रहस्य को उद्घाटित करने के जितने मार्ग हैं, वे सब के सब कभी न खुलने के लिए बन्द हो जायेंगे। कौन इतने दिनों बाद भी अपनी स्मृति में एक स्त्री की मृत्यु की बातों को ब्यौरेवार संचित रखेगा ? किसे इतनी ग़रज़ होगी ?

जेलर ने जब देखा था कि वह पोस्टकार्ड पढ़ने में दत्तचित्त है, तो वह मौका जानकर दलबल सहित खिसक गया। सव्यसाची ने उसे जाते देखा ही नहीं। जब उसने पोस्टकार्ड पढ़ कर सिर उठाया, तो देखा कि जेलर चक्कर के बीच में कुर्सी पर बैठ कर रोज की तरह दरबार कर रहा है।

बिछौने पर लेटे-लेटे आज ये सब बातें उसे याद आ रही थी। आज ही जैसे पहली बार उसने माँ की मृत्यु के पूर्ण अर्थ को समझा। इतने दिनों से वह रिहाई की प्रतीक्षा व्याकुलता एवं उत्सुकता से कर रहा था; आज उसे लगा, जैसे उसके लिए इतने अधैर्य की कोई आवश्यकता नहीं थी। उसे अब यह समझ में नहीं आ रहा था कि रिहाई की क्यों इतनी उत्सुकता थी। लेटे-लेटे छत की तरफ घूरते हुए उसने सोचा—सब कुछ निःसार है, मिथ्या है। समग्र जीवन के प्रति उसने एक तटस्थ उदासीन भाव धारण किया—दार्शनिक तो वह था ही। इतने में उसे स्मरण आया उसका मित्र वैद्यनाथ इतने दिन तक छूट गया होगा, और बनारस में ही होगा। इस विचार से उसके ठंडे खून में जैसे एकाएक फिर से बिजली दौड़ गई। वैद्यनाथ के नाम की याद आते ही उसमें स्मृतियों का एक समग्र जगत् कुलबुला उठा। एक विस्मृत, पर आनन्दमय तरंगों से युक्त दुनिया धीरे-धीरे उसमें सिर उठाने लगी।

ओह, यह वैद्यनाथ! उसका परम मित्र, आदर्शवादी, विद्वान और मितभाषी! वह क्रान्तिकारी दल के कर्णधारों में से था। बुद्धिजीवी होते हुए भी वह दूसरों को विपत्ति में डाल कर स्वयं तमाशा देखने वाला क्रान्तिकारी नहीं था। सब तरह की विपत्ति के कामों में वह सर्व प्रथम था, फिर भी पुलिस को उसके विरुद्ध अधिक प्रमाण न मिल सकने के कारण उसे मात्र चार साल की सजा हुई थी।

सव्यसाची ने सोचा, यात्रा एक, पर फल पृथक् था, और मजे की बात यह थी कि सब सोचते थे कि सव्यसाची को सजा ही नहीं होगी। पर उसकी बारी जब आई तो उसे सात वर्ष की सजा हुई, वैद्यनाथ से दो साल अधिक। आज यह बात स्मरण कर सव्यसाची को हँसी आ रही थी। उसने अनुभव किया कि उसे यह जो वैद्यनाथ से तीन साल अधिक सजा हुई थी, यह अच्छा ही हुआ।

महायुद्ध छिड़ते ही जिस जोश के वशवर्ती होकर सव्यसाची ने अपने को युद्ध विरोधी क्रान्तिकारी कार्यों में डाल दिया था, इसमें सन्देह नहीं कि उसने मनसा-वाचा-कर्मणा अपने आपको इस भँवर के सुपुर्द कर दिया था, जो कुछ भी किया अपनी तरफ से कुछ उठा नहीं रखा था—आज उसने अवाक् होकर देखा कि अब उसके खून में वह जोश नहीं है। इस बात को हृदयंगम कर वह आतंकित सा हो गया।

इस प्रकार अंड-बंड तरीके से सोचते-सोचते सव्यसाची को जरा-सी

झपकी आ गई। जब वह मुश्किल से पाँच मिनट सो कर जागा, तो सींखचों से दीखने वाला आसमान प्रायः साफ हो चुका था। पचसा होने में कुछ ही देर थी। बाहर बैरक में एक तरुण कैदी मधुर कंठ से गा रहा था—गाने के अन्दर जैसे अपनी सारी आत्मा को ढाल कर—

"हे प्रभो! आनन्द दाता,
ज्ञान हमको दीजिए।
लीजिए हमको शरण में,
हम सदाचारी बनें॥"

इस गाने को सव्यसाची ने जीवन में असंख्य बार सुना था। इसी बैरक में वह गत तीन महीनों से इस गाने को आँधी-पानी में किसी प्रकार का व्यवधान न देकर नित्य-प्रति सुनता आ रहा था। इस गाने को सुनना बैरक वालों के जीवन का एक अंग हो गया था। पर आज उसे इस गाने के स्वर में एक भाषातीत आनन्द का इंगित मिला, जिसे वह स्पष्ट रूप से समझ न सका, पर जो निमिष के अन्दर ही आनन्द और तृप्ति की वार्ता के रूप में उसकी नस-नस में परिव्याप्त होकर प्रवाहित हो गया। रात में जागने के कारण उसमें जो क्लान्ति आई थी, वह फौरन जाती रही। वह अपने जंगले के पास जा कर बैठ गया। मन्द-मन्द मलय ने आकर उसके माथे पर, चेहरे पर अपनी ठंडी उँगलियाँ-सी फेर दीं, जिससे उसके मन की सारी उदासीनता लुप्त हो गई।

गायक कैदी ने बड़ी देर तक गाने को गाया। एक-एक पंक्ति को उसने पाँच-पाँच छः-छः बार गाया। दीवार-दीवार से उसकी प्रतिध्वनि उठ रही थी। लोहे के जंगले भी मानो सितार के तारों की तरह झनझनाने लगे। कैदियों के हृदयों में एक अनिर्वचनीय भाव उठ रहा था, जो न तो ठीक हर्ष ही था और न ठीक विषाद ही था। गायक गा रहा था—

"ब्रह्मचारी, धर्मरक्षक, वीर, व्रतधारी बनें।"

बैरक की मेहराबदार पक्की छत इस स्वर से प्रतिध्वनित हो उठी। एकाएक गायक ने आखिरी तान ली, और चुप हो गया। बड़ी देर तक गाने की प्रतिध्वनि वायु में तैरती-उतराती रही, मानो उसकी पवित्रता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए ही कैदी बड़ी देर तक चुप रहे।

सव्यसाची पचासा के साथ दरवाजों के खुलने की प्रतीक्षा करने लगा। इस विचार ने कि आज दरवाज़े खुलने के बाद उसको लेकर फिर उन्हें बन्द नहीं होना है, उसे अधीर कर दिया। उसे ऐसा लगा मानो आज जेल खुलने में देर हो रही है।

यथासमय तुमुल शब्द कर जेल के खुलने का सूचक पचासा बज उठा, और साथ ही साथ मानो उसकी प्रतिध्वनि करती हुई प्रत्येक बैरक में कैदियों को जगा कर उठाने के लिये छोटी-छोटी घंटियाँ बज उठीं।

सव्यसाची के लिये इसके खुलने के साथ जेल के सब ताले खुल गये। पर इससे जेल के तालों को कोई क्षोभ नहीं था। उनमें कोई न कोई तो बन्द रहेगा ही। ताले इस बात को जानते थे; इसी कारण शायद वे उसकी तरफ उदासीन रूप से देखते हुए मानो टैनिसन की नदी की तरह कहते रहे "मनुष्य आते-जाते रहते हैं, पर मेरा आसन चिरन्तन है।"

: २ :

दस बजते-बजते दफ्तर में सव्यसाची का बुलावा आया। पहले उसका कैदी पहनावा बदल कर बाहर के कपड़े पहनाये गये। ये कपड़े वे नहीं थे, जिन्हें पहनकर वह अदालत में सजा सुनने के दिन गया था। वे कपड़े तो बहुत पहले ही नीलाम कर दिये गये थे, और नीलाम से मिले हुए कहकर एक रुपया आठ आने पैसे उसके नाम से जमा करा दिये गये थे। इस समय उसने जो कपड़े पहने, वे अभी कुछ दिन हुए जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट की अनुमति लेकर स्थानीय खद्दर-भण्डार से मंगाये गये थे।

कुर्ता ठीक नाप लेकर नहीं बनाया गया था, इस कारण, कुछ ढीला था, पर जेल की पोशाक से कहीं अच्छा था। सव्यसाची की उम्र इस समय २७ वर्ष की थी, इसलिए नया कुर्ता पहन कर खुश होने की उम्र नहीं थी, फिर भी आज साढ़े पांच साल बाद आदमी की तरह कपड़े पहन कर वह प्रायः बच्चों की तरह खुशी का अनुभव करने लगा, यद्यपि उसकी मां मर चुकी थी।

इसके बाद उसकी अपनी और जो चीज़ें थीं—पुस्तकें, रुपये आदि उन्हें मिलाकर उसने देख लिया कि ठीक हैं या नहीं। फिर उसकी रिहाई के कागज़ तैयार हुये, और बार-बार तरह-तरह से इस बात की पुष्टि की गई कि वही सव्यसाची है या नहीं। अन्त में नायब साहब ने उसे सहज शिष्टाचारवश कहा—"आप कुछ ख्याल न करें, यह सब हमारी ड्यूटी है, आपको परेशान करने के उद्देश्य से हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं। ऐसा हम हमेशा करते हैं।"

सव्यसाची ने सोचा यह 'ड्यूटी' शब्द भी कितना अजीब है कि जज देशभक्त को जेल भेजता है, जेलर उसे जेल में रखता है, जल्लाद उसे फाँसी पर चढ़ाता है। उसके चेहरे पर हँसी की एक पतली रेखा फैल गई। उस हँसी में

कुछ घृणा का रंग भी घुला था, पर ऊपर से उसने कहा—"नहीं नहीं, मैं कुछ ख्याल नहीं कर रहा हूँ। आप अपनी ड्यूटी करते जाइये, कहिये तो एक बार और पिता का नाम बता दूँ।"

नायब मुस्कराया। रिहाई के कागज़ तैयार करते समय वह रोज मुस्कराता था, बोला—"नहीं, अब आपको कष्ट करना न पड़ेगा, आपकी रिहाई के कागज़ तैयार हो गये," कह कर वह दूसरे कैदियों के कागज़ देखने लगा।

सव्यसाची पास की एक कुर्सी पर बड़े साहब की प्रतीक्षा में बैठा रहा। उनके आने पर ही उसे तथा दूसरे रिहाई वालों को पेश किया जायगा।

दफ्तर के जिस भाग में वह बैठा था, उसमें तरह-तरह के आकार की अलमारियों की पंक्तियों में कैदियों के वारंट तथा दूसरे कागज़ पड़े हुए थे। कमरा पुराने कागज़ों की गंध से 'महँक' रहा था। चारों तरफ जहाँ देखो, वहाँ बड़े-बड़े रजिस्टर रखे थे। एक ओर दीवार पर सन् १६४४ का कैलण्डर लटक रहा था। चालान वाले कैदियों को बेड़ी पहना कर जोड़े से बैठा रखा था। जो तीन कैदी आज रिहा होने वाले थे, वे अपने निजी कपड़े पहन कर कैदी और जेल के बाबुओं के बीच एक अजीब जीव मालूम पड़ रहे थे। वे न तो अपने को ठीक कैदी ही समझते थे, और न अपने को स्वतंत्र नागरिक ही समझ रहे थे। सव्यसाची की बात और थी। वह तो जेल के बाबुओं जैसा ही जान पड़ता था। अन्य रिहाई वाले कैदी अपनी इस 'आधा तीतर आधा बटेर' वाली हालत को अच्छी तरह समझते थे। यह बात उनका चेहरा देख कर कोई भी अनाड़ी व्यक्ति समझ सकता था। वे अपने को कुछ स्थानच्युत-सा पा रहे थे।

बड़े साहब बारह बजे बंगले से आयेंगे, तब तक इन सब की जड़भरत की तरह बैठा रहना पड़ेगा। सव्यसाची ने पास पड़े नायब साहब के अखबार को उठा-कर उलटना शुरू किया, पर उसकी मानसिक अवस्था ऐसी नहीं थी कि वह कुछ समझ सके, इसलिए वह विज्ञापनों पर आँखें फेरने लगा, पढ़ना तो दूर रहा। वह सोच रहा था। इसी दफ्तर में पाँच या साढ़े पाँच वर्ष पहले बेड़ी पहने हुए खतर-नाक कैदी के रूप में उसने रात के बारह बजे प्रवेश किया था। उस दिन वह कैद काटने के लिए आया ही था, उसका हिसाब अभी शुरू ही हो रहा था, और आज वह यहाँ का सब हिसाब खत्म कर के जा रहा है। अन्त में यह दिन भी आ ही गया। इसमें हर्ष अवश्य था, पर माँ जीवित रहती तो बात और ही होती। वह छूट जरूर रहा है, पर बाहर की दुनिया में कोई उत्सुकता से उसकी

मुक्ति की प्रतीक्षा नहीं कर रहा है। वह जगत् में किसी के निकट अति आवश्यक नहीं है, किसी का जीवन उसकी रिहाई के बिना तो पंगु ही हुआ जा रहा है, न व्यर्थ। रहे देशवासी, वे लोग शायद यह जानते ही नहीं होंगे कि सव्यसाची नाम का कोई व्यक्ति भी है। इस बीच जो आन्दोलन चला था, वह शायद दबा दिया गया। उसकी गड़गड़ाहट इस केन्द्रीय जेल तक पहुँची थी, पर अधिक नहीं। देश अब भी पराधीन ही है। यह बात स्मरण कर उसका हृदय अवरुद्ध अभिमान की ताड़ना में झकोले खाने लगा। छोटी-छोटी आवश्यकताओं से वंचित होकर जेल के एक अज्ञात कोने में उसने इतना समय बिता दिया है, यह जो दिन के बाद दिन, महीने के बाद महीने छोटे दायरे में बन्द रह कर व्यतीत किये हैं, यह क्यों ? क्यों ? कहाँ इसकी सार्थकता है ?

जिन शब्दों द्वारा वह अब तक इन प्रश्नों का उत्तर देता आया था, वे इस समय उसके निकट व्यर्थ प्रतीत होने लगे। पर यह भाव अधिक क्षण तक स्थायी नहीं रहा। यह केवल उसका एक दुर्बल मुहूर्त्त था। निरन्तर अभ्यास के ही कारण हो अथवा आशीर्वाद की अपरिहार्य क्षमता के कारण, वह जल्दी ही असन्तोष की कड़ी धूप से आत्म-सन्तोष की अवस्था की श्यामल छाया में लौट आया। उसने सोचा कि चाहे उसका सारा आदर्श पोला और मिथ्या हो, पर इसमें शिकायत की क्या बात है ? इसी भारतवर्ष में करोड़ों लोग ऐसे हैं, जो दो जून पेट भर खाना नहीं पाते, रोग में दवा नहीं पाते, पहनने के लिए कपड़ा नहीं पाते, अच्छी तरह शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाते। वह तो जेल में भी इन अभागों से अच्छी हालत में था। फिर कहाँ उसका वह त्याग है, जिसके बूते पर वह अपने को जनता का सेवक एवं उद्धारक सोचता आया है ? कहाँ है वह त्याग ? कहाँ ? किस बात में है ?

सव्यसाची और चाहे कुछ भी हो, और उसकी भावधारा में चाहे जो कुछ भी गड़बड़ी हो, उसने सच्चे हृदय से यह मान लिया था कि सब मनुष्यों को समान सुविधा मिलनी चाहिए। यहीं पर उसकी विचारधारा का 'सेफ्टी-वल्व' था। इसी कारण वह अपने लक्ष्य से इधर-उधर हट कर भी, अन्त तक राह पर आ ही जाता था।

× × ×

वह जिस समय अपने जीवन और उसके आदर्शों की मन हीमन समीक्षा करने में इस प्रकार व्यस्त था, उसी समय उसकी कुर्सी के पास बैठा हुआ एक कैदी, जिसका किसी अन्य केन्द्रीय जेल में चालान हो रहा था, उसके हाथ के

अखबार की ओर लोलुप दृष्टि से देख रहा था। अक्षर-ज्ञान-शून्य होने पर भी वह अखबार की पंक्तियों की ओर ऐसी तीव्र दृष्टि से देख रहा था, मानों केवल प्रबल इच्छाशक्ति के बूते पर ही वह उनका मतलब निकाल लेगा। उसकी सजा बीस वर्ष की थी, जिसमें से सात उसने काट लिये थे। अब बाकी सजा काटने के लिए उसे इस कारण से दूसरी जेल में भेजा जा रहा था कि वह यहाँ बहुत अधिक प्रभावशाली हो गया था। वह सजा की बात नहीं सोच रहा था; वह सोच रहा था कि इस बीच में अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में ऐसा कोई परिवर्तन उपस्थित होगा, या ऐसा कुछ हो जायगा, जिससे उसे अपनी पूरी सजा नहीं काटनी पड़ेगी। इसी कारण अखबारों के सम्बन्ध में उसे विशेष प्रेम है, और जो लोग अखबार पढ़ते हैं, उनके पास वह जाना चाहता है। जब ऐसा कोई आदमी बात करता है, तो उसके कान खड़े हो जाते हैं। कोई भी मुहूर्त्त वह शुभ मुहूर्त्त हो सकता है, जब उसके दुखों का अवसान हो जाय।

अपने विचारों में गले तक डूबे हुए सव्यसाची को ऐसा प्रतीत हुआ मानो किसी ने धीरे से उसके पैर में एक चिकोटी काटी। उसने अखबार से आँखें उठा कर जब देखा तो उसका सामना उसकी कुर्सी से सट कर बैठे हुए एक कैदी के बत्तीस दाँतों से हुआ, जिसने इतने धीरे से कि नायब साहब सुन लें, कहा, 'बाबू, कुछ खबर है?'

उसने प्रतीक्षा-ज्वर से ग्रस्त आँखों द्वारा सव्यवाची की ओर देखा, मानो इसी प्रश्न के उत्तर पर उसका जीवन निर्भर हो।

सव्यसाची इस कैदी को जानता था। वह यह भी जानता था कि यह व्यक्ति अपने चालान से नाराज है, तथा केवल एक सान्त्वना के लिए ही इस प्रकार का कौतूहल प्रदर्शित कर रहा है। सव्ससाची के मन में इच्छा हुई कि स्पष्ट कह दे कि अभी छूटने-छाटने की कोई बात नहीं है, पर जब उसने उसके वेदना-पीड़ित प्रतीक्षा से उठे हुए चेहरे तथा आँखों की ओर देखा, तो उसमें करुणा का उदय हो आया। सव्यसाची ने समझ लिया कि आज इसे तसल्ली की बहुत सख्त जरूरत है—चाहे वह तसल्ली कितनी भी झूठी तथा निराधार क्यों न हो।

ऐसी मानसिक अवस्था में सांत्वना अपना काम करती है, यहाँ तक कि जब यह भी मालूम हो कि तसल्ली के साथ तथ्य का कोई सम्बन्ध नहीं है। मनुष्य जब ऐसी मानसिक अवस्था में होता है, तो बाहर से यदि सांत्वना न भी आवे तो मन मिथ्या कल्पना की निहाई पर तसल्ली की बैसाखी तैयार

कर लेता है। इसी प्रकार जीवन अन्तिम क्षण तक संग्राम कर आत्म-प्रकाश की चेष्टा करता है। मरण के विरुद्ध जुआ खेलते हुए जीवन इस प्रकार के कई सीसे से भरे पाँसों का प्रयोग करता है।

सव्यसाची ने एक बार अखबार की तरफ और उस आदमी की तरफ देखा। कैदी ने फिर चुपके से पूछा, 'बाबू, कुछ खबर सुनाइये...।'

सव्यसाची ने ऐसे इसे सुना, 'बाबू, कुछ आशा की बातें सुनाइये...'

सव्यसाची ने अखबार बिल्कुल नहीं पढ़ा था, इसलिए सुनाता भी तो क्या सुनाता ? उसने देखा कि यदि यही बात प्रश्नकर्ता से कहे, तो वह समझेगा, झूठ कह कर जान छुड़ा रहा है। उसने यों ही कहा—'सब अच्छा ही रहेगा।'

कुछ आश्वस्त, पर पहले से सजग होकर कैदी ने फिर पूछा—'कैसा ?'

सव्यसाची ने कहा, 'तुम मुझे ही देखो न। जिस दिन मुझे सजा हुई थी, उस दिन मैंने सोचा था कि इतने साल कैसे कटेंगे,कट ही नहीं सकते, और आज ? आज मैं बाहर जा रहा हूँ।

कैदी का चेहरा आशा के आलोक से जगमगा उठा। सव्यसाची कहता गया, 'सब दिन एक से नहीं जाते, सुख के बाद दुःख, और दुःख के बाद सुख, यही तो जिन्दगी है।'

इस प्रकार की बातचीत में कुछ समय निकल गया। पास बैठे हुए दो एक और कैदी भी नायब साहब की नजर बचाकर उनकी बातचीत में शामिल हो गये। नायब साहब का ध्यान इस ओर न हो ऐसी बात नहीं, पर जो कैदी अभी रिहा होंगे, उन पर रोब गाँठना व्यर्थ है, इतना वह भी जानता था।

ठीक बारह बजे जेल का बड़ा फाटक भीषण शब्द करता हुआ खुल गया, और चारों तरफ लोग दबी आवाज़ में कहने लगे—"साहब! साहब!" जेल के दूरतम कोने तक प्रतिध्वनि पहुँची 'साहब! साहब!' नायब साहब जरा ऊँघ रहे थे। वे एकदम अपनी खुली हुई बत्तीसी को बन्द कर कलम उठा कर इस प्रकार लिखने याने खानापूरी करने लगे, मानो सृष्टि के आदि से वे ऐसा ही करते आ रहे हैं। कैदी सम्हल गये। सव्यसाची भी अपनी अनजान में कुछ सिमटा। उससे बात करता हुआ कैदी दूर हट गया, मानो सव्यसाची के अस्तित्व से वह अपरिचित हो। रजिस्टर और कागज़ों को ढंग से रख दिया गया। ऐसा मालूम हुआ कि जेल की दीवारें भी डर कर अपनी-अपनी जगह पर सम्हल कर खड़ी हो गईं।

सव्यसाची ने दफ्तर के बाहर की ओर के जंगले से देखा कि बूढ़ा कर्नल मैनिंग साक्षात् धूमकेतु की तरह जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाता हुआ जेल की ओर आ

रहा है। आज उसे देखकर सव्यसाची का मन आनन्द से पूरित हो गया। बात यह है कि उसकी रिहाई की पूर्णाहुति उसी के हाथों से होनेवाली थी।

: ३ :

पश्चिम से आती हुई मेल के एक डिब्बे में एक पंजाबी महिला, नौकरानी तथा बहुत से बक्सों और पोटलियों के साथ, यात्रा कर रही थीं।

मेल होने पर भी कमरे में अधिक भीड़ नहीं थी। जिस तरफ यह महिला तथा उनकी नौकरानी थीं, उधर की दो बेंचें शुरू से उनके कब्जे में थीं। एक तो वे स्त्रियाँ थीं, दूसरे गाड़ी में कोई जगह की कमी नहीं थी, इसलिए किसी ने उनकी बेंचों पर लोलुप दृष्टि नहीं डाली। पंजाबी महिला की यात्रा बड़े मजे में पूरी हो रही थी।

पंजाबी महिला की उम्र ४५ के ऊपर होगी। उन्हें गतयौवना कहा जा सकता है, पर उनकी रूपराशि के खंडहर को देखते ही पता लगता था कि वे कभी असाधारण रूप लावण्यमयी रही होंगी। उनकी बातचीत, बैठने-उठने के ढंग को देखने पर ऐसा ज्ञात होता था कि वे सम्भ्रान्त घराने की हैं, तथा शासन करने में अभ्यस्त हैं। कमरे के दूसरे यात्रियों की ओर न तो वे ताक रही थीं, न वे किसी से कुछ बात ही कर रही थीं। बीच-बीच में जब गाड़ी ठहरती थी, तो अपनी ऊँघती हुई नौकरानी प्रेमा से पंजाबी में पूछ लेती थीं—'कौन-सा स्टेशन है ?'

नौकरानी बैंगनी रंग के अपने दुपट्टे को सम्हाल कर उठती और जंगले से मुँह निकाल कर किसी कुली या कर्मचारी से पूछ कर मालकिन को स्टेशन का नाम बता देती। जब गाड़ी मुरादाबाद से रवाना हुई तो नौकरानी ने कहा—'सबेरा हो रहा है, अब बरेली आयगा। वहाँ से कुछ सुरमा लेना है, सोहन सिंह ने कहा था।'

स्पष्ट था कि वह इस लाइन से कई बार आई गई है।

अँधेरे में रेलगाड़ी जंगलों-मैदानों के हृदयों को चीरती हुई तीर की तरह चली जा रही थी। लाइन के दोनों तरफ पेड़-पौधे शाखाओं को हिला-हिला कर मनुष्य की बुद्धि की इस अपरूप सृष्टि को मानो नमस्कार कर रहे थे।

देखते-देखते पौ फटा। गाड़ी हवा को चीरती हुई जा रही थी, इस कारण हवा में जो तरंगें उठ रही थीं, उनसे चिड़ियों को उड़ने में कठिनाई हो रही थी। वे अजीब अनाड़ीपन से पंखों को फटपटाती हुई उड़ती थीं। प्रातःकाल की ताजी हवा डिब्बे के अन्दर एक-एक झोंके में घुस रही थी।

प्रातःकाल के स्वर्णिम प्रकाश में लाइन के किनारे के गाँव स्वप्न की तरह आकर चले जाते थे। गाँव के लड़के गाड़ी को देख कर तालियाँ पीट कर अस्फुट शब्द कर रहे थे। एक किसान बैठ कर तम्बाकू पी रहा था, और उसी के पास खूँटे में बँधी हुई एक गाय निश्चिन्त होकर जुगाली कर रही थी, और सन्देह के साथ गाड़ी को देख रही थी। एक षोड़शी किसान-पत्नी चकित हरिणी की तरह देहली पर खड़ी होकर चलती गाड़ी को देख रही थी।

फिर वही मैदान, पेड़, पौधे, तार के खम्भे। दिन का प्रकाश क्षण प्रति-क्षण बाढ़ के पानी की तरह बढ़ता चला जा रहा था। पंजाबी महिला रामपुर के पास बिस्तर से उठ बैठी, और नौकरानी से बोली—'अब तू जरा लेट ले, प्रेमा, मैं अब देखूँगी।'

उन्होंने चुपचाप बक्स तथा पोटलियों को गिन लिया। प्रेमा बोली—'रहने दीजिए, दोपहर को देखा जायगा, बरेली में सुरमा खरीदना है!' असली बात यह थी कि उसने रात ही में बैठे-बैठे खूब सो लिया था।

'बरेली गाड़ी कितने बजे पहुँचेगी?'—महिला ने पूछा।

'सात बज कर पन्द्रह मिनट पर। गाड़ी वहाँ तेरह मिनट रुकेगी। कल रात को आपने कुछ खाया नहीं, वहाँ कुछ नाश्ता भी खरीदना है।'

'ये घर की बनी सब चीज़ें ज्यों की त्यों पड़ी हुई हैं। इनके होते बाजार का खाना कौन खायेगा? कल रात तूने भी तो कुछ नहीं खाया, तू ही कुछ खा ले।'

प्रेमा को इस प्रस्ताव पर आपत्ति नहीं थी। उसे सचमुच भूख लग रही थी। उसने कहा—'देखा जायगा, जरा दिन चढ़े, पहले मुँह हाथ तो धो लूँ......!'

इस समय गाड़ी किसी स्टेशन के सामने से गुजर रही थी। स्टेशन पर एक कुली के अलावा कोई दिखाई नहीं पड़ता था, जैसे मरुभूमि के बीच में एक मकान हो। मेल रास्ते के इस नन्हें से स्टेशन की परवाह किये बिना निकल गई। गाड़ी की कर्कश आवाज़ के साथ एक और गंभीर आवाज थोड़ी देर के लिए मिल गई। यह आवाज़ मेल के आभिजात्य के विरुद्ध गरीब स्टेशन का मानो प्रतिवाद था। खट-खटा-खट। खट-खटा-खट।

पंजाबी महिला ने पढ़कर देखा कि स्टेशन का नाम मिठौरा था। प्रेमा मुँह धोकर आ गई। प्रकृति के सम्बन्ध में प्रेमा के मन में कोई दुर्बलता नहीं थी, फिर भी सबेरे की इस सुनहली रोशनी और मन्द-मन्द ताज़ी हवा ने उसे

भी गाड़ी के बाहर प्रशंसा-भरी दृष्टि से देखने के लिए बाध्य कर दिया। दूर जहाँ गौओं का झुंड चरने लगा था, उधर उसकी दृष्टि थी। अकस्मात् वह बोल उठी—'देखिए, इन गौओं को, ये कितनी दुबली हैं। इधर की सभी बातें ऐसी हैं। मुझे तो पंजाब के अलावा कुछ अच्छा नहीं लगता। यह अजीब देश है, कोई खूबसूरती तो यहाँ है ही नहीं।'

उसने इस प्रकार की बात पहले भी कई बार कही थी। पंजाबी महिला जरा मुस्कराई। कुछ बोली नहीं। वह भी बाहर ताक रही थी।

बात बदलते हुए प्रेमा ने फिर कहा—'मां जी, यह अजीब बात है कि भगवान ने आपको दो ही तो संतानें दीं हैं—एक को आपने बनारस में रख छोड़ा है तथा दूसरी को दिल्ली में, और बीच में आप दिल्ली से बनारस और बनारस से दिल्ली आने जाने में परेशान रहती हैं। ऐसा करेंगी तो कब तक जियेंगी ?

'तू क्या समझती है कि मुझे घूमना बहुत पसन्द है ? लड़की बनारस में रहना नहीं चाहती। वह कहती है, बनारस में जीवन ही नहीं है।'

'तो फिर बनारस से लड़के को दिल्ली ले चलिए, वहाँ और तीनों रहिए। फिर इस तरह बनारस और दिल्ली को एक करते रहना तो नहीं पड़ेगा।'

'और बाँकीपुर की जमींदारी ?'

'हाँ, वह तो मैं भूल ही गई थी—दिल्ली, बनारस और बाँकीपुर इसके बाद डरती हुई बोली—'न मालूम दीदी कब शादी करेंगी। पढ़ते-पढ़ते बहुत पढ़ गईं; इस पढ़ने का भी कोई ओर-छोर है ?'

पंजाबी महिला ने कहा—'नहीं मालूम।' और फिर बाहर की ओर देखने लगी।

मैदान के बाद मैदान चित्रपट की तरह निकले जा रहे थे। किसान लाइन के किनारे की जमीनों में हल जोत रहे थे। बीच-बीच में गाय-भैंसों, बकरियों और सुअरों के झुंड दिखाई पड़ जाते थे। प्रेमा ने कहा—'दीदी की उम्र में मैं कई लड़कों की मां हो चुकी थी।'

महिला ने अब की बार प्रेमा के चेहरे की ओर देखा, फिर बाहर ताकने लगी। बाहर ताकते ही ताकते बोली—'कहती क्यों नहीं यह बात अपनी दीदी से।'

इस बात से दोनों ही हँस पड़ीं। हँसी का मतलब यह था कि यों ही जान बचती नहीं, तिस पर यह। गाड़ी में एक मुसाफिर गा रहा था—

'प्रभु मोरे अवगुण चित न धरो।'

गाड़ी की खट-खट भक-भक आवाज़ और प्रभात-कालीन सूर्य के साथ यह गाना सामंजस्य रखता था। गाड़ी भी जैसे कह रही थी—'चित न धरो।' मुसाफिरों में जो लोग बरेली में उतरने वाले थे, वे जल्दी-जल्दी अपनी सब चीज़ों को बाँध-सहेज रहे थे और बीच-बीच में खिड़की से गर्दन निकाल कर देख रहे थे कि सिगनल आया कि नहीं।

गाड़ी कलक्टर-गंज पार हो आई थी, अब बरेली का स्टेशन ही आने वाला था।

पंजाबी महिला गाने में तल्लीन हो गई। एकाएक उन्होंने नौकरानी से कहा—'सब भगवान की इच्छा है, समझो। मुझसे जब तक हो पाता है, करती हूँ, फिर......'

सिगनल आ गया। गाड़ी की गति धीरे-धीरे घटने लगी। सुनसान मैदानों के अन्दर से गाड़ी जैसे एकाएक मंत्रबल से लोकालय में पहुँच गई। चारों तरफ दौड़धूप होने लगी। पान, बीड़ी सिगरेट, गरम चाय, कबाब रोटी का शोर मच गया। सभी मानों एक साथ बोलना चाहते थे। गाड़ी रुकते-रुकते एकदम रुक गई। पंजाबी महिला ने स्टेशन का नाम पढ़ा—बरेली जंक्शन। प्रेमा डिब्बे से सिर निकाल कर सुरमे की तलाश करने लगी।

: ४ :

सव्यसाची जब दिन के डेढ़ बजे जेल से रिहा होकर निकला तो एक मुहूर्त्त के लिए वह बिलकुल हक्का-बक्का और हत-बुद्धि हो गया। जब उसने दैत्य के दो विराट पंखों जैसे जेल के लोहे के फाटकों की तरफ देखा, तो उसे मालूम हुआ कि यह सब स्वप्न है—जीवन ही स्वप्न है। गत पाँच छः वर्षों से वह जेल और कैद को ही एकमात्र वास्तविकता समझ रहा था, बाकी वास्तविकताएँ उसकी आंखों में गौण और परोक्ष थीं।

जेल की जलवायु में ऐसी निष्ठुर विचित्रता है कि कैदी के सामने दूसरी सब वस्तुओं का अस्तित्व ही फीका पड़ जाता है। चाहे कोई कितना बड़ा कल्पना-जीवी और विशिष्ट इच्छाशक्ति-सम्पन्न व्यक्ति हो, वह भी सम्पूर्ण रूप से इस प्रकार की मनोवृत्ति से अपने को अलग नहीं कर पाता। यह मनोवृत्ति शरीर के अतिरिक्त मन के ऊपर भी अपना सत्यानाशी प्रभाव फैला देती है। जिसे एक सप्ताह की भी कैद होती है, वह सब कुछ जान कर भी अपनी कैद को अनन्त समझता है। वह भी समझने लगता है कि शायद वह कभी छूटे ही न। मन पर इस प्रकार के दबाव के कारण ही बहुत से यथार्थवादी वीर भी जेल में पहुँचते

ही ऐसा कुछ कर बैठते हैं, जिससे उन्हें आजीवन पश्चाताप की आग में भुनना पड़ता है—यहाँ तक कि जीवन को एक प्रतिकूल धारा में ले जाना पड़ता है। जेल के इस प्रकार के वातावरण में ही सव्यसाची ने इतने साल बिताये थे।

सव्यसाची ने पीछे मुड़ कर जेल के ऊँचे विस्तृत प्राचीर की ओर देखा, मानो दो राक्षसी-बाहुओं ने संयुक्त होकर इस जेल नामक पदार्थ की सृष्टि की हो। उसने सोचा—कहा जाता है कि जेल की सृष्टि दुष्टों के दमन के लिए ही हुई थी, पर सहस्रों वर्षों का इतिहास तो यही दिखलाता है कि जेल ने पशुबल से बराबर सत्य का दमन किया है। इन बातों को सोचते हुए उसने भूतकाल के उन महामानवों के साथ अपनी एकता का अनुभव किया, जो उसके पहले जेलों में रह चुके थे। उसके शरीर में इस भावना से रोमांच हो आया।

... ...

उसके लिए सामने ताँगा प्रतीक्षा कर रहा था। उसकी किताबों के बक्सों तथा अन्य चीज़ों को बाहर की कमान के एक नम्बरदार ने ताँगे पर रख दिया। वह जल्दी से ताँगे पर बैठ गया। जेल को, उसके जंगलों तथा दीवारों को उसने खूब देखा था—इतना अधिक कि अब देखने की इच्छा नहीं थी। जितना शीघ्र संभव हो, वह इसकी छाया तक से मुक्त होना चाहता है।

ताँगा चलने लगा। सव्यसाची को सब चीज़ें इतनी नई मालूम हो रही थीं कि वह आँखें फाड़-फाड़ कर बहुत देर तक घोड़े को ही देखता रहा। अच्छा यह! सव्यसाची को गत पाँच वर्ष में कभी घोड़ा देखने का मौका नहीं मिला। उसने घोड़े की कुछ दूसरी ही कल्पना की थी; बल्कि कहना चाहिए कि बराबर संस्पर्शहीन कल्पना के कारण उसके मन में घोड़े का कुछ ऐसा रूप बन गया था, जो वास्तविक घोड़े से बिल्कुल अलग था।

इस प्रकार जिस वस्तु पर भी सव्यसाची ने अपनी आँखें दौड़ाई, उसमें उसे नवीनता मिली। फिर भी उसने यह बात स्वीकार नहीं की कि वास्तविकता से उसके काल्पनिक चित्र हट चुके हैं। शायद किसी के लिए भी इस प्रकार से इस बात को स्वीकार करना संभव नहीं।

सव्यसाची ने जल्दी ही बहिर्जगत् के साथ अपने वास्तविकता-विरहित मनोजगत् का सामंजस्य स्थापित कर लिया। जीवित मन का यही लक्षण है।

जितनी दूर तक आँखें जाती थीं, सव्यसाची देखता रहा। उसकी आँख के लिए तो प्रत्येक वस्तु ही द्रष्टव्य थी। जेल में उसे बहुत कम चीज़ें देखने को मिलती थीं। मजे की बात तो यह है कि जिन चीजों को वह जेल में देखता

था, उनको भी उसने अब बाहर आकर देखा तो उनको एक नये अर्थ तथा व्यंजना से मंडित पाया।

बच्चा जैसे धीरे-धीरे एक एक इंद्रियानुभूति की छाप का संग्रह कर जगत् के साथ परिचय स्थापित करता है, सव्यसाची वैसा ही करने लगा। पर शिशु की ज्ञानेन्द्रियाँ अविकसित होती हैं। वह ज्ञान संग्रह करता है और साथ ही साथ उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ विकसित होती जाती हैं। किंतु सव्यसाची की ज्ञानेन्द्रियाँ पूर्ण विकसित थीं, इसलिए उसकी प्रक्रिया शिशु की तरह मन्थर नहीं थी, बहुत द्रुत थी।

सव्यसाची को यह बात देख कर आश्चर्य हुआ कि वह इस समय जो कुछ देख रहा था और जिस प्रकार देख रहा था, वह इक्कीस वर्ष की आँखों से देखी या प्राप्त की हुई अनुभूति की पुनरावृत्ति मात्र नहीं है। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह जेल से लौटकर अपनी इन छब्बीस वर्ष वाली आँखों से अधिक देख रहा है। ऐसा मालूम हो रहा था कि चीज़ें इस समय उसके सम्मान में निश्छल भाव से अपने अन्तःपुर के द्वार खोले दे रही हैं—अपनी वास्तविकता की गहराई तक देखने दे रही हैं। पर इस अनुभूति की तीव्रता और समग्रता के कारण उसे जो आनन्द प्राप्त हो रहा था, उसी के साथ उसने अनुभव किया कि वह रिहाई से जिस महान आनन्द की आशा कर रहा था, वह उसे नहीं प्राप्त हो रहा है। यह बात स्मरण कर उसका मन थोड़ी देर के लिए दुःखी हुआ, पर जल्दी ही वह प्रकृतिस्थ हो गया।

जेल को अर्थात् अपने विगत जीवन को पीछे छोड़ कर सव्यसाची काफ़ी दूर आ गया था। उसने एक बार उस तरफ़ देखा, जिस तरफ़ पेड़ों और मकानों की आड़ में जेल लुप्त हो गई थी। पर अब उसे जेल के विषय में सोचने की इच्छा नहीं हुई। अब उसकी दृष्टि भविष्य पर निबद्ध थी। वह यही सोच रहा था कि कहाँ चल कर रहना होगा, क्या करना होगा? आन्दोलन का क्या हुआ? इस महायुद्ध में कौन जीतेगा? किस दल के जीतने पर भारत का कल्याण है? अंग्रेज़ों ने तब की बार बहुत धोखा दिया था, पर क्या जर्मनी कुछ करेगा? जेल से छूटते ही तमाम दुनिया की जिम्मेदारियाँ और झमेले उस पर सवार हो गये ज्ञात होते थे। जेल-जीवन कम से कम उसका बहुत ही शान्तिपूर्ण था, न कोई चिन्ता थी और न कोई जिम्मेदारी थी—सिर्फ़ पढ़ना ही पढ़ना था। यदि किसी बात से दुःख या असन्तोष होता था, तो वह उसकी सारी जिम्मेदारी जेल पर लाद कर निश्चिन्त हो कर बैठा रहता था। पर यहाँ बात दूसरी थी।

यहाँ हरेक को अपने ही बाहुबल से अपने स्वर्ग का निर्माण करना तथा अपने त्राण की व्यवस्था करनी पड़ती है। सारी जिम्मेदारियाँ भी उसी की, और सारी सफलताएँ तथा असफलताएँ भी उसी की। उसी की, उसी की। सव्यसाची के अन्दर पाँच साल के जेल-जीवन के कारण एक प्रकार की जीवन-भीरुता अर्थात् जीवन का सामना न कर सकने का भाव पैदा हो गया था। पर यह वस्तुतः भीरुता नहीं थी, अभ्यास न रहने के कारण हिचकिचाहट थी।

... ...

ताँगा वाला एक मुसलमान छोकरा था। बोलचाल में बहुत ही दुरुस्त। उसने सव्यसाची की विचारधारा में बाधा डालते हुए कहा—'बाबूजी, आप शायद कांग्रेस के किसी मुकदमे में थे?'

'नहीं।'

सव्यसाची की इच्छा नहीं थी कि वह ताँगेवाले से इससे अधिक कहे, पर उसने सोचा कि कहीं वह कुछ और न समझ बैठे, बोला—'हम लोग क्रान्तिकारी हैं—इन्कलाबी। समझे? कांग्रेसी हैं भी और नहीं भी...'

ताँगे के रास्ते में उस समय एक राही आ पड़ा था, उसे सावधान करते हुए तथा उसकी आँख के सम्बन्ध में एक मधुर टीका करते हुए ताँगे वाले ने कहा—'बाबू, इसके माने?'

'बम पार्टी। इन्कलाबी। समझे?'

सव्यसाची को मालूम था कि इस तरफ लोग क्रान्तिकारियों को बम पार्टी के नाम से जानते हैं। ताँगे वाला अब की बार समझ गया। उसने अपने जीवन में इसके पहले कभी बम पार्टी के किसी आदमी को नहीं देखा था, इसलिए वह आश्चर्यचकित तथा विस्फारित नेत्रों से सव्यसाची की ओर घूरने लगा। सव्यसाची ने उसके इस आश्चर्य का बहुत उपभोग किया। उसके होठों के किनारों पर कौतुक से दीप्त पतली हँसी की रेखा दिखलाई पड़ी।

ताँगा चलता गया।

छोकरे ने इसके बाद तरह-तरह के प्रश्न किये। सव्यसाची ने जहाँ तक बन पड़ा, उत्तर दिया। उसने भी ताँगेवाले के सम्बन्ध में बहुत से प्रश्न कर बहुत-सी बातें जान लीं। ताँगेवाला पितृहीन है, घर पर माँ और स्त्री हैं। उसी की कमाई पर घर निर्भर है। रोज कोई तीन रुपये बैठ जाते हैं, वह आठ आने अपने पास रख कर बाकी माँ के हाथ दे देता है। माँ ही घोड़े की देख-रेख करती है। वह पढ़ना जानता है, पर बहुत दिनों से उसने कोई किताब नहीं पढ़ी।

यह एक छोटी-सी गृहस्थी की छोटी-सी कहानी थी। उसमें कोई विचित्रता नहीं थी, पर सव्यसाची तल्लीन होकर सुन रहा था।

'अम्मा बहुत अच्छी हैं, समझे बाबूजी। जब अब्बा मर गये, तो मैंने आँखों के आगे अँधेरा ही अँधेरा देखा। छोटी उम्र में ही मैं रुपये-पैसे का मामला समझने लग गया था। अब्बा दिन रात कहा करते थे कि अब तो दिन भर खेल-कूद में वक्त बर्बाद करते हो, पर मेरे उठ जाने के बाद आटे-दाल का भाव मालूम होगा।'

इस समय एक राहगीर कुछ अन्यमनस्क होकर ताँगे के रास्ते में आ रहा था, उसे एक उत्कट चीत्कार से मर्त्य के वास्तविक लोक में उतार कर छोकरे ने कहा—'ऐसे साले पाजी हैं कि आँखें खोल कर रास्ता नहीं चलते। अगर सोना ही है तो फिर रास्ते में चलने की क्या जरूरत है। हाँ, तो अब्बा को कब्र देने के बाद माँ मेरा हाथ पकड़ कर अस्तबल में ले गईं। मुझे दिखा कर घोड़े से बोलीं कि रुस्तम आज से यही तुम्हारा मालिक है। घोड़े ने सचमुच गर्दन सीधी कर मुझे देखा। मैंने कहा—'अम्मा, मैंने तो कभी ताँगा-वाँगा हाँका नहीं है, कैसे पार लगेगा। अम्मा ने कहा, आखिर तू उन्हीं का लड़का है, तुझे कुछ सीखना थोड़े ही पड़ेगा। इस विद्या में तो तुझे यों ही निपुणता प्राप्त है; जो कुछ तू न जानेगा, वह रुस्तम तुझे सिखा देगा। क्यों रुस्तम? कह कर अम्मा ने रुस्तम की ओर देखा। उस दिन से रुस्तम और मैं बरेली की सड़कों की खाक छानता हूँ। जिन्दगी के आखिरी दिन तक यही करूँगा। इसके बाद अपनी आवाज़ को कुछ धीमी करते हुए कहा—'अभी थोड़े दिन हुए अम्मा ने मेरी शादी कर दी है।'

बातचीत जमती जा रही थी। सव्यसाची यह अनुभव कर रहा था कि न मालूम किस बात में वह ताँगे वाले से हीन और निकृष्ट है। वह अपनी माँ की मृत्यु के आघात को नये सिरे से अनुभव करने लगा। वह तो एक पितृ-मातृहीन आवारा है। उसके आदर्श, उच्च-शिक्षा तथा नैतिकता ने उसे सांत्वना दी, पर अधिक नहीं।

... ...

स्टेशन आ जाने के कारण ताँगा रुक गया। रुस्तम की पीठ पर सस्नेह थपकी देकर ताँगेवाले ने सव्यसाची की ओर ध्यान दिया। 'अच्छा बाबू, अभी गाड़ी के आने में तो काफी देर है। यहीं बैठ कर कुछ खा-पी लो।'

पास ही हलवाई की दुकान थी। सव्यसाची ताँगे से उतर पड़ा। उसने

बहुत दिनों से कोई अच्छी चीज मुँह में नहीं डाली थी। वही कैदियों की रोटी और दाल जिसमें डुबकी लगाने से भी शायद दाल का दाना न मिले, पशु के लिए भी अखाद्य तरकारी और भूजे चने, यही उसके इतने सालों का नियमित भोजन था—सनातन और अपरिवर्तनीय।

एक बेंच पर बैठ कर वह खाने लगा। सामने कहीं पर एक भिखमङ्गा बैठा था। वह सव्यसाची को खाते हुए देखकर जमुहाई लेते हुए खड़ा हो गया। गाड़ी के समय स्टेशन पर भीख माँगना ही उसका काम था। गाड़ी आने में अभी देर थी, इसलिए वह इस समय बैठकर रास्ते के कुत्तों के साथ ऊँघ रहा था। वह मनुष्य है, पर सुदूर अतीत काल में उसे लोगों ने मनुष्य की श्रेणी से निकाल दिया था, कुत्ते उसे अपनी श्रेणी का समझते हैं। दो पैर वाला कुत्ता ! उम्र उसकी पैंतालीस थी, पर चेहरा देखने पर साठ भी कहा जा सकता है, सत्तर भी। उसका मुँह कुछ कुचला हुआ-सा था। उसके सामने के दाँत नहीं थे। एक लत्ता पहन रखा था, जिसने धोबी का तो क्या, साबुन या सज्जी तक का कभी मुँह नहीं देखा होगा। अभागा और देखने में कुत्सित। गन्दगी का जैसे एक पिरामिड और गरीबी का माउण्ट-एवरेस्ट...

उसने उठ कर थोड़ा तो सव्यसाची की ओर और अधिकतर उसके खाने की ओर करुण नेत्रों से देखा, बोला —'बाँ—बूँ—जी—!' यह आवाज ऐसी थी कि पत्थर को भी विह्वल कर देती।

सव्यसाची ने उसकी तरफ देखा। पाँच वर्ष तक जेल की रोटियाँ खाने के बाद उसे गुलाब जामुन में स्वर्गीय आनन्द आ रहा था। अब यह आवाज सुनकर, जो एक तरह से दरिद्र मानवता की पुकार बल्कि ललकार थी, वह धीरे-धीरे खाने लगा। उसके खाने में अब वह स्वाद नहीं रहा। नीचे धरती की ओर मुँह करके मानों लज्जित होकर वह खाने लगा।

'बाँ बूँ जी, भूँखा हूँ !' करुण पुकार थी।

सव्यसाची ने अभी थोड़ा ही खाया था। वह एक समोसा तोड़कर खाने लगा। हलवाई ने एक लाठी लेकर भिखमंगे का पीछा किया—'साला बदमाश दोगला कहीं का, इतनी बार कहा कि मेरी दुकान के सामने न आया कर, पर किसी तरह मानता ही नहीं।

यह कह कर उसने लाठी को जोरों के साथ जमीन पर पटका। भिखमङ्गा तीन कदम पीछे हट गया।

इस समय तक सव्यसाची आधा खाना खा चुका था। उसने देखा कि

भिखमंगा दूसरी तरफ से आकर उसके खाने को सतृष्ण नेत्रों से देख रहा है। भिखमंगे ने देखा कि सव्यसाची ने करीब-करीब तीन-चौथाई खाना खा लिया है, इसलिए वह निराशा से उत्पन्न साहस से उद्धत होकर बोल उठा, मानो इसी बोलने पर उसका जीवन निर्भर था—'बाँबू जी, तीन दिन से कुछ नहीं खाया।'

सव्यसाची ने उसकी तरफ देखा, चार आँखें हुईं। सव्यसाची का हृदय पिघल गया। उसने बाकी खाना उठा कर भिखमंगे को दे दिया। भिखमंगे ने एक बार आश्चर्यचकित नेत्रों से उसकी तरफ देखा, और साथ ही साथ झपटा मार कर दोना ले लिया। सव्यसाची जिस क्रान्तिकारी विचारधारा की छत्रछाया में पला था, उसके अनुसार इस प्रकार उसने जो कुछ दिया, उसके द्वारा उसने एक मनुष्य की सहायता अवश्य की, पर उसे जूठन देकर उसको मनुष्यता की अप्रतिष्ठा भी की। यह सोच कर वह दूसरे लोगों की तरह अपने को इस दान के लिए अभिनन्दित नहीं कर सका। आँसुओं की दो बूँदों से उसकी आँखों के किनारे आर्द्र हो गये।

ताँगे वाला दूर से इन बातों को देख रहा था। पास आकर उसने सव्य-साची से कहा—'बाबू जी, आपका दिल बहुत मुलायम है, इतना मुलायम दिल लेकर कोई दुनिया में टिक नहीं सकता।'

दुनिया में कैसे रहना चाहिए, इस पर यह एक अच्छा उपदेश था। क्या यह सच था ? अभी सव्यसाची को यह अपने अनुभवों से मालूम करना था। भविष्य-वक्ता के ढङ्ग से कही हुई इन बातों को सव्यसाची ने सुना, और उसे वे बातें स्मरण हो आईं, जो सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी और इस समय शहीद सन्तोष कुमार ने उससे कहीं थीं—'सव्यसाची जहाँ दृढ़ता दिखाने का त्याग है, वहाँ तुमसे बढ़कर कोई नहीं हो सकता, किन्तु जहाँ दृढ़ता का अर्थ ऊपर से देखते हुए जुल्म है, वहाँ पर तुम्हारे पैर डिग जायेंगे। क्रान्तिकारी के लिए दोनों गुण आवश्यक हैं।' गाड़ी सवेरे मिलने वाली थी। वह खाने से निवृत्त होकर स्टेशन की सैर करने लगा। वह जिस भी चीज को देखता, उसे दिलचस्प पाता। उसी से उसका मनोरञ्जन होता। घंटों इस प्रकार सैर करने के बाद वह एक बेंच पर सो गया। जब उठा तो सवेरा था।

... ...

मेल समय से दस मिनट बाद स्टेशन पर आ कर रुकी। सोया हुआ स्टेशन एकाएक जीवन के स्पंदन से मुखरित हो गया। चारों तरफ दौड़-धूप, शोरगुल मच गया। सव्यसाची अपने सामान के साथ प्लेटफार्म पर खड़ा था।

उसने देखा, सामने का डिब्बा कुछ खाली-सा है, वह उसी में घुस गया। सामने की बेंच पर दो स्त्रियाँ थीं। सव्यसाची के घुसने पर उन लोगों ने उसे जगह दे दी।

: ५ :

'आप बंगाली हैं ?' स्पष्ट बंगला में सामने के बेंच की पंजाबी भद्र महिला ने सव्यसाची से पूछा।

सव्यसाची ने आश्चर्य के साथ सामने की ओर देखा, और साथ ही साथ बोला—'मैं बंगाली शब्द को पसन्द नहीं करता, उसमें कुछ प्रान्तीयता की बू है। मैं बंगला-भाषी भारतीय हूँ, बस, इतना ही कह सकता हूँ।'

सव्यसाची नम्रता के साथ मुस्कराया। उसका दुबला-पतला और करीब-करीब पीला चेहरा इस हँसी से दमक उठा।

पंजाबी महिला ने सव्यसाची के बक्से की ओर देखा, जिस पर लिखा था—'सव्यसाची, राजनैतिक कैदी।' महिला ने उस तरफ देखते हुए कहा, 'आप ही मि० सव्यसाची हैं ?'

'हाँ, मैं ही हूँ।'

'आपका नाम मैंने सुना है, ऐसा याद पड़ता है। आप बनारस के रेवड़ी-तल्ला में गिरफ्तार हुए थे न ?

'हाँ', सव्यसाची का चेहरा खिल उठा।

'आपकी कितनी सज़ा हुई थी ?'

'छः साल' परन्तु रेमिशन के बाद पाँच वर्ष जेल में रहा।'

'हाँ, हाँ ! उसके बाद कोई इतने ही साल हो गये होंगे। उस समय पति अभी स्वर्गवासी हुए ही थे। आप कब छूटे हैं ?'

'कल ही छूटा हूँ। ढंग की गाड़ी न होने के कारण रात भर स्टेशन में पड़ा रहा...'

'तो आप छूट कर घर जा रहे हैं ?'

'हाँ, बनारस जा रहा हूँ।' फिर सव्यसाची ने कड़वी हँसी हँसते हुए कहा, 'घर कहाँ है ? जिस समय मैं जेल ही में था, उसी समय माताजी मर गईं।'

पंजाबी महिला चुप रहीं। उनकी समझ ही में नहीं आया कि सांत्वना में क्या कहें।

गाड़ी तुमुल ध्वनि कर चारों तरफ उथल-पुथल मचाती हुई, कितनी ही नदियों, नहरों, पुलों को पार करती हुई दौड़ती जा रही थी और

उसके साथ ही साथ उसकी छाया दौड़ रही थी, कभी दीर्घ कभी लघु। पुल रेल की दैत्य-देह के बोझ के मारे कराह उठते थे। बड़े पुल गर्जन कर अपना प्रतिवाद पेश कर रहे थे! गाड़ियाँ इंजन के पीछे-पीछे चलने से उकता कर किच-किच शब्द कर रही थीं, पर इंजन फुफकारता हुआ मानो किसी शत्रु के पीछे अथक रूप से अपना टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता तय करता हुआ भागा जा रहा था।

सव्यसाची बाहर की तरफ ताक रहा था। एक के बाद एक दृश्य उसकी आँखों के सामने से चित्रपट की तरह जा रहे थे। वह सोच रहा था कि क्या मनुष्य-जीवन भी ऐसा ही नहीं है? उसे स्मरण हो आया कि इन कुछ घंटों के दौरान में उसने क्या-क्या देखा—ताँगावाला, हलवाई, भिखमंगा, और फिर यह भद्र महिला। उसने कनखी से एक बार भद्र महिला की ओर देखा। स्त्री शब्द से जेल में वह जिस पदार्थ की कल्पना करता था, वह यही थी। पहली बार उसने जेल की एक कल्पना को वास्तविक जगत् में मूर्त्त देखा। भारतीय स्त्रियों को इसी प्रकार स्वस्थ और तेजस्वनी होना चाहिए। ऐसी ही नारी वीर प्रसविनी हो सकती हैं। उसे अपनी माँ की बात याद आई।

सव्यसाची जितना ही इस महिला को देखने लगा, उतना ही उसे ऐसा मालूम होने लगा कि इस महिला के चारों ओर एक रहस्य का जाल है। देखने में तो पंजाबिन है, पर साफ बंगला बोलती है। इसके क्या माने हैं?

दिन के प्रकाश के साथ-साथ उसका कौतुहल बढ़ने लगा। सव्यसाची ने अकस्मात् महिला से पूछा, 'आपने बँगला कहाँ सीखी?'

'मेरे पति बंगाली थे।'

इसके बाद बातों-बातों में उन्होंने अपने सम्बन्ध में जो विवरण दिया वह यों है। लाहौर के एक धनी खत्री परिवार में उनका जन्म हुआ। वे अपने पिता की एकमात्र सन्तान थी। बचपन में ही मातृहीन हो गई थीं। उनके पिता ने ही उनका पालन-पोषण किया था।

'मैं उन दिनों कालेज में सेकेंड ईयर में पढ़ती थी। मेरे पिता कभी मुझसे शादी के लिए कहते नहीं थे। उन्होंने मुझे पूर्ण स्वतन्त्रता दे रखी थी। उन्होंने मुझसे कभी कोई कड़ी बात नहीं कही। अकस्मात् मेरे दोनों फेफड़ों में निमोनिया हो गया। मैं पिता की एकमात्र कन्या थी। बड़े-बड़े डाक्टरों की दवा हुई। अन्त में जाकर एक डाक्टर ने कहा कि रोगिणी के पास हर वक्त एक जुनियर डाक्टर के रहने की जरूरत है। खोज होने लगी, पर कोई डाक्टर राज़ी नहीं हुआ। अन्त में एक नौजवान बंगाली डाक्टर, जो अभी-अभी दिल्ली

में भाग्यान्वेषण के लिए आये थे, राज़ी हुए। उन्होंने इतनी सेवा की कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। उनकी परिचर्या के बिना मैं जीवित नहीं रहती, कभी नहीं। अन्त में उन्हीं के साथ मेरी शादी हुई। पिताजी तब तक जीवित थे। तब तक हम लोग लाहौर ही में थे, बाद को बनारस में आये। पिताजी की कोशिश और अपनी प्रतिभा से वे दिल्ली के प्रसिद्ध डाक्टरों में हो गये।'

'आप भी बनारस जा रही हैं?'

'नहीं, अभी तो मैं बाँकीपुर जा रही हूँ, वहाँ पर जमींदारी का कुछ काम है। उसे पूरा कर बनारस लौटकर आराम से बैठूँगी। मेरा लड़का बनारस में ही पढ़ता है। वह इस समय नवें दर्जे में है।'

कुछ देर रुककर मंद-मंद हँसकर पंजाबी महिला ने कहा, 'मेरा एक लड़का है और एक लड़की। दोनों दो तरह के हैं। बड़ी लड़की तो बिल्कुल पंजाबिन है। दिल्ली में ही उसकी शिक्षा-दीक्षा हुई है, दिल्ली में ही रहती है। अबकी बार बी० ए० की परीक्षा दे रही है। हाँ, वह बंगला भी लिख-बोल लेती है। लेकिन लड़का तो बिल्कुल बंगाली है। बनारस के बँगला स्कूलों में उसकी शिक्षा हुई है। वह पंजाबी समझ लेता है, पर अच्छी तरह बोल नहीं पाता।'

सव्यसाची ने उच्छ्‌वासपूर्ण प्रशंसा में कहा, 'तो आप तो साक्षात् भारत-माता हो रही हैं; आपकी एक सन्तान बंगाली है, और दूसरी पंजाबी···।'

'नहीं-नहीं, वैसी कोई बात नहीं है। मेरी लड़की सुजाता पंजाबियों से बढ़कर पंजाबी है, याने वह बंगालियों को उनका प्राप्य भी देना नहीं चाहती।'

सव्यसाची को इस कहानी में अधिकाधिक कौतूहल मालूम हो रहा था। उसने हँसते हुए कहा, 'वे बंगालियों पर इतनी नाराज़ क्यों हैं?'

'कारण कुछ नहीं है, बस नाराज़ है। पगली लड़की है, इसके अलावा और क्या कहूँ!'

सव्यसाची कुछ रुककर बोला, 'वे उच्च शिक्षा प्राप्त हैं, नाराज़ी का कारण तो बताती ही होंगी।'

'कुछ नहीं, बस ज़िद है। कारणों से उसे कोई वास्ता नहीं।'

पास बैठी हुई नौकरानी प्रेमा बँगला नहीं समझती थी। वह अविश्वास-पूर्ण नेत्रों से बाहर मैदान की तरफ ताक रही थी। सव्यसाची पर वह अकारण क्रुद्ध होती जा रही थी। बात यह थी कि उसके खाने में देर हो रही थी। दूसरे, एक अपरिचित मुसाफिर के साथ वह मालकिन की इतनी बातचीत पसन्द नहीं

कर रही थी। उसने बाहर की तरफ देखते हुए अपनी मालकिन से पंजाबी में कहा, 'शायद नौ बज गये।'

'हाँ, अब शाहजहाँपुर आया ही चाहता है।'

प्रेमा असंतुष्ट होकर ताकती रही, करीब-करीब दाँत से काटने की मुद्रा से बोली, 'देर हो गई······।'

'हाँ।'

गाड़ी की गति शिथिल होने लगी।

सब मुसाफिर गला बढ़ाकर देखने लगे। थोड़ी देर बाद गाड़ी शाहजहाँ-पुर स्टेशन पर रुक गई।

सव्यसाची उतर कर प्लेटफार्म पर चहलकदमी करने लगा। उसके चेहरे पर आनन्द की दीप्ति थी। उसने एक बार सोचा कि कल वह इस समय कहाँ था? जेल में। और आज?

सामने से तरह-तरह के खोमचे वाले जल्दी-जल्दी दौड़-धूप कर रहे थे। रेलवे लाइन के पास स्टेशन एक ईंट पत्थर के बने हुए अजगर की तरह अपने प्रियतम की प्रतीक्षा में सोता रहता है। उस समय उसमें जीवन के सारे लक्षण लुप्त हो जाते हैं। वह अर्थी पर के मुर्दे की तरह हो जाता है। फिर जब गाड़ी के रूप में उसका लौह रूप प्रियतम आ, जाता है, तो फौरन उसके अंग-अंग में यौवन का उन्माद छाकर हिलोरे लेने लगता है। वह ट्रेन रूपी प्रियतम कितने विनत आत्मसमर्पण में अपना सिर उसके हृदय में रख देता है। पर उसमें तो विज्ञान का उन्माद छाया हुआ है, अधिक देर तक वह नहीं रुक पाता। विज्ञान ने उसकी सृष्टि देश और काल को जीतने के लिए की है। इसलिए एक तीक्ष्ण आर्त्तनाद से वातावरण को क्षुब्ध कर, स्टेशन के प्राण में एक कूक देकर वह अपने भाग्य की ओर दौड़ना शुरू कर देता है, उस भाग्य की ओर जिसे वह नहीं जानता है, और जिस विज्ञान ने उसे इस पथ का पथिक बनाया है, वह भी शायद नहीं जानता।

किसी खोंमचे वाले ने सव्यसाची के कान में एक चाबुक के आघात जैसे स्वर से चीज़ों के सम्बन्ध में सजग करते हुए कहा, 'पान-बीड़ी-सिगरेट।' एक दूसरे ने कान में, मानों वह कोई बहुत ही गोपनीय बात कह रहा हो, कहा— 'आज, प्रताप, वर्तमान!' कोई फेरी वाला तो प्रश्न रूप में अपने वक्तव्य को पेश कर रहा था, 'गरमचाय?' कोई ग्राहकों का तिरस्कार कर कह रहा था, 'सोडा लेमनेड!' मानों अगर उसकी चीज़ नहीं खरीदी, तो वह व्यक्ति मनुष्य योनि से

ही खारिज कर दिया जायगा। इन सब आवाज़ों को डुबा कर तरह-तरह से कुरूप भिखमंगों का आर्त्तनाद आकाश की तरफ उठ रहा था। भिखमंगों को आते देख कर मुसाफिर गाड़ी के अन्दर मुँह कर लेते थे। कहीं पर एक बच्चा रो रहा था, 'टें-टें-टें' और साथ ही साथ-ही-साथ उसकी माँ का, 'बच्चा रे, मुन्ना रे' सुनाई पड़ रहा था।

ये जीवन-संग्राम के मानो भिन्न-भिन्न मोर्चे थे। एक जगा हुआ स्टेशन संसार का एक छोटा रूप पेश करता है।

स्टेशन पर जो लोग दौड़-धूप कर रहे थे, उनमें मुट्ठी भर मेमें भी थीं। भीड़ में विशेषकर दृष्टि उन पर पड़ती थी, पर सव्यसाची बच्चों में ज्यादा दिलचस्पी ले रहा था। इतने छोटे और इतनी बातें। सव्यसाची के हृदय में गुदगुदी लग रही थी। एक बच्चा माँ का हाथ छोड़ कर इंजन की तरफ जा रहा था। बुर्के के अन्दर से उसकी माँ किंकर्त्तव्यविमुढ़ होकर बुर्के को हिला रही थी, इतने में उस बच्चे का बाप आ गया। तुर्की टोपी पहने हुए इस भले आदमी ने झपट्टा-सा मार कर बच्चे को गोद में उठा लिया, और स्टेशन के बाहर जाने लगा। उसके पीछे-पीछे सामान लेकर कुली चले। बगल में वह बुर्के वाली चली। बुर्का होने पर भी सव्यसाची जैसे उसकी हँसी की खिल-खिल को सुन पा रहा था। बच्चा आबद्ध होकर हाथ-मुँह हिला कर अपने द्वारा संग्रहीत ज्ञान का अंश पिता को दे रहा था।

सव्यसाची इस प्रकार के दृश्यों में खोया हुआ था। उसने देखा कि अब तक उसने जिस कल्पना-लोक में निवास किया है, वास्तविक जगत् उससे कम दिलचस्प नहीं है। उसके लिए यह एक बहुत आश्चर्य की बात थी कि जिनके जीवन में किसी महान् आदर्श की नींव है, जिनमें कोई उद्देश्य या उच्चाकांक्षा की दीप्ति नहीं, वे किस प्रकार जीते हैं। वह समझता था कि निश्चय ही उनके जीने में कोई निविड़ता न होगी। पर आज इतने प्राण-श्रोत से तरंगित रूप में ऐश्वर्यशाली आत्म-विस्मृत चेहरों को देख कर उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे लोग बहुत मजे में जी रहे हैं। यह सोच कर उसके भावुक हृदय को धक्का लगा। उसका मन एक अजीब अनिर्वचनीय संदेह से कंटकित हो गया। वह भीतर ही भीतर छटपटाने लगा।

जब गाड़ी ने सीटी दी, तब वह जाकर अन्यमनस्क अवस्था में गाड़ी में बैठ गया। गाड़ी धीरे-धीरे चलने लगी। पंजाबी महिला ने एक तश्तरी में

कुछ खाना लगा कर सव्यसाची के सामने रख दिया। सव्यसाची लज्जा से जैसे गड़ते हुए बोला—'रहने दीजिए, मेरे पास फल तो हैं। इसके अलावा... ।'

'बात यह है, हम लोग देश के लिए जेल जाती नहीं, जो लोग ऐसा करते हैं, उनकी कुछ सेवा कर अपने मन को समझा लेती हैं।'

इस पर कोई बात कहने की गुंजाइश नहीं थी, इसलिए सव्यसाची को तश्तरी स्वीकार करनी पड़ी।

डिब्बे के अन्दर इस बीच में एक नौजवान ने बहुत बढ़िया उर्दू में व्याख्यान देना शुरू कर दिया था। इच्छा या अनिच्छा से मुसाफिर उसका व्याख्यान सुन रहे थे। डिब्बे के कुछ लोग किताब या अखबार पढ़ रहे थे। उन लोगों ने पहले तो वक्ता की उपेक्षा की, और इस प्रकार चाहा कि उसे चुप करा दें। परन्तु उस नौवजवान ने ऐसे-ऐसे चुटकुले और लतीफे शुरू किये और इस प्रकार मुँह बनाया कि सहज ही में सब लोगों का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट हो गया। वह हिन्दुस्तान में रोगों की अधिकता और उनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में व्याख्यान दे रहा था।

पंजाबी महिला ने सव्यसाची से कहा, 'मालूम होता है, नमक सुलेमानी या पत्थर हज़म का एजेण्ट है।'

सव्यसाची ने नाश्ता करते-करते जरा ओंठ उलट कर हँस दिया।

प्रेमा बहुत ध्यान से व्याख्यान सुन रही थी।

व्याख्यान देनेवाले ने एक-एक करके बासठ तरह के पानी के, जमीन के तथा पहाड़ के बिच्छुओं में से बारह तरह के बिच्छू मुसाफिरों को अपनी जेब से निकाल कर दिखलाये।

इस तरह कुछ तो आपस में बातचीत करते हुए कुछ और दुनिया का रंग-ढंग देखते हुए सव्यसाची की गाड़ी दोपहर के समय लखनऊ पहुँच गई!

: ६ :

रेलवे कम्पनी के स्टेशनों के निर्माण का काम जिन इंजीनियरों पर था, वे सम्पूर्ण रूप से कलाज्ञान से शून्य थे, किसी भी स्टेशन को देखकर इसका अनुमान लगाया जा सकता है। पर लखनऊ स्टेशन के बनाने वालों के विषय में ऐसी बात नहीं कही जा सकती। उसके ऊँचे-ऊँचे मीनार मनुष्य को बरबस अतीत के कल्पना-लोक में खींच ले जाते हैं। नवाबों के युगों की एक स्पष्ट तस्वीर देखने वाले के दिमाग में आ जाती है। इन मीनारों के साथ तारों के मोटे-मोटे गुच्छे, तरह-तरह के रंगीन विज्ञापन, ट्राली, वर्दीधारी रेल कर्मचारियों का दल,

ह्वीलर की दुकान में ऐम्फिथियेटर की शक्ल में सजाई हुई पुस्तकें—ये दृश्य आकर्षक पृष्ठभूमि पर बिल्कुल बुरे नहीं मालूम होते—मानो भूतकाल के ढाँचे पर वर्तमान ने अपना बसेरा बसाकर प्राणों का संचार किया हो।

सव्यसाची अपने व्यक्तिगत तथा क्रान्तिकारी कामों के सिलसिले में कई बार इसी लखनऊ में आ चुका था। लखनऊ उसके निकट एक शून्य गर्भ नाम मात्र नहीं था। उसका नाम सुनते ही सुप्त स्मृतियाँ अँगड़ाई लेकर उठ खड़ी होती थीं। इस शहर का अमीनाबाद पार्क, छेदीलाल धर्मशाला, काश्मीर होटल, बेली गार्ड इत्यादि स्थान उसके निकट अपने-अपने ढंग से विशेष महत्व रखते थे। लखनऊ उसके निकट अतीत काल के दर्पण का एक टुकड़ा था। वह उसमें अपने एक अंश को अच्छी तरह देख सकता था।

सव्यसाची की गाड़ी ज्यों-ज्यों लखनऊ छोड़कर आगे बढ़ने लगी, त्यों-त्यों वह उत्तेजित होने लगा। एक तो इधर की प्रत्येक जगह के साथ उसके जीवन की कोई न कोई स्मृति अविच्छेद्य रूप से विजड़ित थी, दूसरे उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वह प्रति घण्टे पचास मील की रफ्तार से उन सब रहस्यों के उद्‌घाटन तथा उन कठिन तथ्यों की ओर जा रहा था, जिनके सम्बन्ध में उसे अपने बारे में यह सन्देह था कि शायद वह इन सबका सामना एक साथ न कर सके।

रहस्य जब तक रहते हैं, तब तक उनके उद्‌घाटन के लिए हम सातों समुद्र छान डालते हैं; पर ज्यों ही रहस्य के उद्‌घाटन का समय आ जाता है, तब हम ठिठककर खड़े हो जाते हैं, क्योंकि हमें यह डर होता है कि यह उद्‌घाटन सम्पूर्ण रूप से हमारी इच्छाओं एवं आशाओं के विरुद्ध जा सकता है।

सव्यसाची सोच रहा था कि इस समय उसका खानदानी मकान किसके कब्जे में होगा? माँ तो तीन साल पहले ही मर चुकी। यह सम्भव है कि मकान उनके नाम रहा हो, पर इस बीच में मुकदमें के कर्जे के कारण मकान का बिक जाना भी संभव है। उस हालत में तो उसे खड़े होने के लिये एक इंच स्थान भी कहीं नहीं मिलेगा। वह फिर कहाँ जायगा? वैद्यनाथ के मकान में? यदि उनका भी मकान बिक गया हो? सव्यसाची ने अपने रुपयों को कई बार गिनकर देख लिया, बीस के लगभग थे। इतने कम रुपये लेकर किसी होटल में ठहरना संभव नहीं है। ठहर भी गये तो ये रुपये कितने दिन चलेंगे। वह अब तक निश्चिन्त था, छात्र था, उसने कभी इस बात की खोज नहीं की कि कहाँ से खर्च चल रहा है। माँ अपने परिश्रम से अर्जित रुपयों से खर्च चलाती थी। यदि उसे

हाथ खर्च के लिए कम पैसे मिलते थे, तो वह माँ के साथ किस प्रकार. लड़ता था ! माँ के स्नेह और अपनी गैरजिम्मेदारी की बात को सोचकर उसे बहुत दुःख हो रहा था—तब दुःख हो रहा था, जब इसके होने से कोई फायदा नहीं था !

अब उसे रुपयों की फिक्र करनी पड़ेगी। ओह; नौकरी ? इसके अलावा और क्या ? इतने बड़े आदर्शवाद का यह परिणाम ? छूटे हुए इतने घंटे हो गये, पर कहीं भी उसने राष्ट्रीय आन्दोलन का कोई स्फुरण नहीं देखा। १९४२ में जो आशा बँधी थी, वह पूरी नहीं हुई। उस भयानक अग्निकांड की कहीं राख भी नहीं दिखाई देती। ओह, तो क्या सबको तरह वह भी नौकर होगा। उसके सामने इस समय जीवन-समस्या एक भयंकर अन्न-समस्या के रूप में दिखाई पड़ी। उसके मन की कोमल अनुभूतियाँ कठिन हो गईं। जीवन उसके निकट एक वृहद् जड़ पिंड सा हो गया, जिसके लिए लहू-पसीना एक करके लगातार रोटी का भोग जुटाना पड़ेगा। हा रोटी ! हा रोटी ! जो सभी लोग करते हैं, वही वह भी करेगा।

अन्त में अब उसे देश-हित तथा विश्व-हित के आदर्श को त्याग देना पड़ेगा—इसलिए नहीं कि खून ठंडा पड़ गया है, इसलिए नहीं कि ब्रिटिश साम्राज्य ने उसे अपनी जेल और जुल्म से परास्त कर दिया, बल्कि केवल इस-लिए कि उसे रोटी की समस्या का समाधान करना है, जिसके सामने दूसरी समस्याओं की गुंजाइश नहीं।

सव्यसाची रोटी की समस्या का समाधान करने के लिए न तो अनिच्छुक है और न समर्थ ही। वह न तो आलसी ही है, और न काम-चोर। जरूरत पड़ने पर वह कुलीगिरी भी कर सकता है। पर बात यह थी कि सव्यसाची जेल से छूटने के बाद कुछ दिनों के लिए छुट्टी चाहता था। वह समझता था कि इस प्रकार की छुट्टी पाना, उसका हक है। उसने अपने से पूछा कि क्या जेल से छूटने पर उसे छः महीने की छुट्टी का भी हक नहीं है ? उसने मन ही मन तय किया कि अवश्य ही उसे यह हक है। पर अपनी परिस्थितियों की ओर देखा तो उसे ज्ञात हुआ कि सामने और भी घोर अनन्त संग्राम है। उसकी यह समझ में नहीं आया कि इसके लिए कौन जिम्मेदार है।

गाड़ी जंगल मैदानों को चीरती हुई चली जा रही थी। दोपहर की भयंकर धूप में दौड़ती हुई इस गाड़ी को सव्यसाची अब उस प्रकार कवित्वपूर्ण दृष्टि से देखने में असमर्थ था, जैसा उसने सबेरे की मीठी धूप में और प्रातः कालीन ताजी हवा में देखा था। अब वह गाड़ी को एक घोर वास्तविकता के

रूप में देख रहा था, जो अथक रूप से उसके अज्ञात भाग्य की ओर दौड़ी जा रही थी। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि गाड़ी के उत्कट शब्द से उसके सालों के स्वप्न छिन्न-भिन्न हुए जा रहे हैं और उसके सामने एक आकाश-स्पर्शी वास्तविकता सिर उठा कर क्रमशः खड़ी होती जा रही है, जिसके सामने वह एक बच्चे की तरह असहाय है, जिसे हटाना तो दूर रहा, वह अपनी सारी शक्ति लगाकर उसे हिला भी नहीं सकता—एक इंच भी नहीं।

सव्यसाची को इस समय ऐसा मालूम हुआ कि उसके सिर में दर्द हो रहा है। यदि जेल में यह बात होती तो वह फौरन एक पर्चा लिख कर भेज देता और एक ऐस्प्रीन की पुड़िया आ जाती। पर यहाँ तो एक-एक चीज़ को खरीदना है। ओह!

सव्यसाची बड़ी देर तक उधेड़-बुन में पड़ा रहा, पर अन्त में उसने तय किया कि वह कोई कायर तो है नहीं। वह क्यों डरेगा? उसने सोचा कि और कहीं स्थान न मिले तो वह पहले धर्मशाला में ठहरेगा, फिर जरूरत पड़ी तो कुलीगिरी तक करेगा। ज्यों ही उसने यह बात तय कर ली, त्यों ही उसकी सारी बेचैनी दूर हो गई। उसने तय किया कि जीवन के कठिन तथ्यों के साथ वह डट कर संग्राम करेगा।

... ...

पंजाबी महिला कुछ ऊँघ-सी रही थी। वह अकस्मात् अच्छी तरह बैठ गई, और सव्यसाची से बोली, "अब शायद काशी जी आने में देर नहीं।"

"नहीं, अभी भदोही स्टेशन गया, कोई २५ मील बाकी हैं।"

"अच्छा, सव्यसाची बाबू, मैं एक बात सोच रही थी......।" कह कर वह रुक गई।

सव्यसाची ने उनकी तरफ देखा।

"मैं सोच रही थी कि मेरे लड़के के लिए एक मास्टर की जरूरत है, सो तुम अगर......। तुम कह रही हूँ, इससे बुरा न मानना। तुम मेरे लड़के की तरह हो। मेरे एक दूर के मामा इन्हीं सब दलों में थे। जानती हूँ पुलिस लोगों का सत्यानाश करके छोड़ देती है। सो तुम अगर राजी होओ, तो मैं बनारस में ही उतर जाऊँ। इसमें कोई लज्जा की बात नहीं है।'

सव्यसाची राज़ी नहीं हुआ। महिला यही आशंका कर रही थी। सव्यसाची बोला, 'आपने मुसाफिरी के सामान्य परिचय में मुझे जिस प्रकार लड़के की तरह अपनाया, उसे मैं कभी भूल नहीं सकता, पर इससे अधिक ग्रहण करना

आपकी सहृदयता का दुरुपयोग करना होगा। यह जानता हूँ कि काशी में मेरे लिए कोई फूलों का बिछौना नहीं है। हम लोगों का एक छोटा-सा मकान था, वह शायद मेरे मुकदमे के खर्चे में पहले तो गिरवी रहा, और फिर बिक गया। पर मेरा शरीर स्वस्थ है, कार्य करने की क्षमता है। मुझे अपना रास्ता आप बना लेने दीजिए। मुझे यह यात्रा एक सुखद-स्मृति के रूप में याद रहेगी।'

सामने से सर से परसीपुर स्टेशन निकल गया।

सव्यसाची ने पूछा, 'आप से मिलने के लिए कैंट स्टेशन पर कोई आयेगा ?'

'नहीं, मैं छिप कर जा रही हूँ। खा-म-खा उन्हें हैरान क्यों करूँ, तीन दिन में ही लौट आऊँगी।'

'आपको एक बार में इतनी लम्बी यात्रा करना अखरता नहीं ?'

'अखरता जरूर है, पर पहले तकलीफ उठा कर आराम करने की मैं पक्षपाती हूँ। सब काम खत्म कर अब की जो बैठूँगी, सो शायद साल भर तक हिलूँगी नहीं और सुजाता क्या जिन्दगी-भर पढ़ती थोड़े ही रहेगी !'

'तो काशी आप को पसन्द है ?'

'मरने के लिए काशी बुरी नहीं है, पर सुजाता की उम्र में लाहौर ही पसन्द आता है।'

सव्यसाची काशी की यह प्रशंसा सुन कर हँसा, बोला—'आप शायद बहुत धार्मिक हैं ?'

'धार्मिक तो नहीं हूँ, पर आर्यसमाजी परिवार में जन्म होने के कारण अनीश्वरवादी नहीं हो सकी हूँ। तुम शायद धर्म को नहीं मानते हो ?'

'नहीं।'

'आजकल सैकड़ों नौजवान ऐसे हैं, जो धर्म नहीं मानते, सब तरह के आप्त-वाक्य पर अश्रद्धा करते हैं, धर्म का नाम व्यंग के साथ लेते हैं। कहेंगे, धर्म अफीम है, पर जब शादी करेंगे, पिता या माता की मृत्यु होगी, तो फौरन धर्म की शरण में चले जायेंगे ! मैं मुट्ठी भर क्रान्तिकारियों की बात नहीं जानती, पर धर्म न मानना उसी प्रकार फैशन हो गया है, जिस प्रकार लड़कियों में कभी यू-कालर कभी वी-कालर फैशन के रूप में रहता है।'

'बात यह है, सभी अपने विचारों को अपने जीवन में व्यावहारिक रूप से ला नहीं पाते। वे नैतिक रूप से उसके महत्व को मानते हैं।'

'शादी के बाद नहीं...!'

बनारस कैंट का पहला सिगनल आ गया। सव्यसाची का सारा शरीर पुलकित हो गया। असंख्य पटरियों के बीच से गाड़ी अपनी पटरी ढूँढ़ कर आगे बढ़ने लगी, और साथ-साथ बहुत जोर से सीटी देने लगी।

जल्दी ही उसका चिरपरिचित कैंट स्टेशन आ गया। पंजाबी महिला देख रही थी कि सव्यसाची स्टेशन के जितने करीब आ रहा है, वह उतना ही उत्तेजित होता जाता है। ममतामयी माता की तरह वे उसकी हरेक गति को ध्यान से देख रही थी। उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि सव्यसाची के आनन्द में कुछ विषाद की मिलावट है। उसकी व्यथा कहाँ है?

गाड़ी रुक गई।

सव्यसाची कुली के सिर पर सामान रखवा कर उतर पड़ा। उस समय पाँच बज चुके थे। पंजाबी महिला ने डिब्बे से गला निकाल कर उसे बिदाई दी। जब तक गाड़ी खड़ी रही, सव्यसाची भी खड़ा रहा और पंजाबी महिला को समझाता रहा कि इस स्टेशन पर इन पाँच सालों में क्या-क्या परिवर्तन उसे मालूम पड़ रहे हैं।

जब गाड़ी चलने लगी, तो सव्यसाची नमस्कार कर विदा हुआ। महिला ने चलती गाड़ी से चिल्ला कर कहा—'याद रहे, लक्सा में डा० बनर्जी का मकान...!'

गाड़ी की गति बढ़ गई।

सव्यसाची ने बताये हुए पते को याद रखने की जरा भी चेष्टा नहीं की, और प्लेटफार्म के बाहर चला गया; क्यों वह किसी का आश्रित हो कर रहे? क्या उसके दो हाथ और दो पैर नहीं हैं? उसने देश का कार्य या जो कुछ भी कार्य किया है, उसे अपना कर्तव्य समझ कर ही किया है। उसके लिए वह कोई पारिश्रमिक या क्षतिपूर्ति क्यों ले?

दूर से एक आदमी उसका पीछा करने लगा।

: ७ :

सव्यसाची का इक्का आकर गुदौलिया के पास रुका। यहाँ से सव्यसाची का मकान पाँच मिनट के पैदल रास्ते पर था। सव्यसाची ने इक्के का नम्बर नोट कर लिया, और अपना सामान पीछे छोड़, यह देखने के लिए चल पड़ा कि पैतृक मकान का क्या हुआ। रास्ते की बत्तियाँ अभी जली नहीं थीं, पर बहुत-सी दुकानों में रोशनी हो चुकी थी। लड़कों के झुण्ड खेल से लौटते हुए तरह-तरह की टीका टिप्पणी करते जा रहे थे। किसी-किसी के हाथ में हॉकी

भी थी। कोई एक अपने सुर में गाता चला जा रहा था। मन्दिरों से शंख और घंटे का शब्द सुनाई पड़ रहा था।

सव्यसाची एक पुराने बनारसी की तरह यह गली वह गली पार करता हुआ एक मकान के सामने जाकर रुका। भीतर से दरवाजा बन्द था।

यह उसका पैतृक मकान था। इसी में वह पैदा हुआ था। इसी में उसका बचपन तथा किशोरावस्था व्यतीत हुई थी। उसके पिता उस बगल वाले कमरे में मरे थे। सव्यसाची इस मकान की प्रत्येक ईंट को पहचानता है।

यद्यपि उसके पिता की मृत्यु हुए नौ वर्ष हो गये, फिर भी उसे वह घटना उसे अच्छी तरह याद है। अमृत डाक्टर ने सीने पर स्टेथोस्कोप लगाते हुए कहा था—'यह तो सब खतम हो गया।'

फिर उसकी माँ किस प्रकार रोती रही, और क्या वह स्वयं भी कुछ कम रोया था।

सव्यसाची के पिता कोई प्रसिद्ध व्यक्ति, यहाँ तक कि अध्यापक या बड़े डाक्टर भी नहीं थे, इसलिए उनकी मृत्यु के समय शोक करनेवालों की भरमार नहीं रही। वे पचास-साठ रुपये तनख्वाह वाले मामूली क्लर्क थे, एकदम साधारण व्यक्ति थे, इसलिए उनकी मृत्यु भी साधारण रूप में हुई थी।

शायद मां की भी मृत्यु उसी कमरे में कहीं हुई होगी। सोचकर सव्यसाची को दुःख हुआ। जिसका एकमात्र पुत्र जेल में हो, और जिसे रिश्तेदारों ने लड़के के ही कारण, अथवा यों कहिए, पुलिस के डर के कारण त्याग दिया हो, उसकी मृत्यु किस अवस्था में हुई होगी, यह कल्पनीय है। अवश्य ही मृत्यु बहुत दयनीय रही होगी।

मकान के अन्दर बच्चों की चहचहाहट सुनाई पड़ रही थी। सव्यसाची ने सोचा—यह खूब रहा कि इसी जगह एक परिवार बिल्कुल नष्ट हो गया, पर वहीं पर कितनी जल्दी और कितनी आसानी से एक दूसरे परिवार ने अपना नीड़ बना लिया। ये शायद जानते भी न हों। इन्हें जानने की जरूरत ही क्या है?

सव्यसाची की सारी अनुभूति की शक्ति इस समय कानों में केन्द्रीभूत थी। वह इस समय सम्पूर्ण रूप से मकान की बातों पर ध्यान लगाये हुए था।

भीतर भाई और बहिन की लड़ाई हो रही थी। बहिन कह रही थी—'क्यों तुमने हमारी कॉपी का पन्ना फाड़ दिया? दूसरे की चीज़ पर तुम्हारा क्या हक़ है?'

भाई ने क्रोध में कहा—'कहा कि मैंने नहीं फाड़ा, फिर भी इस

दुष्ट की वही एक रट है।' फिर कुछ जल्दी में बोला—'जो तुझसे करते बने, कर ले, मैंने फाड़ा है......।'

'मुँह सँभाल कर बात कर। मुझे दुष्ट कहा, यही तुम्हारे स्कूल की शिक्षा है ?'

भाई और बहिन में अपने-अपने स्कूल की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में विवाद पुराना है।

'हां, तू दुष्ट है, भयंकर दुष्ट है, पाजी और उल्लू है, गधा है।'

बहिन का चिल्लाना और साथ ही साथ धम-धम, फिर गिरने का शब्द। दोनों एक साथ बात करने की कोशिश कर रहे थे। बहिन चिल्ला रही थी—'माँ मार डाला।' इत्यादि।

ऐसे समय में ऐसा मालूम हुआ कि कोई अधिक उम्र का व्यक्ति इनमें आया। थोड़ी देर के लिए और भी गड़बड़ी बढ़ गई। लड़ते हुए भाई और बहिन को अलग करते हुए उस आगन्तुक ने कहा—'मैं तो तंग आ गई हूँ। घर में रोज मार-पीट होती है, और वे रोज देर से आते हैं। अच्छा आने दो, आज तुम लोगों की चमड़ी उधड़वा दूँगी। वे आते ही होंगे......मेरे घर में यह सब नहीं चलेगी।'

सव्यसाची ने सोचा कि यह तो पूरा नीड़ है। इसमें उसके सब उपकरण मौजूद हैं। यह औरत कैसे कह रही है, मेरे घर में ? मानो अनादि काल से, जब से सूर्य के पास एक बृहद् नक्षत्र के आ जाने से उसमें उफान आने के कारण पृथ्वी की सृष्टि हुई, उस समय से यह मकान इन्हीं का है। सव्यसाची ने अब और अधिक देर बाहर अँधेरे में खड़े रह कर इन लोगों की बातचीत सुनना उचित न समझा, क्योंकि उस औरत के द्वारा उल्लिखित 'वे' किसी भी समय पीछे से आ सकते थे, और फिर भागने का रास्ता मिलना मुश्किल हो जाता है।

विशेषकर अब इस मकान के साथ उसका उसका सम्बन्ध ही क्या है ? इस मकान का सुख-दुःख उसका सुख-दुःख नहीं है। यहाँ पर जीवन हिलोरे लेता हुआ प्रवाहित हो रहा है, पर उस प्रवाह से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। उसके किनारे से यह नदी बहुत दूर हट गई है। अब तो उसके कलकल निनाद की एक प्रतिध्वनि भी उसके हृदय में नहीं उठती। अब वह इस मकान की दृष्टि में एक अपरिचित है।

उसने दरवाजे का कड़ा पकड़ कर खटखटाया, जैसा उसने सैंकड़ों बार

किया था। साथ ही साथ उधर से बाल-कंठ से किसी ने पूछा—'कौन ?' यह वही स्वर था जिसने अभी अपनी बहिन को भयंकर दुष्ट कहा था।

सव्यसाची ने कहा—'नीचे आइए।'

ऊपर से एक लालटेन लेकर कोई आया और शायद उस लड़की ने जिसकी कॉपी के पन्ने फाड़े गये थे, पूछा—'कौन है ? आप किसे चाहते हैं ? पिताजी अभी घर पर नहीं हैं।'

'मैं आपके पिता जी को नहीं चाहता, मैं...... ।'

ऊपर से किसी तीसरे ने नाराज़ी में नारी-कंठ में कहा—'आश्चर्य है, बच्चों के बाप को आप नहीं चाहते तो किसे चाहते हैं ?'

सव्यसाची जैसे धरती में गड़ गया। दूसरे के मकान में रात के समय वह यह क्या ऊधम मचा रहा है ? खैरियत यह हुई कि इतने में गृहस्वामी स्वयं पीछे से आ गये। अधेड़ उम्र के अपरचित व्यक्ति। प्रसारित लालटेन की रोशनी में सव्यसाची को आगन्तुक ने सिर से पैर तक देखा। उसकी सन्देह भरी दृष्टि के सामने सव्यसाची जैसे गड़ा जा रहा था—और यह अपने ही मकान के सामने।

आगन्तुक ने शायद अन्तिम बात-चीत को सुना था ! उसने किसी प्रकार भूमिका न बाँध कर कहा—'श्रीमान् को जानने का मुझे सौभाग्य नहीं है। आप अवश्य ही मुझे नहीं तलाश कर रहे हैं।' बातों में व्यंग स्पष्ट था।

सव्यसाची ने कहा—'नहीं, मैं किसी को तलाश नहीं कर रहा, मैं पूछ रहा था...।'

सव्यसाची कुछ साफ न कह पाकर 'में में' करने लगा।

'हाँ, आप क्या पूछ रहे थे ? मुझे देख कर शायद भूल गये।' व्यंग उग्रतर था।

'मैं पूछ रहा था कि यह मकान किसका है ?'

'क्यों ?'

'मुझे कुछ काम था।'

क्या काम था, यह सव्यसाची क्या बतावे ?

'वह काम क्या है ? क्या मैं उसे जान सकता हूँ। हाँ, अगर कोई गुप्त बात हो तो न बताइए।'

ऊपर का लड़का नीचे आकर लालटेन हाथ में लिये पिता की बगल में खड़ा हो गया था। सव्यसाची इतने लोगों की सन्देहभरी दृष्टि के सामने कुछ घबड़ा गया।

उसने पूछा—'क्या यह मकान श्रीमती स्नेहलता देवी का है ?'

स्नेहलता सव्यसाची की माँ का नाम था, जो तीन साल पहले मर चुकी थी। इस प्रश्न को पूछ कर सव्यसाची स्वयं ही झेंप गया।

गृहस्वामी ने कहा—'तो यह कहिए! इतना आगा-पीछा करने की क्या जरूरत थी? नहीं, इस नाम की कोई महिला इस मकान में नहीं रहती। अब इसके आगे कहिए ?'

'अच्छा, क्या यह मकान सव्यसाची कुमार के नाम से है ?'

''नहीं, यह मकान उनका नहीं है; यद्यपि यह मकान है एक कुमार ही का—उनका नाम है हरिकुमार।'

'क्या कहा आपने? कौन कुमार ?'

'रायसाहब हरिकुमार, रिटायर्ड डिपुटी मैजिस्ट्रेट।'

यह महाशय सव्यसाची के ताऊ लगते थे। सव्यसाची को यह बात समझने में देर नहीं लगी कि उसी मुकदमे के लिए उसकी माँ ने इस मकान को ताऊ के हाथ बेंच दिया होगा। एक मुहूर्त्त में ही उसकी नस-नस में प्रतिध्वनि उठी कि तुम घर-द्वार हीन, धनहीन, आवारा मात्र हो। उसके लिए सिर छिपाने का भी कोई स्थान नहीं है।

सव्यसाची को और कुछ पूछना नहीं था। उसने कहा—'धन्यवाद, आपको कष्ट दिया।' कह कर अकस्मात् शराबी की तरह गिरता-पड़ता गली से निकल गया। गृहस्थ ने शायद उसे शराबी या पागल समझा, पर किसी को उसके भीतर की ट्रेजेडी नहीं मालूम हुई।

: ८ :

सव्यसाची का मित्र वैद्यनाथ जब दो साल पहले जेल काट कर निकला था, तो उसे दिखाई पड़ा कि उसका शरीर उसके उत्साही मन के साथ कदम रख कर नहीं चल पा रहा है। पहले उसने इसे जेल में रहने के कारण अवसाद समझा; परन्तु जब यह बहुत दिनों तक इसी प्रकार चलता रहा तो वह उसकी अवज्ञा नहीं कर सका। उसके मन के उत्साह में भी भाटा पड़ रहा था, क्योंकि वह जिन व्यक्तियों पर आशा रखता था, उनमें से बहुतेरे तो अभी तक क्रान्तिकारी या सत्याग्रह के मुकदमों के सिलसिले में जेलों में बन्द पड़े थे, और बाकी लोग तटस्थ हो चुके थे।

एक पुराने सदस्य, जो इस समय किसी कालेज में अध्यापक हो गये थे और जिन्होंने इस बीच में एक एंट्रेन्स पास लड़की से शादी कर ली थी (जो

बराबर आगे के इम्तहान दे रही थी) बोले—'क्रान्तिकारी काम मुझे भाई, इस-लिए नहीं रुचते कि इनमें झूठ बहुत बोलना पड़ता है।'

और एक साहब, जो घी के कारोबार में मोटी तनख्वाह पा रहे थे, बोले, 'देखो जी, काम करने के लिए मैं अब भी तैयार हूँ, मैं बिल्कुल डरा नहीं हूँ, पर अब सत्तू खा कर मुझ से काम नहीं होने का। तुम लोग मेरा एक अच्छा-सा भत्ता बाँध दो, जहाँ भी जाऊँगा, सेकेंड क्लास में जाऊँगा, शरीफ आदमी की तरह रहूँगा, तो फिर देखो हम कितना बड़ा संगठन खड़ा कर देते हैं।'

इस भले आदमी की भी इस बीच में शादी हो चुकी थी, और इनकी शादी कुछ रोमांटिक ढंग की थी, ऐसा सुनने में आया।

एक और साहब बोले—'मुझे लेकर तुम लोग अब क्या करोगे ? स्वास्थ्य की दृष्टि से मैं सब तरह के उत्तेजनामूलक कार्यों के लिए अयोग्य हो गया हूँ, पक्की बात है।'

भले आदमी ने यह नहीं बताया कि किस डाक्टर से यह पक्की बात उन्हें मालूम हुई, और कौन-सा रोग उन्हें हुआ है। देखने से तो अच्छे हट्टे-कट्टे और सब तरह से स्वस्थ ही जान पड़ते थे।

एक दूसरे साहब ने कहा—"देखो, जब सब मामला तैयार हो जाय, तो मुझे बुलाना। मरने के लिए मैं अब भी शायद तैयार हूँ, पर जेल काटना मेरे बस का नहीं है, साफ बात है।"

सचमुच ही साफ बात थी। इस प्रकार की साफ बातें वैद्यनाथ से बहुतों ने कहीं। फलस्वरूप वह समझ गया कि अब इन पुरानों को लेकर काम नहीं होने का। उसका भी उत्साह घट गया। डाक्टर ने उसके सीने की परीक्षा की राय दी कि तपेदिक की पहली स्टेज है। यह रोग वह जेल से लाया था।

इलाज चलने लगा, पर कुछ फायदा नहीं हुआ। जितनी बार उसकी थूक की परीक्षा हुई, उसमें तपेदिक के कीटाणु मिले। रोज शाम को बुखार १०० हो आता था और वजन भी निरन्तर घटने लगा और उसकी उस कसरती देह पर किसी ने जैसे कारिख पोत दी।

वैद्यनाथ की उम्र सव्यसाची से दो साल अधिक थी। वह जिस समय गिरफ्तार हुआ था, एम० एस०-सी० का छात्र था। उस समय उसके पिताजी जीवित थे। अब वह छूटा, उस समय भी वे मौजूद थे, पर उनका स्वास्थ्य भी पैतृक हो चुका था और छः महीने के अन्दर उनका देहान्त हो गया। वैद्यनाथ

का पैतृक मकान न तो गिरवी था और न बिका ही था, वह स्वयं ही उसका मालिक था।

क्षय-रोग की वृद्धि के कारण वैद्यनाथ को भुवाली की यात्रा करनी पड़ी। वहाँ कुछ दिनों इलाज के बाद शरीर पहले से कुछ सुधरा, और यह आशा बँध गई कि वह अच्छा भी हो सकता है।

कुछ तबीयत ठीक होते ही उसने बरेली जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट को सव्य-साची से मिलने के लिए दरख्वास्त दी थी, पर बहुत दिनों तक प्रतीक्षा करने के बाद भी उसका कोई उत्तर नहीं आया था। असल बात यह थी कि सी० आई० डी० ने इस मुलाकात को मंजूर नहीं किया था।

सैनिटोरियम के दूध की तरह सफेद बिस्तरे पर लेटे हुए वैद्यनाथ का मन व्यर्थता की तीव्र वेदना से हाहाकार कर उठता था। उसका अपना जीवन व्यर्थ हो गया था, यह वेदना का असली कारण नहीं था, असली कारण कुछ और ही था। उसके मन में इन दिनों कितने प्रकार के सन्देह उठा करते थे कि उसका मन एक विराट प्रश्न चिह्न की तरह हो रहा था। सब साथियों के द्वारा परित्यक्त होकर, जीवन में आघात के बाद आघात पाकर अवसन्न और खिन्न मन में तथा रोगी शरीर में वह धीरे-धीरे सब चीजों, सब बातों, सब लोगों, सब आदर्शों—यहाँ तक कि अपने ऊपर भी श्रद्धा खो चुका था। वह अपने को एक अपरिहार्य खामख्याली तथा उत्कट भाग्य के हाथों में एक खिलौने के रूप में पा रहा था। किसी भी प्रकार वह अपने को इन विचारों से मुक्त नहीं कर पा रहा था।

निर्दिष्ट समय पर नर्स आकर उसका टेम्परेचर ले जाती थी, निर्दिष्ट समय पर डाक्टर आकर उसे देख जाता था। समयानुसार वह खाना खाता और धीरे-धीरे टहलता था। पर बीच-बीच में वह विद्रोह कर बैठता था। वह इस अनुशासन, इलाज,—इन सबमें कोई अभिप्राय नहीं पाता था। उसके जीवन तथा उसके आस-पास के रोगियों के जीवनों को जिलाने के लिए, अर्थात् स्थायी करने के लिए यह तैयारी और तत्परता क्यों? दुनिया में जितने प्राणी जीवित हैं, क्या वही यथेष्ट नहीं हैं? जो लोग स्वस्थ हैं, जिनके फेफड़े उसकी तरह सड़े हुए नहीं हैं; वे तो पेट भर खाना नहीं पाते, फिर इन कुछ थोड़े से सड़े हुए शरीरों को जिला रखने के लिए यह दुराग्रह क्यों? क्या विज्ञान इस प्रकार मानव-जाति की आँखों में धूल झोंक रहा है? असल बात यह है कि जो समस्या है, समस्याओं की समस्या है, विज्ञान ने उसको छुआ कहाँ है? उसको तो दूसरे छू रहे हैं...

इस प्रकार सोचते-सोचते वह अपने विचारों के गोरख-धंधे में खो जाता

था। कभी-कभी वह फिर वही पुरानी क्रान्तिकारी दृष्टि में चीजों को देखना शुरू कर देता था। उस समय वह एकाएक जोश से उठ कर खाट पर बैठ जाता था।

एक बुढ़िया ऐंग्लो-इंडियन नर्स उस पर विशेष कृपा दृष्टि रखती है। बीच बीच में आकर उसके पास बैठकर इधर-उधर की गप्पें हाँकती है। नर्स जानती है कि वैद्यनाथ जेल में रह चुका है। सभी जानते हैं। वैद्यनाथ इस बात को छिपाने का कोई कारण नहीं पाता। वह रोगियों तथा नर्सों को जेल की बातें सुनाता है।

पुलिस इस हालत में भी उस पर चुपचाप निगरानी रखती है।

सभी रोगियों के पत्र आते हैं; पर वैद्यनाथ को कभी पत्र नहीं मिलते। कभी-कभी यह देखा जाता है, कि वह पत्र लिख रहा है, पर कभी उत्तर नहीं आता। जब डाकिया आता है, तो वह सतृष्ण नेत्रों से उसकी ओर देखता है, मानो उसे पत्र लिखने के लिए कोई बैठा है। उसकी एक बहन है, बंगाल में उसकी शादी हुई है। उसका बहनोई न तो जज है, न मैजिस्ट्रेट—एक साधारण पोस्ट मास्टर है। फिर भी वह न तो स्वयं अपने खतरनाक साले से पत्र-व्यवहार करता है और न अपनी स्त्री को उससे पत्र-व्यवहार करने देता है। वैद्यनाथ यह सोचता है कि किसी न किसी दिन उसकी बहिन उसे छिपा कर पत्र डाल देगी; पर दिन के बाद दिन और महीने के बाद महीने आते और चले जाते हैं, पर वह चिरप्रत्याशित पत्र नहीं आता।

अवश्य उसे नियमित रूप से मनिआर्डर मिलता रहता है, पर यह शायद मकान का किराया है।

इस प्रकार निराशापूर्ण, सांत्वनाहीन, भविष्यहीन वातावरण में वह समय व्यतीत करता है। कड़वी दवाएं पीते-पीते तथा शरीर के सम्बन्ध में एकरस प्रश्नों का उत्तर देते-देते वह कभी-कभी धैर्य खो बैठता है, जीवन के प्रति उसकी रही-सही ममता लुप्त हो जाती है। ऐसे समय में उसे एक अवलम्ब की ज़रूरत अनुभव होती है, इच्छा होती है कि कोई आकर दो सहानुभूतिपूर्ण बातें कहे, पर......

ऐसी ही निराशा के एक मुहूर्त्त में वैद्यनाथ अपना बिस्तरा छोड़कर निकल पड़ा और एक कुर्ते और एक पाजामे में जिधर आँख गई, उधर ही चल पड़ा।

: ६ :

जब अगले दिन सव्यसाची एक मारवाड़ी के द्वारा बनाई हुई धर्मशाला के एक कमरे में जगा, और प्रातःकाल की किरणों ने उसे स्पर्श किया तो वह

पुलकित हो गया। पर जब वह उठने लगा तो उसे मालूम हुआ कि उसके बदन में तथा पैर में भारी दर्द है। ऐसा मालूम हुआ कि उसके प्रत्येक अंग में किसी ने एक-एक मन का बटखरा बाँध रखा है। फिर भी उसमें मुक्ति का आनन्द था, यौवन की स्फूर्ति थी; इसलिए वह अवसाद, ग्लानि तथा थकावट के रहते काशी भ्रमण करने और दो-एक पुराने मित्रों की तलाश करने निकल पड़ा।

वह काशी का रहने वाला था; काशी की प्रत्येक गली से वह भली-भाँति परिचित था। यद्यपि काशी के चेहरे में इस बीच में कुछ-कुछ परिवर्तन हो चुका था, फिर भी वह उसी तरह थी, जैसी पहले थी।' इन छः सालों में बहुत से उन्नतिशील शहरों में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए थे, उनके नव-जन्म हुए थे, पर काशी की बात अलग है। काशी रोम की तरह, बल्कि रोम से भी अधिक, चिरन्तन नगर है। यहाँ पर न तो व्यापार की होड़ है, न राजधानी की कार्य-व्यस्तता है, न लेन-देन की बड़ी दौड़-धूप है, और न गाड़ियों तथा मोटरों की भरमार है।

काशी अगर कुछ है तो धार्मिक नगर है, अतीत युग का नगर है। वर्तमान की पुकार उसके ऊपरी हिस्से तक पहुँच कर रह गई है, आत्मा तक नहीं पहुँची, इसलिए ऊपर से आधुनिकता की कलई होने पर भी उसकी आत्मा पौराणिक रह गई है। प्राचीनता के सब दोष तथा गुण उसमें हैं चिरन्तन नगरी अपने असंख्य मन्दिरों की चूड़ाओं और कलसों को आकाश के हृदय में बेंध कर अपने चिरन्तन अनादि रूप में मौजूद है। धर्म और धार्मिक उत्सव कभी-कभी बूढ़ी काशी के कंकाल में प्राणों का स्पन्दन फूँक देते हैं। असंख्य नगारे बज उठते हैं, असंख्य घृत-दीप जल उठते हैं, गली-गली में वे ही गान तथा वे ही मन्त्र ध्वनित हो उठते हैं, जो हजारों वर्ष पहले ध्वनित होते थे। पर यह गर्मी थोड़ी ही देर तक स्थायी होती है, फिर वही शिथिलता आ जाती है।

राजनैतिक आन्दोलन देश के एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त तक तरंगों का विलास उठाकर चला गया। काशी में भी उसकी लहरें आकर टकरायीं और सच बात तो यह है कि काशी बहुत दिनों तक उत्तर भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन का मुख्य केन्द्र बनी रही। अन्य राजनैतिक आन्दोलनों में भी काशी का योग नगण्य नहीं है, फिर भी इन सब बातों ने शायद कभी इस 'अचलायतन' के हृदय को स्पर्श नहीं किया। जो लोग असली काशीवासी हैं, वे उसी प्रकार से गंगा-स्नान करते हुए और विश्वनाथजी और अन्नपूर्णाजी के दर्शन करते हुए जीवन व्यतीत कर देते हैं, और मरने के बाद मणिकर्णिका तथा हरिश्चन्द्र घाट में फूँके जाते हैं।

भारत की क्यों, दुनिया की बृहत्तम मुर्दाभाषा यदि कहीं जीवित है तो इसी काशी में। दो हजार वर्ष या उससे भी पुराना हिन्दू धर्म यदि कहीं पर अपने सब क्रिया-कांडों और अनुष्ठानों के साथ जीवित रहने की कोशिश करता है, तो इसी काशी में। कई हजार वर्ष पहले आर्यगण किस सुर में कौन-सा गाना गाते थे, इसे कोई सुनना चाहे तो काशी में दिन-रात होने वाले वेद-पाठ में सुन ले। लोग अपनी जन्मभूमि तथा प्रियजनों को छोड़कर इसी काशी में मरने के लिए आते हैं, इसलिए काशी मुख्यतः मुर्दों और मुर्दा चीजों का शहर है।

सव्यसाची अब घोर अनीश्वरवादी हो चुका है; पर एक जमाना था जब कि वह धार्मिकों में भी धार्मिक, और कट्टरों में भी कट्टर था। उसने अपने पिता से रामकृष्ण, विवेकानन्द की विचारधारा पायी थी, और अत्यन्त छोटी उम्र में ही वह अनुवादों की सहायता से मुख्य उपनिषदों को पढ़ चुका था। बहुत दिन तक भौतिकवाद के प्रबल झोंकों के सामने उसने अपना धार्मिक रूप कायम रखा, पर अन्त में जैसे एक ही बार सन्तरे का छिलका उतारा जा सकता है, वैसे एक ही चोट में उसकी धार्मिकता खत्म हो गई। बॉयरन ने जैसे एक दिन सवेरे उठकर देखा था कि वह प्रसिद्ध हो चुका है, उसी प्रकार सव्यसाची ने एक दिन यह देखा कि वह अनीश्वरवादी हो चुका है—भुवा से तितली हो चुका है।

सव्यसाची चलकर वैद्यनाथ के मकान के सामने खड़ा हो गया। उसके पुकारने पर एक भद्र महाशय नीचे उतर आये, और बोले, 'इस मकान में वैद्यनाथ बाबू नहीं रहते।'

'यह मकान तो उन्हीं का है?' सव्यसाची ने यह आशंका की कि शायद उसे इस बात का उत्तर न मिले—वह इस हद तक निराश हो चुका था।

'हाँ, हम उन्हीं के किरायेदार हैं।'

'वे कहाँ हैं? बनारस में ही हैं?'

'नहीं, वे जेल से छूटने के बाद कुछ दिन यहाँ रहे, उसके बाद तपेदिक का इलाज कराने भावली चले गये। वहाँ से वे एक दिन बिना कुछ कहे-सुने पता नहीं कहाँ चले गये।'

'ऍं।'

'हाँ, बहुत से लोग यह समझते हैं कि रोग के कष्ट के कारण उन्होंने आत्म-हत्या कर डाली, पर पुलिस समझती है कि वे रूस चले गये हैं।'

सव्यसाची ने जरा कौतुक के साथ कहा, वह आत्म-हत्या करनेवाला जीव

नहीं है, पर किसी के मतानुसार रूस जाने का अर्थ यदि आत्म-हत्या करना है, तो वह बात दूसरी है।'

सव्यसाची दूसरे मित्रों के पास गया, तो उन लोगों ने उससे अपने चुप बैठने के लिए वे ही कारण बताये जो उन्होंने वैद्यनाथ को बताये थे। हाँ, उन्होंने एक नई बात यह भी जोड़ दी कि वैद्यनाथ के आलस्य तथा निकम्मेपन के कारण ही काशी का सारा संगठन विध्वस्त और छिन्न-भिन्न हो गया। इस विषय में वे सभी एकमत थे।

इसके अतिरिक्त ये भूतपूर्व क्रान्तिकारी क्रान्तिवाद को लोगों की आँखों में हेय साबित करने का जाने-अनजाने प्रयत्न भी कर रहे थे। मनुष्य अपने विषय में और चाहे कोई भी बात स्वीकार कर ले, पर एक बात कभी भी स्वीकार नहीं करता कि वह कायर या घरघुसू है। इस अपवाद से बचने के लिए वह अपने को गुमराह और अहमक और अपने गत जीवन को अहमकपन की एक परंपरा मानने से नहीं हिचकिचाते।

सव्यसाची ने इन लोगों की बातें सुनीं और इन लोगों के कामों को देखा और वह इस परिणाम पर पहुँचा कि इन लोगों से कुछ होने की उम्मीद नहीं। सव्यसाची को यह देखकर और भी आश्चर्य हुआ कि यह भूतपूर्व क्रान्तिकारी कांग्रेसियों से भी अधिक बच कर और दब कर चलने की चेष्टा करते हैं, और सब के सब साहित्यिक हो गये हैं। सव्यसाची अपने जेल-जीवन के फलस्वरूप नहीं, बल्कि पहले ही साहित्य क्षेत्र में पदार्पण कर चुका था। उसके कुछ लेख जेल जाने के पहले उसकी इक्कीस साल की उम्र में ही प्रकाशित हो चुके थे।

उक्त भूतपूर्व क्रान्तिकारियों में बहुतों ने वास्तविक साहित्यिक प्रतिभा का परिचय दिया था। शायद इस प्रतिभा के विकास का कारण यह था कि उन लोगों ने जीवन के बहुत ऊँच-नीच देखे थे।

लौटते समय सव्यसाची महज कौतुकवश एक बार विश्वनाथजी के मन्दिर में गया। उसका उद्देश्य मन्दिर के अन्दर जाकर दर्शन करना नहीं था। वह खड़ा होकर भक्तों की भीड़ देखने लगा। सब कुछ उसी प्रकार है जैसा पहले था—जैसा वह लड़कपन से देखता आ रहा है, जैसा शायद सैंकड़ों वर्षों से है। भक्तों के चेहरों की ओर ताक कर उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि ये सब ढोंगी हैं य. बन रहे हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। वह चिन्तित हो उठा।

उसे इस बात का कौतूहल हुआ कि कौन सी ऐसी वस्तु है, जो इन लोगों को इस प्रकार खींच लाती है? वह मन्दिर के आँगन में घुस गया। उसने

उस आँगन को सैंकड़ों बार देखा था। वह रुपयों से जटित संगमरमर का आँगन, सीढ़ी और फिर छोटा-सा दालान पार कर मुख्य मन्दिर में घुस कर शिवलिंग की ओर ताकने लगा। भक्तगण बराबर आ रहे थे और अपनी भक्ति का अर्घ्य देवता पर चढ़ा कर दीप्त चेहरा और सन्तुष्ट मन लेकर लौट रहे थे।

वह सारा ध्यान लगाकर बड़ी देर तक एक टक उस शिवलिंग की ओर देखता रहा। उसने सोचा—करोड़ों आदमियों के विश्वास, श्रद्धा अर्घ्य और प्रार्थना की तह में कहीं न कहीं एक बिन्दु सत्य का अवश्य होगा। यह नहीं हो सकता कि युगों तक एक विराट जन-समूह गुमराह रहा हो। पर जितना ही ध्यान से वह उस शिवलिंग को देखता रहा, उतनी ही उसकी यह धारणा दृढ़ होती गयी कि यह एक विराट जालसाजी और धोखेबाजी के अतिरिक्त कुछ नहीं है। उसे विश्वास होने लगा कि धर्म का चला जाना अत्यावश्यक है। धूप, दीप की मनोवैज्ञानिक सहायता लेकर धर्म उस पर अपना माया-जाल फैलाने में असमर्थ रहा।

अत्यन्त उत्तेजित अवस्था में वह मन्दिर से निकल आया। उसके माथे से टप-टप पसीने की बूँदें गिर रही थीं।

इसके बाद उसने बाज़ार में जाकर पूरियाँ खायी और फिर बिस्तरे का जो आश्रय लिया, सो फिर शाम तक नहीं उठा। वह कहाँ जायगा? इसलिए बीच-बीच में जग कर भी वह सो गया। खाने के लिए बाहर तो जाना ही पड़ेगा। पर भूख भी जाती रही। सिर में जोर का दर्द हो रहा था। संध्या समय वह फर सो गया। उसका शरीर टूट रहा था।

जब अगले दिन बड़ी देर तक सव्यसाची ने कोठरी का दरवाज़ा नहीं खोला, तो धर्मशाला के अधिकारी वर्ग उसके दरवाज़े के पास चिल्ल-पों करने लगे। जब भीतर से कोई आवाज़ नहीं आई, तो किसी भयंकर कांड का सन्देह कर कठोरी का दरवाज़ तोड़ डाला गया।

सव्यसाची एक दरी पर चित पड़ा था। उसके सिर के नीचे तकिया भी नहीं था! एक कोट तकिया की तरह तह करके सिर के नीचे रखा था। सामने ही किताबों का बक्स रखा था। कोठरी के एक कोने में नन्हें से अल्यूमिनियम के गिलास से ढकी एक नई सुराही पड़ी थी—चौबीस घण्टे के अन्दर खरीदी हुई यही उसकी गृहस्थी थी।

सव्यसाची की आँखें बन्द थीं, ऐसा मालूम होता था कि वह सो रहा है।

दरवाज़ा टूटते ही बहुत से लोग एक साथ कोठरी के अन्दर घुस गये। इनमें कई यात्री भी थे। एक ने कहा—'यह तो मर गया है।'

मरने का नाम सुन कर जो लोग केवल तमाशा देखने आये थे, वे कई कदम पीछे हट गये। पर एक नंग-धड़ंग जनेऊ धारी व्यक्ति सव्यसाची की ओर बढ़ा, और उसके शरीर को छूकर बोला—'शरीर जल रहा है, अभी नहीं मरा, अभी इसकी बड़ी उम्र है!'

धर्मशाला का अध्यक्ष ऐसे मौकों पर अपने कर्त्तव्य को भली-भाँति समझता था। उसने एक डाँट में सब तमाशबीनों को वहाँ से हटा दिया। अब वहाँ केवल वह, जनेऊधारी व्यक्ति और दरवान रह गये।

धर्मशाला के अध्यक्ष ने दरवान से कहा कि वह तीन अन्य दरवानों को बुला लावे। तदनुसार वह चला गया। ऐसे मामले धर्मशालाओं में अक्सर हो जाते हैं। यह तो खैर कुछ भी नहीं। कभी-कभी यात्री सचमुच मुर्दा हालत में भी पाये जाते हैं। इसलिए धर्मशाला का अध्यक्ष अपना कर्तव्य भली-भाँति जानता था। वह घबड़ाने वाला जीव नहीं था। इस समय एक-एक मिनट कीमती था।

धर्मशाला के अध्यक्ष के एक इशारे पर जनेऊधारी व्यक्ति ने सव्यसाची की जेब, कमर आदि जो खास स्थान हैं, उन्हें क्षिप्र तथा अभ्यस्त हाथों से टोह लिया। सव्यसाची बेहोश था, पर धर्मशाला के अध्यक्ष को ऐसा मालूम हुआ जैसे सव्यसाची ने कुछ मुँह बनाया हो। निश्चिन्त होने के लिए उसने चिल्लाकर पुकारा—'बाबू! ऐ बाबू! बाबूजी!'

पर उत्तर नहीं मिला।

तलाशी जारी थी। सव्यसाची के सिराहने रूमाल में बँधी हुई एक पोटली थी। खोजने वाले ने उसे अध्यक्ष के हाथ में दिया। अध्यक्ष ने गिनकर देखा, सोलह रुपये दो आने थे—सव्यसाची की सारी पूँजी।

अध्यक्ष ने रूमाल फेंक दिया और माल जेब में रखा। कौन जाने रूमाल में नाम-वाम लिखा हो। सावधानी अच्छी होती है।

अध्यक्ष ने पूछा—'यही, या और कुछ भी है? देखो तो उस बक्स में क्या है?

चाबी से बक्स खोला गया। बड़ी छान-बीन करने पर भी उसमें पुस्तकों के अतिरिक्त कोई भी चीज़ नहीं मिली। निराश होकर अध्यक्ष ने कहा—'इसके बक्स में सिर्फ किताबें ही किताबें हैं।'

जनेऊधारी व्यक्ति ने कहा—"मालूम होता है कि किताबों की फेरी करता है।"

"होगा, पर बहुत कम मिला। इससे तो एक हफ्ते की ठंडाई भी नहीं चलेगी।"

फिर से वह एक-एक किताब को अच्छी तरह से टटोलता गया, शायद कहीं नोट छिपा कर रखा गया हो। सव्यसाची के सिर के नीचे से कोट खींच लिया गया था, इसलिये उसका सिर एक तरफ झुक गया था। आगन्तुकों का ध्यान उस तरफ नहीं था।

चार दरवान आ गये। अध्यक्ष की आज्ञा से तीन तो सव्यसाची को टाँग कर ले चले, और एक उसके बक्स तथा दूसरी चीजों को लेकर पीछे-पीछे चला।

: १० :

हिमालय की तराई में एक छोटा-सा गाँव कठिन वास्तविकता से घिरे हुए एक कठिन स्वप्न की तरह। तपस्वी हिमालय दिन रात मुग्ध-नयनों से इस गाँव की ओर टकटकी बाँध कर देखते रहते हैं। चाहे धूप हो, आँधी हो, पानी हो, यह अथक अवलोकन जारी रहता है। एक छोटी-सी तेज़ बहने वाली नदी के रूप में वृद्ध हिमालय इस ग्राम को अपना स्नेहार्द्र भेजते रहते हैं, जो गाँव के पैरों से सटकर दुलार में इठलाती हुई बारहों मास बहती रहती है। इसी नदी के किनारे-किनारे गाँव वालों के खेत हैं। खेतों में मुख्यतः धान की खेती होती है। पर वह कितना अनमोल धान है। समतल के किसान उस सुगन्धयुक्त लम्बे दाने वाले धान की कल्पना भी नहीं कर सकते। भारत और भारत से बाहर के धनियों की थालियों के लिये यह धान उपजाया जाता है। दूर-दूरान्तर के बनिये आ-आकर यहाँ से धान, चावल, घी, कम्बल ले जाते हैं, और उनके बदले में तरह-तरह की टीम-टाम की चीजें, कपड़े, नमक और रुपये दे जाते हैं। ये बनिये इस तरह छः-सात गुना मुनाफा कमाते हैं। यहाँ से सबसे पास का डाकखाना सात मील पर तथा स्टेशन २२ मील पर है। बैल गाड़ी और बौने पहाड़ी टट्टू यहाँ के एकमात्र वाहन हैं।

ये बनिये गाँव वालों के पास न केवल बाहर की चीज़ें लाते हैं, बल्कि बाहर की बहुत-सी खबरें भी लाते हैं। अवश्य ही वे लोग जो खबरें लाते हैं, वे 'खबर' नाम के योग्य नहीं होतीं, फिर भी इन मनगढ़न्त बातों में बाहर की हवा आ ही जाती है। गाँव वाले दिल खोल कर उसकी आवभगत करते हैं।

पर एक दिन इस गाँव में एक ऐसा व्यक्ति आया, जो साधु नहीं मालूम पड़ा। बनिया तो वह था ही नहीं, क्योंकि बनिये जब आते हैं तो दल-बल के सहित आते हैं। उनके पीछे या तो बैलगाड़ियाँ आती हैं, या घोड़ों के झुण्ड।

आगन्तुक को गाँव वाले घेर कर खड़े हो गये। आगन्तुक के दुबले-पतले चेहरे ने अनायास उनमें करुणा उत्पन्न कर दी। यह आगन्तुक और कोई नहीं, भुवाली के सेनिटोरियम से भागा हुआ वैद्यनाथ था।

गाँव वालों ने वैद्यनाथ से बहुत से प्रश्न पूछे। उसने सरलता के साथ अपने विषय में सब बातें बतायीं। केवल एक बात उसने अपने सम्बन्ध में छिपाई, और वह यह कि वह कभी जेल में गया था। वह थकावट के मारे हाँफ रहा था। धम्म से वह जमीन पर बैठ गया। उसे यहाँ पहुँचने में कई दिन लगे थे।

भीड़ से एक बूढ़े ने आकर पास बैठते हुए पूछा—"मुसाफिर, तुम हमारे गाँव में ठहरोगे?"

"हाँ, हम यहाँ रहेंगे।"

"अच्छी बात है, तुम हमारे बच्चों को पढ़ाना। तुम पढ़ना-लिखना तो जानते हो?"

"हाँ, मैं पढ़ना-लिखना तो जानता हूँ, पर अब लिखने-पढ़ने के काम में मुझे रुचि नहीं है। मैं तो तुम्हारे यहाँ धान के खेतों में काम करूँगा, पढ़ते-पढ़ते मेरा दिमाग खराब हो गया है।"

बूढ़े ने कहा—"पढ़ते-पढ़ते दिमाग खराब हो जाता है, यह तो हम भी जानते हैं। हम लोग भी पढ़ना नहीं जानते।" कह कर उसने आगन्तुक के शरीर का अन्दाज़ा लिया, और फिर कहा—"पर खेती की मेहनत तो तुम से नहीं सँभलेगी, तुम हमारी बकरियों को चराना।"

दूसरे दिन से वैद्यनाथ गाँव के अन्य चरवाहों के साथ घाटियों में भेड़ बकरियाँ चराने लगा। नन्हीं-सी पहाड़ी नदी तीन-पैनी में वह घंटों तैरता रहता। बकरियाँ पेड़ के नीचे बैठकर जुगाली करती हुई उसे घूरती रहती हैं। गाँव के लड़के-बच्चे उससे मुँह जबानी देश-विदेश की बातें सीखते। जब बकरियाँ घास के मैदानों की ओर से दृष्टि हटा कर धान के खेतों की ओर लोलुप दृष्टि से देखतीं, तो वैद्यनाथ हँसकर उन्हें अपने हाथ की छोटी-सी लाठी दिखला देता। बकरियाँ फिर अन्यमनस्क होकर सिर झुका कर घास खाना शुरू कर देतीं।

वर्षा के बाद घास की प्रचुरता रहती थी। उस समय गाँव के पास ही

घास मिल जाती थी। पर गर्मियों में घास की कमी पड़ती थी। वैद्यनाथ पहाड़ी पेड़ों पर चढ़कर बकरियों के लिए पत्ते तोड़ता सब चरवाहे इसमें जुटते थे। यह कार्य एक बहुत मज़ेदार उत्सव-सा होता था।

वैद्यनाथ और दूसरे चरवाहे जब इस पर भी बकरियों के लिए खाद्य नहीं जुटा पाते, तो वे अपने ढोरों को लेकर गाँव से दो दिन के रास्ते पर चले जाते थे। रातें वे खुले मैदानों में काटते, ढोरों से सटकर तथा कम्बल ओढ़ कर। जंगली जानवरों को दूर रखने के लिए चारों किनारों में आग जलायी जाती थी। रात में भेड़िये जितना ही गुर्राते थे, बकरियाँ और भेड़ें उतना ही अपने चरवाहों से सटकर बैठती थीं। मनुष्य और बकरियों में कोई भेद-भाव नहीं रहता था। वैद्यनाथ एक सीधे से बकरे को खींच कर तकिया बना कर लेट जाता था। पहाड़ी कुत्ते पहरे पर तैनात रहते थे। यद्यपि ये कुत्ते देखने में बहुत बड़े नहीं होते; फिर भी दो कुत्ते एक भेड़िये को अनायास ही गिरा सकते हैं।

इन दिनों ये लोग मुख्यतः बकरी के दूध में पकी हुई, राजा-महाराजाओं की मेज़ के लिए उत्पन्न चावल की खीर खा कर ही रहते थे।

वैद्यनाथ इन पहाड़ी चरवाहों में विशेष लोकप्रिय हो गया था। उसने उनको कितने ही नये ढंग के खेल सिखलाये थे। वह उनके सब खेलों में उन्हीं की तरह बनकर शरीक होता था। वैद्यनाथ इन पहाड़ियों के नृत्यों और खेलों में भी भाग लेता था।

इन चरवाहों में एक ग्यारह वर्ष की लड़की थी, जो लड़की होने पर भी सब तरह के खेलों में, पेड़ों पर चढ़ने में तथा तैरने में लड़कों को परास्त करती थी। दूध दुहने में उसके मुकाबले में कोई नहीं था। जब वह बकरी का थन पकड़ कर दुहना शुरू करती थी, तो बकरी वहाँ से तब तक नहीं हिलती थी, जब तक उसका सारा दूध दुह न लिया जाता। उसकी बनायी हुई खीर में एक अनिर्वचनीय स्वाद न केवल वैद्यनाथ को, बल्कि सभी को मिलता था। उसका स्वास्थ्य हिमालय की तरह अटूट था। वह तीन पैनी नदी की तरह चंचल थी, उसका ऊपरी हिस्सा कुछ रूखा था, पर जब वह हँसती थी तो, उसके भीतर का मानव और भीतर की भावी स्त्री सरस रूप से प्रकट होती थी।

वैद्यनाथ ने इस लड़की को जेल में सीखी हुई सिलाई-विद्या सिखलायी। वैद्यनाथ ने इसी को ही यह विद्या सिखलायी, ऐसी बात नहीं। उसकी छात्राओं में केवल वही सफल रही। उसने उसे पुडिंग और केक बनाना भी सिखलाया, अवश्य कुछ परिवर्तित रूप में।

लड़की का नाम खिरनी था। वैद्यनाथ के पास सभ्यता तथा सभ्य देश की एक निशानी रह गयी थी—एक जेब घड़ी। शुरू-शुरू में उस घड़ी को देखने के लिए आस-पास के गाँवों के बहुत से लोग आकर उसे परेशान करते थे। वैद्यनाथ इसके पीछे के हिस्से को खोल कर उन्हें और भी आश्चर्य में डाल देता था। सारे गाँव में वह केवल खिरनी को ही यह समझा सका था कि इस घड़ी में कोई अलौकिक बात नहीं है, बाकी सभी यह सन्देह करते थे कि इस घड़ी के चलने में किसी-न-किसी भूत-प्रेत का हाथ है। खिरनी बहुत समझदार थी। वैद्यनाथ लड़कों को पढ़ाता था, पर खिरनी नहीं पढ़ती थी। जब वह एक दिन पढ़ने आयी, तो उसे एक चिह्न दिखला कर यह बतलाया गया कि यह 'अ' है। इस पर वह हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयी। बहुत चेष्टा करने पर भी वैद्यनाथ उसे पढ़ा नहीं सका। इससे वैद्यनाथ के मन को बहुत आघात पहुँचा, फिर भी वह चेष्टा करता ही रहा।

इतने दिनों तक इस प्रकार रह कर वैद्यनाथ का स्वास्थ्य फिर ठीक हो गया, तपेदिक का तो नाम भी नहीं रहा। अब वैद्यनाथ बहुत स्वस्थ हो गया था। स्वास्थ्य के लौटने के साथ ही साथ उसकी मानसिक स्फूर्ति भी लौट आयी। भुवाली में उसका मन सन्देहों से पूर्ण हो रहा था, अब उसे कुछ सन्देह नहीं था।

वैद्यनाथ इस सरल पहाड़ी जीवन का इतना अभ्यस्त हो गया था, तथा इस जीवन पर वह इतना मुग्ध था कि वह लौटना ही नहीं चाहता था। उसे पहले का शहरी जीवन कभी याद ही न आता हो, ऐसी बात नहीं, पर उसे मालूम होता था जैसे उसका पुनर्जन्म हो गया है, इस जीवन के साथ जैसे उस जीवन का कोई सम्बन्ध ही न हो। यह बात याद कर उसे दुःख होता था, पर वास्तविकता को वह इसी रूप में देख रहा था। इसके अतिरिक्त लौटने के लिए क्या आकर्षण था। जिस उद्देश्य तथा लक्ष्य को वह प्राणों का समस्त खून डाल कर प्यार करता था, वह उस लक्ष्य की पूर्ति की कोई आशा नहीं देखता था।

हिमालय, तीन पैनी नदी और एक अभावहीन और एक प्रकार से आदिम और जंगली जीवन ने उसे मुग्ध किया था। वह इनको छोड़कर समतल में लौटने लिए तैयार नहीं था।

इसके अलावा वह यहाँ पर कुछ कुछ स्नेह में बँध भी चुका था, बहुत दूर तक वह अपनी जड़ जमा चुका था। वह उससे अपने को एकाएक अलग नहीं कर सकता था।

कई दिन तक खिरनी को न देख कर वैद्यनाथ को आश्चर्य हुआ। एक दिन उसने मुँह खोल कर साथ के लड़कों से पूछा—"खिरनी को कई दिन से नहीं देख रहा हूँ, बात क्या है?"

एक लड़के ने कहा—"उसकी तो शादी है, यह भी नहीं जानते हो?"

"ओ!" वैद्यनाथ ने एकाएक आश्चर्य से कहा—'किसके साथ?'

"दूसरे गाँव में होगी, उसके बाप ने तय किया है!"

एक दूसरा लड़का आगे बढ़ कर बोला—"शादी किसी पैसे वाले के साथ हो रही है। उसके दो सौ भेड़ें और बकरियाँ हैं, बड़ा आदमी है।"

उस दिन वैद्यनाथ कुछ अन्यमनस्क रहा। लड़कों ने भी यह बात भाँप ली।

यथा समय शादी का दिन आया। शादी से पहले वैद्यनाथ वर को देख आया था। वह एक ६० वर्ष का बूढ़ा था, उसने बीस गड़े रुपये देकर लड़की के बाप से लड़की ले ली थी। उस आदमी के नाती भी थे, पर उसका स्वास्थ्य अभी उम्र के देखते काफी अच्छा था।

वैद्यनाथ के मन को बहुत ठेस लगी। उसने यहाँ के जीवन को जितना प्राकृतिक और सुन्दर समझा था वह वैसा नहीं था। वैद्यनाथ चुप बैठने वाला जीव नहीं था। उसने जाकर लड़की के बाप को समझाया। लड़की के बाप ने उसकी बातें सुनकर इस प्रकार रुख दिखलाया, मानो वह उसकी भाषा ही नहीं समझ रहा है। बड़ी देर तक बकने-झकने के बाद वैद्यनाथ वहाँ से उठ गया। अनादि काल से जो बातें होती आ रही हैं, उनमें कहीं गलती भी हो सकती है, यह बात लड़की के बाप के समझ में नहीं आई।

लौटते वक्त वैद्यनाथ के साथ खिरनी की भेंट हुई। वैद्यनाथ ने कहा—"खिरनी, तेरी शादी एक बूढ़े से हो रही है, तुझे इसका मलाल नहीं है?"

खिरनी ने मुस्करा कर अपने शरीर पर के नये गहनों की ओर संकेत करते हुए कहा—"देखो, अच्छा ही तो हो रहा है!"

बात सुन कर खिरनी पर वैद्यनाथ को बहुत क्रोध हो आया। उसके सारे शरीर में जैसे किसी ने आग-सी लगा दी हो। जो अपनी भलाई नहीं समझते, उनकी भलाई कौन कर सकता है? वैद्यनाथ निराश होकर अपने ठिकाने पर आकर बिस्तरे में लेट गया, पर अन्त तक वह खिरनी को दोष नहीं दे सका, बल्कि उस पर दया का ही उद्रेक हुआ। बहुत दिनों तक जो आग उसके अन्दर

राख के ढेर में दबी हुई थी, इस घटना से वह फिर क्षितिज तक अपनी शिखा विस्तार कर धधक उठी। वह फिर विद्रोही और क्रान्तिकारी हो गया।

एक खिरनी से उसे सैकड़ों खिरनियों की याद हो आई। यह खिरनी तो खैर सभ्यता से बहुत दूर रहती है। बेचारे पहाड़ी अशिक्षित हैं, जो कुछ बाप-दादों से देखते चले आ रहे हैं, बिना सोच-विचार के उसी पर अमल करते जाते हैं; पर सभ्यता की ठीक नाक के नीचे शिक्षा के गढ़ शहरों में जो सैकड़ों तरुण जीवनों का सर्वनाश हो रहा है, हजारों खिरनियाँ हैं। उनका क्या? एकाध खिरनी तो नहीं,।

यही क्रान्तिकारी मनोवृत्ति है। क्रान्तिकारी खंडशः दुनिया का उद्धार नहीं करना चाहता। एक दुःख से सैकड़ों दुःखों की चिन्ता में पड़ जाता है, एक की दवा खोजने के लिए निकल कर वह सबके लिए संजीवनी की तलाश करता है। एक प्रदीप से वह सन्तुष्ट नहीं होता है, वह रात को एक अविच्छिन्न दिवाली कर देना चाहता है। समय के आगे रहता है। इसी में उसके जीवन की ट्रेजेडी है।

शादी रुकी नहीं, हो गई।

वैद्यनाथ उसी दिन चुपचाप फिर समतल प्रदेश के लिए रवाना हो गया। समतल अपनी असंख्य समस्याओं के साथ पुकार रहा था। अब इस पुकार को अस्वीकार करना असम्भव था।

: ११ :

ट्रेन की पंजाबी भद्र महिला का नाम धर्मशीला था। बाँकीपुर में अपनी जमींदारी का काम खतम कर जब वे बनारस लौटीं, तो उन्हें मालूम हुआ कि सव्यसाची या उस शक्ल-सूरत का कोई भी आदमी उनके लक्सा वाले बंगले के पास नहीं फटका। उन्हें कुछ क्रोध आया। फिर यह स्मरण हो आया कि इस क्षण-परिचित पर उनका दावा ही क्या है? पर संसार के अनुभव से अथवा किसी कारण से उन्हें ऐसा लगा जैसे सव्यसाची एक ट्रेजेडी की ओर गर्दन तोड़ द्रुतता के साथ अग्रसर होता जा रहा हो। सव्यसाची के दुबले-पतले, पीले, मानसिक रूप से एकादशी करते हुए, स्वप्नदर्शी तरुण चेहरे की बात उन्हें जितनी ही बार याद आने लगी और उसके द्वारा अपने आदर्श के लिए जेल काटने और अपना सर्वनाश कर लेने का दृश्य जितना ही उनके सामने उपस्थित होने लगा, उतना ही उनके मन में उसके प्रति करुणा का संचार होने लगा। सव्यसाची के सम्बन्ध में उनका जो कौतूहल था, वह केवल भावुकता के

कारण नहीं था, बल्कि जिस नाटक के चार अंक देखे जा चुके हैं, उसके पाँचवें अंक में क्या होता है, इस तरह का कौतूहल भी था।

धर्मशीला ने बहुत सालों से किसी मामले में इतनी अधिक दिलचस्पी नहीं ली थी। उनका जीवन एक शान्त, एकरस चाल से चलता था। अकस्मात् उसमें इस भँवर की सृष्टि हुई। यह भँवर सुखकर था या दुःखकर, इस बात को समझने के लिए वे नहीं रुकीं। यह समझने का उन्हें अवसर नहीं था। वे चुपचाप सारे बनारस में सव्यसाची की खोज करने लगीं।

लक्सा वाले बंगले में भिन्न-भिन्न कामों के लिए कई नौकर-चाकर और माली रहते थे। इनमें सोहनसिंह सबसे पुराना था। सोहनसिंह धर्मशीला के पिता के जमाने का नौकर था। उसका सफेद दाढ़ी मूँछ वाला चेहरा और छः फीट लम्बा डीलडौल इस बंगले का अनिवार्य हिस्सा हो गया था। उसकी निरर्थक चिल्ला-चिल्ली, और ऊँचे 'जपजी' के पाठ से सारा बंगला गूँजता रहता था। कोई भी नहीं जानता था—यहाँ तक कि धर्मशीला भी नहीं जानती थी—कि उसके काम का कहाँ आरम्भ है और कहाँ अन्त उसे कितना अधिकार है। एक काम वह नियमित रूप से करता था। जब 'छोटा बाबू' अर्थात् धर्मशीला का पुत्र अशोक फिटन पर चढ़ कर स्कूल जाता था, तब वह अपनी सामरिक पगड़ी को बाँध कर मूँछों को जाल से खींच-बाँध कर फिटन के पीछे जाकर खड़ा हो जाता था। सईस की हैसियत से नहीं, बल्कि बॉडीगार्ड की हैसियत से।

सोहनसिंह अपनी जवानी में ब्रिटिश सेना में था। उसने उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त के बहुत से छोटे-मोटे युद्धों में हिस्सा लिया था। बाद को सेना से नाम कटा कर लाहौर में धर्मशीला के पिता के पास नौकरी कर ली थी। वहाँ पर उसे बन्दूक कंधे पर रखकर पहरा देना पड़ता था।

सोहनसिंह की स्त्री अभी तक जीवित थी और उसके चार लायक बेटे भी थे। पर वह अपनी स्त्री तथा बच्चों को कभी साथ नहीं रखता था। वे जालन्धर ज़िले के एक गांव में रहते थे। सोहनसिंह अपने स्त्री-बच्चों को अपने पास रखना भावुकता समझता था। वह इस सम्बन्ध में इतनी ही जिम्मेदारी समझता था कि कमाई करके भेज दे और कभी-कभी मिल आवे। वह हर महीने जालन्धर में एक मनीआर्डर भेजता था। इसके अलावा वह पत्नी को बिना बताये अमृतसर में अपने सबसे छोटे लड़के को भी कुछ रुपये जब तब भेज देता था। उसके सभी लड़के विवाहित थे।

धर्मशीला की नौकरानी प्रेमा के साथ सोहनसिंह की बिल्कुल नहीं बनती थी। एक तो प्रेमा उसके मुकाबले में नई थी, और तिस पर वह उस पर रोब जमाने की कोशिश करती थी। इसके अतिरिक्त प्रेमा कुछ बन सँवर कर रहती थी, जो सोहनसिंह को बहुत नापसन्द था। अक्सर वह मुँह बिचकाकर कह दिया करता था—"उम्र न मालूम कितनी है, और बनती ऐसी है मानो पन्द्रह साल की छोकरी हो!"

प्रेमा दबने वाली नहीं थी, वह कह देती थी—"यह जो तुम रोज़ इतने बूढ़े-खूसट होकर भी साढ़े तीन घण्टे तक अपनी दाढ़ी को कंघी करते हो, क्या यह बनाव-सिंगार नहीं? और मेरी उम्र ही क्या है, पचास ही तो है? इस उम्र में तो मुसलमानों में सगाई हो जाती है?" इसके बाद गुस्सा निकालने के लिए कहती, "तुम्हारी तरह मैं निर्वंश थोड़े ही हूँ। कहता है, मेरे चार लड़के हैं। मैंने तो कभी किसी को नहीं देखा। मेरा एक लड़का है, उसकी शादी करनी पड़ेगी, इसीलिए ज़रा ढंग से रहती हूँ। मुझ में तुमने कौन सी शौकीनी देखी, दाढ़ीजार?"

इस तरह दोनों में अक्सर ठन जाया करती थी। सोहनसिंह जब कोई बात खोज नहीं पाता था, तब वह कह देता था, "चल-चल, कल की नौक-रानी मुझसे जबान लड़ाने आई है!"

प्रेमा को भी कल की नौकरानी वाली बात बहुत कचोटती थी; क्योंकि सचमुच ही सोहनसिंह को पुराना नौकर होने में बहुत फायदा रहता था। जब तब वह मालकिन के साथ पुराने दिनों की आलोचना करता था, मालकिन खूब जोश में आकर बातचीत में हिस्सा लेती थी और प्रेमा टुकुर-टुकुर देखती रह जाती थी। प्रेमा के अन्दर हुकूमत की जो प्रबल इच्छा थी, वह इसी जगह पर आकर बहुत धक्का खा जाती थी। सोहनसिंह आसानी से इन सब पर रोब गाँठने लगता था। प्रेमा समझती थी कि सोहनसिंह जान बूझ कर केवल उसे तुच्छ करने के लिए इन सब पुरानी बातों को छेड़ता है। वह अग्निपूर्ण नेत्रों से बूढ़े की तरह ताकती रहती थी। बूढ़ा उसकी तरफ कनखियों से उसके चेहरे पर लिखी हुई पराजय को देख कर, ओठ उलट कर ज़रा मुस्कराते हुए कहने लगता था—"माता जी, वह बात याद है, जब श्रीनगर में एक दफे नाव पर हाजी लोग किस तरह शराब पीकर बेखबर हो रहे थे, और उस वक्त मैंने उनमें से एक-एक को पकड़ा और झील के ठंडे पानी में झप से डाल दिया।" प्रेमा को ऐसा प्रतीत

होता मानो उसी को झप से डाल दिया गया हो। सोहनसिंह कहता जाता—"बाबू जी ने भी दो आदमियों को झील में डाल दिया था।"

"हाँ, पर तीसरे ने उनको पकड़ लिया और दोनों झप से झील में गिरे!"

"मैं पहले तो समझ नहीं पाया, पर ज्यों ही समझ गया, त्यों ही पानी में कूद पड़ा।"

"तुम न होते तो उस बार उनकी जान पर बन गई होती, वे तैरना तो जानते नहीं थे।"

सोहनसिंह ने कहा—"यह आप क्यों कह रही हैं? माता जी, आप भी तो बाबूजी के साथ कूद पड़ी थीं, बल्कि आप ही ने उनको पहले पकड़ा था......।"

धर्मशीला ज़रा हँसी—एक मधुर स्मृतियुक्त विषाद की हँसी। वह बोली-"हम लोग तो ऊपर चले आये, पर अशोक कितना रोता रहा, किसी तरह नहीं थमता था।"

"रोने की बात ही थी, वैसा पिता और वैसी माता का एक साथ विपत्ति में पड़ जाना।"

"अब अशोक को बताने पर वह कहता है, मैं नहीं रोया, मानना ही नहीं चाहता।"

"कौन बचपन की बेवकूफी को मानता है!"

"सुजाता उस वक्त लाहौर में नाना के पास थी।"

"हाँ, वह नाना की बहुत दुलारी थी।"

"इसीलिए वे आधी उसे और आधी अशोक को सम्पत्ति दे गये हैं।

आलोचना विषय छोड़ कर दूसरी धारा में चलने लगी। प्रेमा वहाँ पर नहीं बैठ पायी, उसका मन ईर्ष्या से पूर्ण हो गया था।

प्रेमा और सोहनसिंह का पारस्परिक सम्बन्ध इस प्रकार कड़ुआ होने पर भी प्रेमा के सत्रह साल के लड़के जुगिन्दर को सोहनसिंह प्यार करता है। जुगिन्दर माली का काम करता है, और सोहनसिंह को हीर-राँझा का किस्सा पढ़ कर सुनाता है। सोहनसिंह ने ही उसे पंजाबी पढ़ाई है। जुगिन्दर माली का काम पसन्द नहीं करता, वह कोचमैन मकतूब अली की जगह चाहता है, पर निकट भविष्य में इस आशा के पूरा होने की कोई आशा नहीं। मकतूब अली अच्छा हट्टा-कट्टा है,

अभी उसके मरने की कोई सम्भावना नहीं है, और फिर वह अपने लड़के यासीन को कोचमैनी और ड्राइवरी की शिक्षा दे रहा है।

मकतूब अली और सोहनसिंह का सम्बन्ध प्रेमा और सोहनसिंह के सम्बन्ध से अलग ढंग का है। मकतूब अली सोहनसिंह को 'सरदार जी' और सोहनसिंह मकतूब अली को 'खां साहब' करके पुकारता है। वैसे यदि देखा जाय तो मकतूब अली को 'खाँ साहब' कहना एक तरह से उसको गाली देना है। क्योंकि पठान के अलावा और किसी को खाँ साहब नहीं कहा जाता और मकतूब अली जाति का फकीर है। पर मकतूब अली इसे इसलिए पसन्द करता है कि इस प्रकार वह ऊँची जाति में आ जाता है—उसकी इज्जत कुछ बढ़ती ही है, घटती नहीं।

मकतूब और सोहनसिंह का सम्बन्ध इस प्रकार का है कि तू मुझे हाजी कह, और मैं तुझे मुल्ला कहूँ। इसके अतिरिक्त मकतूब सोहनसिंह को अपने से बड़ा जान कर अदब करता है, इसलिए कोई गड़बड़ी नहीं होती।

मकतूब के मन में हमेशा एक सन्देह का काँटा चुभता रहा है। वह यह कि अशोक माँ से बीच बीच में मोटर की मांग पेश करता है। बुद्धिमान, दूरदर्शी मकतूब सोचता है कि मोटर के आने का अर्थ यह है कि फिटन खतम हो जायगी और फिटन के खतम होने का अर्थ वह जानता ही है। मकतूब के धनुष में दो गुण हैं, वह स्वयं न सीखने पर भी अपने पुत्र यासीन को मोटर चलाने के स्कूल में भेज रहा है।

जिस दिन धर्मशीला को खबर मिली कि यासीन मोटर चलाना सीख रहा है, उस दिन शाम को फिटन पर चढ़ते हुए उन्होंने मकतूब से पूछा, 'सुना है कि यासीन मोटर चलाना सीख रहा है?'

'हाँ हुजूर, दिन-ब-दिन घोड़े-गाड़ी का रिवाज़ उठता जा रहा है न।'

'उठ जाय, पर हमारे घर में मोटर होने पर भी यह घोड़ा रहेगा। तुम्हें याद होगा कि घोड़ा बाबू जी को बहुत प्यारा था। वे स्वयं जाकर इसे गढ़ मुक्तेश्वर के मेले से खरीद कर लाये थे। उस पर बाबू जी, बाबू जी का लड़का, लड़की सवारी कर चुके हैं और अगर कोई दामाद हुआ तो वह भी सवारी करेगा, कोई दूसरा नहीं कर सकता। घोड़ा रहेगा तो सईस भी रहेगा।'

मकतूब को इससे तसल्ली हो गई।

उस दिन सन्ध्या समय लौट कर मकतूब ने सोहनसिंह से कहा, 'ऐसी मालकिन मिलना मुश्किल है।'

सोहनसिंह बोला, 'मालकिन नहीं, माँ है।'

'सचमुच माँ हैं। तुम तो खैर उनके वतन के आदमी हो, पर वे मेरा जितना ख्याल रखती हैं, वैसा आजकल सुनने में नहीं आता।'

सोहनसिंह बुड्ढा आदमी था। बात करने में ही उसे आनन्द आता था। पंजाब, काश्मीर, उत्तर पश्चिम सीमाप्रान्त आदि के अनुभव से वह इस बात का समर्थन करने लगा। किसी की प्रशंसा करने के लिए पृष्ठभूमि के तरीके पर जैसे ईश्वर के सामने शैतान के रूप में एक खलनायक खड़ा किया जाता है, उसी तरह सोहनसिंह धर्मशीला की तारीफ करने के लिए प्रेमा की निन्दा शुरू कर देता था। अन्त में होते-होते ऐसा हो जाता था कि प्रेमा ही विषय हो जाती थी और धर्मशीला विषयान्तर।

'देखो इस प्रेमा को। देखने में तो चुड़ैल है, पर दिन-रात सिर्फ कंघी और शीशा, मिस्सी और सुरमा। लाहौर से लौटते हुए चार पैसे का सुरमा लेती आई थी। पहले से पैसे दे रखे थे। पर कितना लाई, इतना-सा।' कह कर उसने उंगली से दिखला दिया और कहा, 'और देखो हमारी माँ को, जब से बेवा हो गई, तब से दुनिया उनके लिए मर गई। रजील और शरीफ में बड़ा फर्क होता है।'

फिर जरा आवाज़ नीची कर वह कहने लगा, 'न सब पंजाबी एक से होते हैं, और न सब सिक्ख ही एक से होते हैं। प्रेमा भले ही पंजाबी और सिक्ख हो, पर उसका बाप मोची था।'

इस तरह से इस बंगले में कुछ प्राणी रहते थे और उन सबका अलग-अलग अपना जीवन था।

इन सब आदमियों के अतिरिक्त इस बंगले में और एक आदमी रहता था, जिसे ठीक नौकरों की श्रेणी में रखा नहीं जा सकता। वह था सुकुमार मुकर्जी। सुकुमार मुकर्जी की उम्र २५ के लगभग थी। देखने में अच्छा खासा तगड़ा आदमी था। वह स्वर्गीय डाक्टर बनर्जी का किसी तरह का रिश्तेदार लगता था, इसलिए कारिन्दा या मैनेजर होने के अतिरिक्त वह धर्मशीला की मेहमानदारी पर कुछ दावा रखता था, और मकान ही के अन्दर खाता-पीता था। वह धर्मशीला की जमींदारी की देख-रेख करता था, मुकदमों की पैरवी करता था, इसके अतिरिक्त अशोक का गृह-शिक्षक भी था।

सुकुमार पर जिन कामों का भार था, उन्हें वह बड़ी मेहनत तथा ईमानदारी से करता था, तथा उसकी सुव्यवस्था में जमींदारी की बराबर उन्नति हो रही थी।

वह मन ही मन यह उम्मीद रखता था कि एक न एक दिन सुजाता के साथ उसकी शादी होगी, इसलिए वह नौकरों के साथ मालिक की तरह व्यवहार करता था।

: १२ :

आखिरकार एक दिन धर्मशीला को सव्यसाची का पता चल ही गया। वह कबीरचौरा के अस्पताल में बीमार पड़ा था।

खबर पाते ही धर्मशीला सोहन सिंह को लेकर वहाँ पहुँच गई। रास्ते में बग्घी पर धर्मशीला ने बूढ़े को सव्यसाची का सारा वृत्तान्त बता दिया। सुन कर बूढ़े ने सहानुभूति प्रगट की, बोला—'सिक्ख गुरुओं ने भी शुरू-शुरू में कितनी तकलीफें झेलीं थीं, तभी तो इतनी बड़ी सिक्ख कौम खड़ी हो गई।'

धर्मशीला कुछ नहीं बोली। वह सोच रही थी कि सव्यसाची का जैसा अभिमानी स्वभाव है, उसके कारण शायद वह उनके घर पर आना अस्वीकार कर दे। थोड़े से परिचय से ही वह समझ गई थी कि इस व्यक्ति के लिए तकलीफ उठाना ही जैसे स्वाभाविक है। ऐसा करने से वह जरा भी नहीं हिचकता। कोई मुसीबत आती है, तो वह उसे प्रेमपूर्वक ग्रहण करता है, यहाँ तक कि समय समय पर वह मुसीबत की स्वयं सृष्टि करता है। दया-सहानुभूति इन सब वृत्तियों को वह दूसरों की ओर से अपनी ओर प्रसारित होते देख कर संकुचित हो जाता है, उनके सामने वह कुंठित हो कर रह जाता है।

धर्मशीला समझने को तो इस स्वभाव को समझती थी, पर उसे उसका समर्थन प्राप्त नहीं था। बात यह है, सहानुभूति होने पर भी दूसरे की भावनाओं को पूर्ण रूप से समझना कठिन होता है।

अस्पताल में जाकर धर्मशीला ने पहले डाक्टर से यह पता लगाया कि रोगी की क्या हालत है?

डाक्टर ने कहा—'इनका शरीर यों तो स्वस्थ है, कोई बीमारी मालूम नहीं होती, पर इन्हें कोई भयंकर मानसिक धक्का लगा है, जिससे मेलाकोलिया के लक्षण मालूम होते हैं।'

धर्मशीला आश्वस्त होकर बोली—'अगर हम लोग इन्हें ले जाँय, तो रास्ते की तकलीफ में रोग अकस्मात् बढ़ तो नहीं जायगा?'

'नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। फिर भी चलिए एक बार देख लें। आप शायद उनको लेने आयी हैं? अच्छी बात है। हमारे यहाँ रोगियों की बड़ी भीड़ है। आप शायद उनकी......?'

'माँ हूँ।' चट से धर्मशीला ने यह बात कह दी, फिर बोली, 'पर मैं गर्भधारिणी माँ नहीं हूँ।'

डाक्टर उठ कर सव्यसाची वाले वार्ड की ओर चल दिया। धर्मशीला और सोहन सिंह पीछे-पीछे चले।

यद्यपि डाक्टर ने कहा था कि आजकल बहुत भीड़ है, फिर भी धर्मशीला ने देखा कि वार्ड में बहुत सीटें खाली हैं। दूर से ही वह सव्यसाची को पहचान गई। उसका गोरा-सा चेहरा एकदम पीला पड़ गया था। वह अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को खोल कर छत की तरफ ताक रहा था। यदि छत गिर जाती तो भी उसे आश्चर्य न होता, शायद वह हिलता भी नहीं। उसकी सारी कहानी, मानो उसके चेहरे पर जलते हुए अक्षरों में लिखी हुई थी।

'हैलो कुमार! तुम्हारे बुरे दिन खतम हो गये, यह देखो कौन आया है'—डाक्टर ने अंग्रेज़ी में कहा।

सव्यसाची ने उस ओर दृष्टि दौड़ाई, जरा हँसा, और उठ कर बैठने की चेष्टा करने लगा, पर धर्मशीला ने उसका हाथ पकड़ कर उसे रोक लिया। सव्यसाची के चेहरे पर का भाव उसी समय बदल गया। उसके चेहरे पर जो मृत्यु सुलभ पीलापन था, उस पर जीवन की अरुणिमा फैल गई। साथ ही सव्यसाची को इससे आश्चर्य नहीं हुआ, मानो वह इसकी उम्मीद ही कर रहा था। अवश्य सव्यसाची यह आशा नहीं करता था कि धर्मशीला ही उसका उद्धार करेगी, पर एक अस्पष्ट आशा में वह हिलोरें ले रहा था, जिसकी ठीक-ठीक परिभाषा वह न तो कर सकता था, और न शायद इसकी कोई जरूरत ही थी। अत्यन्त अप्रत्याशित विपत्ति को शान्ति के साथ बिना प्रतिवाद के ग्रहण करना, यहाँ तक कि आत्म-समर्पण करना, और साथ ही साथ बड़ी-बड़ी आशाओं का पोषण करना, मृत्यु—अनिवार्य निष्ठुर मृत्यु के सामने खड़ा हो कर जीवन का स्वप्न देखते रहना, यही क्रान्तिकारी मन की विशेषता है।

धर्मशीला बोली—'मैं तुम्हें लेने आई हूँ।'

सव्यसाची ज़रा हँसा, मानों उसके स्वप्न का नशा अभी नहीं टूटा था।

'हम लोग तुम्हें लेने आये हैं'—धर्मशीला बोली, और फिर उलहने के ढंग से बोली—'सात दिन में तुम्हारा पता लगा, क्यों ऐसे भी छिपा जाता है।' वह जरा हँसी। करुणा और सहानुभूति से उनका प्रत्येक शब्द पगा हुआ था।

सव्यसाची हिला, बोला—'कैसे पता मिला?'

सामने के स्टूल पर बैठती हुई धर्मशीला बोली—'पहले तो मैंने तुम्हारे

मुहल्ले में पता लगाया, फिर राजनैतिक हल्कों में पता लगाया। दो-एक सज्जनों ने कहा कि उन लोगों ने तुमको देखा है, पर वे इससे अधिक नहीं बता सके। धर्मशाला में तलाश करवाई, वहाँ भी निराशा ही हुई। अन्त में कल रात को मेरे दिमाग में ख्याल आया कि पुलिस के सिवा तुम्हारे में किसे सबसे अधिक दिलचस्पी और सिर-दर्द होगा। सवेरे उठ कर मैंने सुकुमार को पुलिस के दफ्तर में भेजा, वहाँ से तुम्हारा सब ब्यौरा मालूम हो गया।'

सव्यसाची हँस पड़ा, बोला—'हाँ, पुलिस में और मुझमें जो प्रेम है, उसमें विच्छेद नहीं होता, वह चिरन्तन और अपरिवर्तनीय है।' इसके बाद उसने कुछ तो गम्भीरता में और कुछ मज़ाक में कहा—'ईश्वर ने जो कुछ लिख रखा है, जैसे वह अमिट है, उसी प्रकार हमारे और पुलिस के बीच का प्रेम अमिट है।'

डाक्टर ने कहा—"आपके सम्बन्ध में पुलिस वालों का कौतूहल स्वाभाविक है।"

डाक्टर ने यह बात केवल अनुमान के आधार पर नहीं कही थी, वह निश्चित रूप से जानता था। सव्यसाची के सम्बन्ध में पूछताछ करने के लिए पुलिस के सिपाही उसके पास आते रहते थे। पर वह इतना ही बता कर चुप हो गया, क्योंकि इससे अधिक बताने में खतरा था।

जब धर्मशीला डाक्टर से कह कर सचमुच सव्यसाची को अपने बंगले पर ले जाने की व्यवस्था करने लगी, तो सव्यसाची फिर गम्भीर हो गया। उसे लगा, जैसे कि वह सहानुभूति का अनुचित लाभ उठाने जा रहा है। लज्जा से उसका हृदय दब गया। यदि धर्मशीला आकर उससे यह कहती कि अमुक चीज़ का त्याग कर दो, तो वह तुरन्त त्याग कर देता। यहाँ तक कि उससे पुस्तकें माँगती तो वह शायद बिना हिचकिचाहट के पुस्तकों को दे देता। पर वह उस पर उपकार करेगी, यह विचार उसे न जाने क्यों पसन्द नहीं था। वह दुनिया से विद्या, यश, श्रद्धा-भक्ति लेने के लिए प्रस्तुत था, पर जिस चीज़ को देने में या जिस उपकार के करने में पैसों का खर्च होता है, वह उस उपकार को ग्रहण नहीं करना चाहता था। यदि कोई ऐसा उपकार उसके साथ करता तो वह समझता था, मानो वह व्यक्ति उसका सिर खरीद रहा है। अपनी सम्पत्ति के सम्बन्ध में बचपन से ही उसका ज्ञान बहुत कम था। वह यों तो अपनी चीज़ों को आसानी से नहीं खोता था, पर यदि कोई उसकी चीज़ को उसके सामने भी ले लेता था, तो उसे उस चीज़ को उससे माँगने में शर्म मालूम होता थी दूसरे की चीज़ तो वह कभी

लेता ही नहीं था और यदि लेता था तो उसे जब तक नहीं लौटा देता था, उसे अच्छी तरह नींद नहीं आती थी।

डाक्टर के साथ धर्मशीला रोगी को ले जाने के सम्बन्ध में बातचीत कर रही थीं। सव्यसाची कुछ देर तक सुनता रहा, फिर एकाएक उठ बैठा, और धर्म-शीला के साथ चार आँखें होते ही उत्तेजित होकर कह उठा—'ज़रा सुनिये तो।'

धर्मशीला आगे बढ़ आई। डाक्टर समझा कि शायद कोई गुप्त बात हो, इसलिए वह पास के रोगी से जाकर बात करने लगा। धर्मशीला की दृष्टि में प्रश्न था, वह जैसे समझ गई थी कि क्या बात है।

'सुनिये, क्यों बेकार मुझे ले जा कर परेशान होंगी। मैं अच्छा भी हो गया हूँ......' कहते-कहते सव्यसाची हाँफने लगा।

धर्मशीला बोली—'जब जेल में तुमने इतनी तकलीफ उठाई, तो हम लोगों के लिए भी कुछ तकलीफ उठा लो। तुम सोच लो कि तुम कैदी हो, स्वतन्त्र नहीं हो।'

उत्तर में सव्यसाची क्या कह सकता था? उसे जाना पड़ा।

... ...

रास्ते में वह गाड़ी पर बैठ कर ही चला, लेटने की जरूरत नहीं हुई। वह अस्पताल में जिस सीमा तक रोगी बनकर पड़ा था, उसकी हालत उससे कहीं अच्छी थी। मानसिक रोग में ऐसा ही होता है, थोड़ी ही देर में वह बहुत कुछ चंगा हो गया।

बूढ़े सोहनसिंह ने उसके साथ गाड़ी में परिचय किया। सव्यसाची कुछ ही देर में बूढ़े का स्नेहपात्र हो गया। इसका कारण यह था कि वह बूढ़े को नौकर न समझकर अपनी बराबरी का समझ रहा था। सोहनसिंह ने मन ही मन सुकुमार के साथ इसकी तुलना की, तो लगा कि सुकुमार इस व्यक्ति की तुलना में कहीं हीन है।

बंगले पर ला कर धर्मशीला ने उसको अन्दर का एक कमरा देना चाहा, पर सव्यसाची ने मुख्य मकान से अलग हाल की तरह एक कमरे को, जो पहले कभी डिस्पेन्सरी रह चुका था, और अब लायब्रेरी था, पसन्द किया। धर्मशीला उसकी इस पसन्द को देख कर मुस्कराई, पर कोई आपत्ति नहीं की। सव्यसाची ने अपनी सफाई के तौर पर कहा—'जेल में रहते रहते अस्तबल की तरह खुली जगह में रहने की आदत पड़ गई है, इसलिए मुझे यह जगह पसन्द आई है।'

सुकुमार ने अपनी ओर से सुझाव देते हुए कहा—'अगर आपको अस्तबल पसन्द है, तो वह दूसरी तरफ है। यह लायब्रेरी है। अस्तबल और लायब्रेरी बिल्कुल भिन्न चीज़ें हैं।'

धर्मशीला के तेवर पर बल आ गये। सव्यसाची बिछे हुए बिस्तरे पर लेट गया, तरह तरह की बातचीत होने लगी।

बातचीत के बीच में सुकुमार पूछ बैठा—'आपने कहाँ तक शिक्षा पाई है?'

'पकड़े जाते समय बी० ए० सेकण्ड ईयर में था।'

सुकुमार ने ओठ बिचका दिये। धर्मशीला यह सब देख रही थी।

सुकुमार ने फिर पूछा—'आपने कहा कि यह बक्स जेल से आया है, इसमें क्या है?'

'पुस्तकें हैं, और क्या?' सव्यसाची ने कहा, मानो यह कोई स्वतः सिद्ध बात हो।

सुकुमार चाबी लेकर जल्दी से बक्स खोलने लगा। बक्स के अन्दर से नेपथालिन की गन्ध आ रही थी। सुकुमार ने ज्योंही पुस्तकों का बक्स खोला, धर्मशीला ने कहा—'वे किताबें तुम्हारे काम की नहीं हैं, अधिकांश फ्रेंच हैं।'

'फ्रेंच?' सुकुमार मानो आसमान से गिरा। सव्यसाची की ओर ताकते हुए उसने कहा—'आप फ्रेंच जानते हैं?'

'हां, थोड़ी बहुत जानता हूँ...।'

'थोड़ी-बहुत के माने?'

'थोड़ी बहुत के माने, घंटे में पचीस-तीस पन्ने पढ़ सकता हूँ, पर बोलने-लिखने का अभ्यास नहीं है'

'ये पुस्तकें किस विषय पर हैं?'

सव्यसाची समझाने लगा। सुकुमार जितना ही उसकी बातें सुन रहा था, उतना ही आश्चर्य-सागर में डूबता जाता था। उसने सोचा था कि इस आदमी के इतने वर्ष जेल में बीते हैं, यह क्रान्तिकारी है, यह भला क्या जानता होगा। पर जब सव्यसाची फ्रेंच साहित्य और फ्रेंच प्रतिभा का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण करने लगा, तब वह अवाक् रह गया। अनजाने ही उसे यह स्वीकार करना पड़ा कि वह इन सब विषयों में प्रायः कुछ भी नहीं जानता था। सव्यसाची की विद्या के प्रति उसके मन में प्रशंसा का भाव उदय हुआ, पर उसने इस बात को खुल कर नहीं कहा।

धर्मशीला का लड़का अशोक स्वभाव से ही कुछ लज्जाशील है, अर्थात् अपरिचितों के साथ बात करने में कुछ झिझकता है; पर परिचितों के सिर पर चढ़ जाता है। उसने भी सव्यसाची से कुछ बातें कीं। उसने मुख्यतः सव्यसाची के जेल-जीवन के सम्बन्ध में दिलचस्पी दिखाई।

सब सव्यसाची पर खुश हो गये।

... ...

इस तरह सव्यसाची रहने लगा।

डाक्टर आकर उसे दोनों वक्त देख जाने लगा। सव्यसाची धीरे-धीरे तगड़ा होने लगा और उठ कर बंगले के बाग़ में टहलने में समर्थ हुआ। माली को वह तरह-तरह की शिक्षा देने लगा—कैसे गुलदावदी के पेड़ों की वृद्धि हो सकती है, पेड़ के पत्ते को किन उपायों से अधिकतर हरा किया जा सकता है। बात यह है कि सव्यसाची ने जेल-जीवन में बाग़वानी भी सीखी थी।

थोड़ा तगड़ा होते ही वह स्वयं खुरपी लेकर माली के साथ काम करने लगा। थोड़े दिनों में बाग़ का चेहरा ही बदल गया। बूढ़ा सोहनसिंह, जो हाथ से काम करना अपनी औकात से निम्न कोटि की बात समझता था, उसकी देखा-देखी उसे मदद देने लगा। अशोक आकर उसके काम को ध्यान से देखता। फिर वह भी सन्ध्या समय पौधों को स्थानान्तरित करने में मदद देने लगा। धर्मशीला भी आकर खड़ी-खड़ी घण्टों देखती रहती। उन्होंने यह देखा कि इस मकान में एक नये जीवन, नई स्फूर्ति और उत्तेजना का संचार हुआ है।

जरा और अच्छा होते ही सव्यसाची ने स्वर्गीय मिस्टर बैनर्जी के पुस्तकालय पर ध्यान दिया, और यत्र-तत्र बन्द पड़ी पुस्तकों का वर्गीकरण कर उन्हें आलमारियों में सजा दिया, तथा उनकी एक वैज्ञानिक सूची भी तैयार की। सुकुमार ने बाग़ तक तो उदासीनता रखी थी, पर जब सब सव्यसाची ने पुस्तकालय में तरतीब ला दी, वह कुछ असन्तुष्ट हुआ। वह एक दिन कह भी बैठा—'आप साहब, व्यर्थ का श्रम कर रहे हैं, ये पुस्तकें डाक्टरी की हैं, और न तो अशोक इन्हें पढ़ने जा रहा है, न सुजाता ही, और न मैं ही।'

सुकुमार धर्मशीला के सामने सुजाता का उल्लेख मिस बैनर्जी करके करता था, पर सव्यसाची के सामने उसका उल्लेख सुजाता करके करता था।

'किसने कहा कि सब किताबें डाक्टरी की हैं?'

सुकुमार ने झिझक कर तैश में आकर कहा—'किसने कहा के क्या माने?'

'इन दो हज़ार पुस्तकों में सिर्फ तीन सौ पुस्तकें डाक्टरी की हैं।'

'और बाकी ?'

बाकी पुस्तकों में साहित्य, विज्ञान, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान सभी हैं। पुस्तकों का चुनाव बहुत ही अच्छा है। मालूम होता है, डाक्टर बैनर्जी न केवल डाक्टर ही थे, बल्कि बड़े विद्या-व्यसनी थे। यह कह कर उसने अपनी बनाई टाइप की हुई वर्गीकृत सूची को उसके सामने रख दिया।

सुकुमार ने पुस्तक सूची को उलटते हुए कहा—'पर जो भी हो, आप ही पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने इतना श्रम कर इस तथ्य का उद्‌घाटन किया है कि इनमें दूसरी पुस्तकें भी हैं। हम तो यही समझते थे कि सब पुस्तकें अस्थि-विज्ञान और रोग-निदान पर हैं।' ऐसे कहा, मानो सव्यसाची ने कोई अपराध किया था।

सव्यसाची ने कुछ नहीं कहा, वह मुस्कराने लगा।

अशोक ने धीरे-धीरे सव्यसाची को पसन्द करना शुरू किया। सव्यसाची के व्यवहार में सबसे बड़ी बात यह थी कि वह उसे बराबर का समझता था। तरुण अशोक को यह हँसमुख मनुष्य बहुत पसन्द आया।

सव्यसाची स्वस्थ होकर बाहर भी जाने लगा।

: १३ :

लाहौर न केवल पंजाब में, बल्कि भारतीय शहरों में एक विशेषता रखता है। अधिवासियों के स्वास्थ्य तथा सुन्दरता, शिक्षा, आधुनिकता तथा जीवन से ओतप्रोत वातावरण के कारण लाहौर की विशेषता स्पष्ट हो जाती है। फिर सिक्खों और मुग़लों के युग का रोमांस जिस शहर में फैला हुआ हो, उसका कौन मुकाबला कर सकता है ? लाहौर मुसलमानों का है, लाहौर सिक्खों का है, लाहौर हिंदुओं का है, लाहौर किसी का नहीं है। लाहौर शायद पुरुषों से कहीं अधिक स्त्रियों का है, और स्त्री के माने ही सुन्दरी है—कम से कम दूसरे प्रान्तों की तुलना में तो है ही। और तो और, लाहौर की 'चूहड़िये' अर्थात् मँगिनें तक इस बात का प्रमाण है। यद्यपि 'चूहड़ियाँ' अपनी मालकिनों की तरह जार्जेट तथा 'बनारसी' से परिचित नहीं हैं, फिर भी वे रेशम और पोपलिन तो पहनती ही हैं। उनके हाथों से झाड़ू और बाल्टी छीन लीजिए, तो बस। बंगाल की स्त्रियों के भ्रमर-निन्दित केश-कलाप हैं, मद्रासी रमणियों की कान तक फैली हुई आँखें हैं, गुजराती स्त्रियों के चेहरे पर एक मूक निमन्त्रणपूर्ण मृदुता है, मराठी स्त्रियों में एक संयम है, पर पंजाबी ललनाओं के सौन्दर्य में यौवन, दीर्घ-यौवन की

मदिरा है, जिसके सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि वह नलिनीदलगत-जल की तरह है।

सौन्दर्य यहाँ कोई स्त्रियों के ही हिस्से में नहीं आया, पुरुषों के सौन्दर्य का भी अच्छे से अच्छा नमूना इसी पंजाब के लाहौर में मिलेगा। ऐसा डील-डौल, बने हुए भुजदण्ड, चौड़ा सीना, दूध और माहुर मिला रंग भारत के किसी भी हिस्से में इस प्रकार सार्वजनिक रूप से नहीं मिलेगा। काश्मीरी स्त्रियाँ सौन्दर्य में कुछ कम नहीं, लेकिन काश्मीर की कश्मीरिनों में शिक्षा की कोई पालिश नहीं है। फिर वे वस्त्रों की उस माया से परिचित नहीं हैं, जो लाहौर की स्त्रियों के लिए उसी प्रकार स्वाभाविक है, जैसे बत्तक के लिए तैरना।

... ...

सुजाता अपने नाना की दुलारी थी। वह लाहौर को ही जानती थी, बनारस उसकी आँखों में कतई नीरस और आकर्षणहीन था। लाहौर के जीवन की द्रुतगति उसे पसन्द थी, बनारस का दशाश्वमेध नहीं। लाहौर का अनारकली उसकी आत्मा के अधिक नजदीक पड़ता था।

माता की, विशेषकर पिता की इच्छा के रहते सुजाता बनारस में पढ़ने के लिए तैयार नहीं हुई। काशी की आबोहवा भी उसके अनुकूल नहीं पड़ती थी। वह बचपन से लाहौर में ही पली थी, इसलिए लाहौर ही में उसकी जान-पहचान थी। उसे लाहौर से हटा लाने का अर्थ था, उसे उसके बचपन की जमीन से जबरदस्ती उखाड़ लेना। इसलिए जिस समय डाक्टर बैनर्जी तथा धर्मशीला लाहौर से आल-जाल उठा कर काशी चले आये थे, तो उन्होंने उसे बनारस ले जाने की ज़िद नहीं की। उसे एक स्थानीय बोर्डिंग में रख कर दो एक नजदीकी रिश्तेदारों को उसका अभिभावक बना कर वे निश्चिन्त होकर काशी चले गये।

हाँ, अब पिता की मृत्यु के बाद सुजाता बोर्डिंग में नहीं रहती थी। अब वह अपने ही घर पर रह कर ओरिएण्टल कालेज में पढ़ती थी। ओरिएण्टल कालेज में वह इसलिए पढ़ती थी कि वह एकमात्र कालेज था, जहाँ पंजाबी साहित्य विषय था।

एक जमाना था—बहुतों के लिए अब भी वही जमाना है, जब पंजाब के कुछ पढ़े लिखे मुसलमान यह सोचा करते थे कि पंजाब की भाषा उर्दू है। पर पंजाबी वह भाषा है, जिसे पंजाब में सब बोलते-बरतते हैं। यह पंजाबी उर्दू, हिन्दी, गुरमुखी तीनों लिपियों में लिखी जाती है। पर इससे क्या?

सुजाता बहुत अच्छी छात्रा थी; पर उससे भी कहीं अच्छी मोटर-साइकल चलाने वाली थी। मोटर-साइकल का रोबीला, पेचदार, उफनता हुआ चेहरा उसके परी की तरह कोमल तथा मुलायम चेहरे का एक ही साथ पूरक और विपरीत भी था। लाहौर में केवल सुजाता ही एकमात्र स्त्री थी, जो मोटर-साइकल चलाती थी, ऐसी बात नहीं। सुजाता प्रायः साड़ी पहनती थी, पर मोटर-साइकल पर चढ़ते समय सलवार पहनती थी। सुजाता को मोटर-साइकल पर पूरी स्पीड से रावी के किनारे पर उड़ती हुई देखकर अलिफ लैला की किसी आधी मानवी, आधी कल्पना-जन्य शाहजादी, का अनायास स्मरण हो आता था।

सुजाता को इस प्रकार के कई निर्दोष और साधारणतया पुरुषोचित शौक होने पर भी उसके जीवन में कोई समस्या, प्रश्न या गम्भीरतर उद्देश्य नहीं था। देश में स्वतन्त्रता का यह जो इतना बड़ा आन्दोलन हुआ, सारा देश उस तूफ़ान की लपेट में आ गया, ब्रिटिश सिंहासन काँप उठा, हजारों व्यक्ति जेल गये और अन्य अनेक तरीकों से पीड़ित हुए, इससे सुजाता के हृदय को स्पर्श नहीं किया। सच बात तो यह है कि उसने इस तरफ कोई विशेष ध्यान ही नहीं दिया। केवल पंजाब में नहीं, सभी प्रान्तों में ऐसे हज़ारों युवक-युवतियाँ आधुनिकता की भीतरी तथा असली बात को हृदयंगम न कर पाकर उसके घोंघों को लेकर खेलते रहते हैं और एक उद्देश्यहीन, सृजनहीन जीवन व्यतीत करते हैं। अन्त में जब उनकी भ्रान्ति-भंग होती है, तब वे धर्म रहस्यवाद तथा अनाचार के निकट आत्म-समर्पण कर देते हैं। वैसी हालत में 'गाँवों में लौटो', "चलो हम फिर से वर्बर होवें' इत्यादि नारे लगाये और अपनाये जाते हैं।

अवश्य हमारे ये मन्तव्य सुजाता के लिए पूर्ण रूप से प्रासंगिक नहीं हैं, क्योंकि अभी उसकी उम्र ही क्या है?

सुजाता अपनी माता तथा छोटे भाई अशोक से बहुत प्रेम करती थी। उनसे अलग रहने में उसे कष्ट होता था, पर फिर भी वह लाहौर का मोह नहीं छोड़ पाती थी। वह कभी-कभी बनारस जाती थी और धर्मशीला साल में एक बार लाहौर जाती थी। इसके अलावा पत्र बराबर आते जाते थे। वह मां को पंजाबी में (हिन्दी लिपि में) पत्र लिखती थी, पर भाई के लिए जो हिस्सा होता था, उसे बंगला में ही लिखती थी।

सुजाता ने वचन दिया था कि बी० ए० की परीक्षा के बाद वह काशी में आकर रहेगी। धर्मशीला अपने पत्रों में बराबर इस बात की याद दिलाती रहती थी।

सुजाता की कोई खास सहेली नहीं थी। उसे किसी से अधिक आन्तरिकता नहीं हो पाती थी। कहते हैं, इसका कारण यह था कि वह घमण्डी स्वभाव की थी। सुजाता पुरुषों से बहुत कम मिलती थी। किसी भी क्षेत्र में वह पुरुष की श्रेष्ठता को स्वीकार नहीं करती थी।

लाहौर के मकान में जो नौकर तथा नौकरानियाँ थीं, वे अपनी अल्प वयस्क मालिकन को बहुत मानती थीं। वहाँ पर धर्मशीला के जमाने की एक आधी नौकरानी और आधी रिश्तेदार बुढ़िया भी थी। केवल वही सुजाता से नहीं डरती थी, बीच-बीच में दो-एक बात सुना भी देती थी। सुजाता की शादी न होने के कारण उसको नींद नहीं आती थी और धर्मशीला के आने पर उनसे 'लड़की की शादी कीजिए' की रट लगाये रहती थी। एक मकान में रहने पर भी अपना भोजन अलग बनाती थी, धोबी से धुल कर आये हुए कपड़ों को पुनः धोकर पहनती थी, यहाँ तक कि जलाने की लकड़ियों पर भी पानी का छींटा डाल कर रसोई में लाती थी। पर वह स्वयं कट्टर होने पर भी सुजाता के खाने-पीने की देख-रेख करती थी।

सुजाता की परीक्षा सिर पर थी। वह परिश्रम के साथ उसकी तैयारी कर रही थी।

: १४ :

बाँकीपुर से एक पत्र आया था। धर्मशीला बड़ी देर से उसे पढ़ रही थी और माथे पर बल आते-जाते थे। उनके पति की यह पैतृक जमींदारी उन्हें बहुत परेशान कर रही थी। आमदनी तो कोई खास नहीं, केवल दो हज़ार रुपये थी। यदि इसके साथ पति की स्मृति का सम्बन्ध नहीं होता, तो वह उसे अवश्य ही बेच डालतीं। अभी तो कुछ ही महीने हुए कि वह लाहौर से सीधी बाँकीपुर गई थीं। पर फिर कोई नया गोलमाल खड़ा हो गया था। सो तो होना ही है, अब साम्यवाद के जमाने में जमींदारी में बड़े बखेड़े हैं। उन्होंने प्रेमा से सुकुमार को बुलाने के लिए कहा।

सुकुमार फ़ौरन हाज़िर हुआ। धर्मशीला ने बिना कुछ भूमिका के कहा—'देखो बाँकीपुर में कुछ गड़बड़ है। वहाँ से यहाँ पत्र आया है। कुछ समझ में नहीं आता कि क्या करूँ।' कहकर उन्होंने सुकुमार को पत्र दे दिया।

सुकुमार ने पत्र को पढ़ते हुए कहा—'हाँ, गड़बड़ी तो काफी बड़ी है, आपको बुलाया है।'

'मुझे बुलाया है? बुलाने पर ही मैं तो रोज़ जा चुकी।' फिर कुछ नरम

पढ़कर बोली—'खैर जाना तो किसी को है ही। तुम ही न दो महीने के लिए चले जाओ, ठीक-ठाक कर उसे चले आना।'

सुकुमार के सिर पर जैसे वज्रपात हुआ। वह जानता था कि जल्दी ही सुजाता आने वाली है। वह सोचता था कि अब की बार कुछ न कुछ तय कर डालेगा और यह कह रही हैं कि बाँकीपुर जाओ और वहाँ दो महीने रहो। वह कुछ हिचकिचा कर बोला—'जी, मैं पत्र लिखे दे रहा हूँ, सब ठीक हो जायगा, किसी के जाने की जरूरत नहीं पड़ेगी।'

'नहीं, नहीं, कर्त्तव्य को इस प्रकार टालने से काम नहीं चलेगा। तुम्हें या मुझे जाना ही पड़ेगा। चिट्ठी से कुछ न बनेगा, मामला इतना आसान नहीं है।'

सुकुमार ने एक बार धर्मशीला को ध्यान से देखा, फिर बोला—'सव्यसाची बाबू को न भेजा जाय......।'

आश्चर्य से भौंहें चढ़ाकर धर्मशीला बोली—'कैसे?'

यदि यह प्रस्ताव मान लिया जाता तो एक तीर से दो शिकार मारे जाते; इसलिए सुकुमार शान्त होकर मानो निशाना ठीक करते हुए बोला—'सव्यसाची बाबू कुछ काम करने के लिए व्यग्र हैं। अखबारों में 'नौकरी खाली' वाले विज्ञापनों को ध्यान से नीचे रेखा लगा लगाकर पढ़ते हैं। इसके अतिरिक्त उनको अनुभव बहुत है। जमींदारी के काम में जो सबसे बड़ा गुण है, वह यह है कि वह विश्वासी और परिश्रमी हैं। उनको यह काम दिया जाय तो उनका उपकार ही होगा। मेरा विश्वास है कि वे जमींदारी का काम बहुत अच्छी तरह करेंगे। वहाँ के कारिन्दे को निकाल दिया जायगा।'

धर्मशीला यह नहीं जानती थी कि सव्यसाची नौकरी की तलाश में है और 'नौकरी खाली' के विज्ञापन पढ़ा करता है। उन्हें आश्चर्य हुआ, पर बहुत नहीं, क्योंकि रोग-शय्या से उठते ही सव्यसाची दूसरे के अन्न से प्रतिपालित होना अस्वीकार करेगा, इसमें आश्चर्य ही क्या है? सव्यसाची पर उनकी श्रद्धा बढ़ गई। उन्होंने कहा—'क्या कहा?'

सोचने के लिए कुछ समय लेने का प्रश्न था। वह बोला, 'मेरी यह राय है कि सव्यसाची बाबू को रामधन की जगह पर तैनात किया जाय।'

धर्मशीला मुस्कराई, और बोली—'उसका नतीजा क्या होगा? यह होगा कि जमींदारी रातों रात खतम हो जायगी।'

'क्यों, आप क्या सव्यसाची बाबू को इतना गैर-जिम्मेदार समझती हैं?'

'मैं बहुत जिम्मेदार समझती हूँ, पर जमींदारी सम्हालना उसके वश की बात नहीं है। जमींदारी के सम्बन्ध में उसकी क्या धारणा है, मालूम है ?'

'उनकी निजी धारणा कुछ भी हो, जमींदारी उनकी तो है नहीं कि उसे दान-ख़ैरात कर देंगे। दिये हुए काम को अच्छी तरह करने के लिए वे नैतिक रूप से बाध्य हैं।'

'बाध्य तो सब कुछ हैं, पर काम को लेकर शायद देखें कि उसके सिद्धांत के साथ नहीं मिलता। तब इस्तीफा देकर कहीं कुलीगीरी न शुरू कर दे। ऐसी हालत में तुम ही हो आओ।'

सुकुमार ने मुँह भारी कर लिया। धर्मशीला ने उस तरफ ध्यान नहीं दिया। सुकुमार धीरे-धीरे उठ कर चला गया, और बाँकीपुर जाने की तैयारी करने लगा।

सुकुमार को गुस्सा उतारने के लिए कोई नहीं मिला तो सव्यसाची को सामने पाकर बोला—'मैं तो चला...।'

'कहाँ ?'—सव्यसाची ने आश्चर्य के साथ कहा।

'बाँकीपुर—निर्वासन में।'

'क्यों ?'

'मैं तो चला, अब आप मौज उड़ाइये।' कह कर वह आँधी की तरह निकल गया।

सव्यसाची विस्मय से अवाक् हो खड़ा रहा। थोड़ी देर बाद ही अन्दर सव्यसाची का बुलावा हुआ। खाने के समय के अतिरिक्त वह भीतर नहीं जाता था, इसलिए उसे बहुत आश्चर्य हुआ। वह सिर नीचा कर धर्मशीला के सामने खड़ा हो गया।

'बैठो।' धर्मशीला ने कहा।

सामने बेंत की एक कुर्सी पर सव्यसाची बैठ गया।

'सुकुमार बाँकीपुर में जमींदारी के काम से जा रहे हैं, लौटने में दो महीने या उससे अधिक लग सकते हैं, इसलिए अशोक के लिये गृह-शिक्षक की जरूरत है। एक पूरे टाइम गृह-शिक्षक साठ से कम में नहीं मिलेगा। मैं सोच रही हूँ कि तुम यह भार अपने ऊपर ले लो। क्यों ?'

सव्यसाची राजी हो गया।

धर्मशीला ने इस बीच में यह सोच कर देखा था कि यह जो सव्यसाची बिना अच्छी तरह तन्दुरुस्त हुए बाग़ के काम में लग गया था, इसमें शायद

केवल उसकी स्वाभाविक श्रमशीलता या प्राकृतिक प्रेम ही नहीं था, बल्कि ऐसा करने में शायद उसकी भावना यह थी कि घर का कोई काम कर परोक्ष रूप से कुछ क्षति-पूर्ति करे।

धर्मशीला ने सोचा कि कुछ तनख्वाह की बात उठानी चाहिए या नहीं, पर सोच कर देखा कि ठीक न होगा। असल में रुपये की बात करने में उन्हें लज्जा हो रही थी। पर ज़रा और गहराई के साथ सोच कर उन्होंने देखा कि अशोक के पढ़ाने को तनख्वाह आदि ठीक कर नौकरी का रूप नहीं दिया गया, तो सव्यसाची शायद अपने को अनुगृहीत, परान्न-पालित समझे। उन्होंने अपने ऊपर जोर डालते हुए कहा, 'इस मामले पर जरा बिजनेस के ढंग से बात की जाय। कितने रुपये दिये जाँय', जल्दी में और उत्तेजना में वह प्रश्न को इससे अच्छा रूप न दे सकीं।

सव्यसाची ने कहा—'आप झूठमूठ रुपये पैसे की बात न कीजिए, मैं अशोक को पढ़ाऊँगा। इसके अलावा आपने जो उपकार किया है, उसका प्रतिदान संभव नहीं।

'उपकार मैंने कुछ नहीं किया, मेरा सौभाग्य है। अच्छा जब जो जरूरत हो माँग लेना।' कुछ थम कर बोली—'पर तुम वैसे आदमी नहीं हो, तुम कभी भी नहीं माँगोगे, चाहे तुम्हारी जान निकल जाय।'

सव्यसाची हँसकर बोला—'जी, इतना सीधा नहीं हूँ। जेल में कोई अधिकार की वस्तु देने में देरी करने पर मैं तीन दफ़े रोटी वाले को लौटा देता था...।'

'क्यों?'

'अनशन की धमकी दे देता था।'

'तो वहाँ तुम अपना अधिकार तथा हक समझते थे। सचमुच सव्यसाची यह तुम्हारी ज्यादती है। तुम्हें यह सोचना चाहिए कि देश के लोगों पर तुम्हारा एहसान है। तुम्हारे साथ अगर कोई कुछ करता है, तो अपना कर्त्तव्य करता है। जो चौबीसों घण्टे देश का काम करता है, वह यदि यह प्रण करे कि अपनी रोटी भी कमायेगा तो खायगा, तब तो वह अपने प्रति अन्याय करेगा—देश के प्रति भी और उद्देश्य के प्रति भी।'

सव्यसाची ने नम्रता के साथ प्रतिवाद किया—'तब तो देशभक्ति एक पेशा हो गया। अब तक देश-सेवा के चारों ओर जो निःस्वार्थपरता की एक ज्योति है, वह भी जाती रहेगी।'

'जाने दो, उससे काम और भी जल्दी होगा। खैर, मैं कुछ बात नहीं सुनूँगी, मैं तुम्हें खर्च के रूप में पच्चीस रुपये दूँगी। सुकुमार को पचास देती थी। कोई बात नहीं सुनूँगी।'

'रुपये लेकर मैं क्या करूँगा ?'

''यह मैं नहीं जानती। अपने छात्र से पूछो कि कैसे बात की बात में बीस-पच्चीस रुपये खर्च किये जाते हैं, समझ में आ जायगा।'

सव्यसाची ने कहा—'मुझे यहाँ के एक पत्र से काम मिला है वे मुझे कई फ्रेंच अखबार देंगे, उनसे हिन्दी के छोटे लेख तथा खबरें तैयार करनी पड़ेंगी। घर में बैठे-बैठे करने का काम है, अशोक को पढ़ाने में कोई बाधा नहीं होगी।'

उस दिन से सव्यसाची अशोक को इतना पसन्द आया कि उसने माँ को कह दिया कि यदि अब सुकुमार भैया आवें भी तो उनसे नहीं पढ़ेगा। माँ ने मुस्करा कर पूछा—'क्यों ?'

'वे पढ़ाना नहीं जानते थे।'

'कैसे समझे ?'

'बहुत मुँह बनाया करते थे।'

धर्मशीला यह जान कर सुखी हुई कि उन्होंने आदमी पहचानने में गलती नहीं की, और अशोक ने भी उनका समर्थन किया। अब यह देखना था कि सुजाता क्या कहती है ? धर्मशीला सुजाता से डरती थी। बात यह है कि सुजाता का व्यंग कहीं पर रुकता तो था ही नहीं। अभी एक पत्र में उन्होंने सुजाता को लिखा था कि इस प्रकार के एक आदमी को घर में आश्रय दिया है। वह अधैर्य के साथ और शंकित हृदय से उसके उत्तर की प्रतीक्षा कर रही थीं।

सव्यसाची अपने छात्र को केवल कोर्स की ही पुस्तकें पढ़ाता था, ऐसी बात नहीं। वह उसे बाहर की बहुत-सी विचारपूर्ण पुस्तकें पढ़ाता था, उनका सार समझाता था, और साथ ही पेड़ पर चढ़ना, तैरना, व्यायाम तथा अनुशासन की शिक्षा देता था। सव्यसाची छुट्टी के दिनों में अपने छात्र को लेकर कभी पैदल गंगा के डफरिन ब्रिज पर। कभी कैंट स्टेशन पर, कभी सारनाथ और कभी मडुअडीह जाता था। ऐसे अवसरों पर जूते धूल से भर जाते थे। अशोक ने बचपन से डफरिन पुल देख था, पर वह एक गढ़ की तरह है और असंख्य सैनिक वहाँ पर आश्रय लेकर गुप्त रूप से सूराखों के अन्दर से गोला चला सकते हैं, यह वह नहीं जानता था। सव्यसाची ने उसे यह दिखलाया। इसी प्रकार

गंगाजी में नहाते समय अशोक ने यह कभी नहीं ख्याल किया था कि गंगा का स्रोत कहाँ पर है। सव्यसाची ने उसे दिखलाया कि स्रोत की गति विसर्पिल है और यह दिखलाया कि किस प्रकार इस ज्ञान का उपयोग तैरने में किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त सव्यसाची रात में आकाश की ओर ताक कर अशोक को नक्षत्रों का नाम बताता था, और उसे सृष्टिक्रम का तत्त्व समझाता था। अशोक के निकट नक्षत्रों की कहानी अलिफ लैला की किसी भी कहानी से कम नहीं थी।

इस प्रकार कहीं पर तो उसकी पहले की धारणाओं के जहाज़ निर्मम हो कर डुबा कर, कहीं उसकी बुद्धि वृत्ति पर की राख को फूंक से उड़ा देकर, कहीं उसकी स्वाभाविक ज्ञान-पिपासा को ज़रा उत्तेजना पहुँचा कर, कहीं पर उसे बिल्कुल ही नया रास्ता दिखा कर उसने अपने छात्र के सामने एक नया जगत ही खोल दिया। इसी रफ़्तार से उसकी पढ़ाई दिन के बाद दिन, सप्ताह के बाद सप्ताह चलने लगी, न तो गुरु सिखा कर थकता था, न छात्र सीख कर।

हाथ खर्च के रुपयों से नई-नई वैज्ञानिक पुस्तकें आने लगीं। सव्यसाची का स्वास्थ्य दिन दूना रात चौगुनी उन्नति करने कगा। अशोक और सव्यसाची परम मित्र की तरह अत्यन्त अपने, अत्यन्त निकट हो गए।

: १५ :

सव्यसाची और वैद्यनाथ में एक दिन रास्ते में भेंट हो गई।

'वैद्यनाथ ही हैं न ?'

'हाँ !'

दोनों आलिंगन-बद्ध हो गये। छः-सात वर्ष बाद भेंट हुई थी। दोनों अपनी-अपनी अभिज्ञता बतलाने लगे।

वैद्यनाथ ने सब कुछ सुन कर कहा—'तुम्हारा भाग्य अच्छा है कि धर्मशीला में तुम्हे एक माँ और समझदार प्रशंसक प्राप्त हुई है।'

'हाँ, यह बिल्कुल अप्रत्याशित है।' कहते-कहते वह गद्‌गद्‌ हो गया।

'तो अब गृहस्थी करोगे ?'

'कुछ ठीक नहीं किया, काम करने की इच्छा तो बहुत है।'

वैद्यनाथ यह आशा कर रहा था कि अन्य पुराने साथियों की तरह सव्यसाची भी बहाना बताकर अलग हो जायगा। लेकिन जब सव्यसाची ने कहा कि वह काम करना चाहता है, तब उसने अपने कानों पर विश्वास नहीं किया।

उसने कहा—'क्या कहा ?'

'सब तरह के आराम में हूँ, न किसी को धोखा दे रहा हूँ, न कोई और बात है, पर कहीं पर कुछ कमी, कुछ अभाव मालूम होता है। जो मार्ग-ग्रहण किया था, सफलता की कसौटी पर वह सही नहीं उतरा; फिर भी ऐसा मालूम होता है कि इस निष्क्रियता से वह विफलता अच्छी थी। इच्छा होती है कि यह सब छोड़ कर भाग जाऊँ। एक वैराग्य, एक उत्कट असन्तोष सर्वदा मन को मथित कर रहा है। जब कोई गाना सुनता हूँ, सिनेमा देखता हूँ, बैंड सुनता हूँ या उत्सव में जाता हूँ, तब निविड़ रूप से आत्मोत्सर्ग करने की इच्छा मुझ में उत्पन्न होती है। बीच-बीच में शहीद सन्तोष कुमार को स्वप्न में देखता हूँ, शिशु-सी उसकी वे आँखें और सन्देशवाहक जैसे उसके वे ओठ....अच्छा ही हुआ तुम से भेंट हो गई।'

''पर अब देश में भयंकर प्रतिक्रिया का युग चल रहा है। जनता सभी आन्दोलनों को सन्देह की दृष्टि से देखती है, जिधर भी गया उधर ही से टकरा कर लौटना पड़ा। साथ ही देश की इतनी समस्याएँ हैं कि किसी प्रकार बैठे नहीं रह सकते और एक बात देख रहा हूँ कि कुसंस्कार, जिसका दूसरा नाम धर्म है, पग-पग पर हमारी प्रगति को रोक रहा है। मैं इसलिए सोच रहा हूँ कि एक अराजनैतिक संघ स्थापित करूं, जो राजनैतिक क्षेत्र के अतिरिक्त सभी क्षेत्रों में प्रचार कार्य करेगा। इसके बाद ज्यों ही देखेंगे कि देश हमारी दूसरी बातों को सुनने के लिए तैयार है, त्यों ही हम इस संघ के रूप को बदल देंगे।'

सव्यसाची ने कहा—''मैं हर तरह से तैयार हूँ, पर स्मरण रहे कि यह आधा काम मात्र है। कुछ दृष्टियों से तो ऐसे संघों में पड़ना देश को असली आन्दोलन की राह से हटाना है...।'

'यह मैं मानता हूँ, पर क्या किया जाय। इस प्रतिक्रिया के युग में कोई कुछ सुनना ही नहीं चाहता। छात्रों में भी अद्भुत मनोवृत्ति का बोल-बाला है...।'

संघ के पहले अधिवेशन के लिए एक तारीख समय और स्थान तय हुआ।

... ...

निर्दिष्ट दिन और समय पर पन्द्रह-सोलह नौजवानों की एक सभा हुई। बैद्यनाथ के अतिरिक्त सभी सव्यसाची से अपरिचित थे। जो युवक एकत्र थे, वे सब के सब साहित्यिक प्रकृति के थे। उन्हें फैबियन कहा जा सकता है। ये लोग मुख्यतः अपने अध्ययनों के कारण धर्म के विरुद्ध विद्रोही हो गये थे। इस कारण

इनमें किसी मतवाद की सफलता के लिए जिस अदम्य विश्वास और कट्टरता की आवश्यकता होती है, वह नहीं थी। उल्टे इनमें बौद्धिक सहिष्णुता इतनी थी कि कुछ ग्रीक सोफिस्टों की तरह शायद यह मानते थे कि किसी भी मतवाद के विरोधी मतवाद में भी उतना ही सत्य हो सकता है। उसे भी जीने का अधिकार है। पर ये लोग ढोंगी नहीं थे।

समिति का नाम क्या हो, इस पर बड़ी बहस होती रही। अनुरूप कुमार ने कहा—'हम कुसंस्कारों के विरुद्ध जेहाद कर रहे हैं, इसलिए इसका नाम कुसंस्कार विरोधी संघ हो।'

किसी ने इस प्रस्ताव का स्वागत नहीं किया।

द्वारका पांडेय ने कहा—'और चूंकि धर्म ही सबसे बड़ा कुसंस्कार है, इसलिए इसका नाम धर्म-विरोधी संघ हो।'

नाम बड़ा ही आकस्मिक, स्थूल तथा गद्यपूर्ण था, इसलिए यह भी वोट से गिर गया।

जब सब अपना-अपना विचार प्रकट कर चुके, तो वैद्यनाथ ने कहा—"मेरी राय में नाम ऐसा होना चाहिए, जिससे संघ की अन्तरतम बात एकबारगी ही समझ में आ जाय, चाहे वह कवित्वपूर्ण वा आलंकारिक भले ही न हो। मैं यदि इस संघ के उद्देश्य को समझ सका हूँ, तो उसे भाषा में अनुवाद करने पर इसका नाम 'सामाजिक विप्लववादी संघ' होना चाहिए।"

अब तक के प्रस्तावित नामों में यही सबसे अच्छा था, पर सव्यसाची ने कहा—"हम लोग सभी सामाजिक विप्लववादी हैं, इसमें सन्देह नहीं, पर हमने केवल प्रचार कार्य करने के लिए यह संघ स्थापित नहीं किया। वैसा तो हम अपने-अपने घर पर बैठ कर अलग-अलग रह कर पुस्तकें तथा लेख लिखकर भी कर सकते हैं। हम लोग यहाँ इसलिए एकत्र हुए हैं कि हम कुछ करना चाहते हैं, इसलिए मेरी राय यह है कि संघ का नाम विप्लववादी के बजाय 'विप्लवकारी संघ' हो।'

सबने खुशी से इस संशोधन को ग्रहण किया—सबसे अधिक वैद्यनाथ ने ही इसका स्वागत किया।

इन लोगों ने सव्यसाची के संशोधन को ग्रहण किया, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि ये सभी यह विश्वास करना पसन्द करते थे कि हम कुछ कर रहे हैं या करने जा रहे हैं। इससे इनकी आत्मश्लाघा की भावना तृप्त होती थी।

संघ के नामकरण के बाद पदाधिकारियों का चुनाव हुआ। तरुण अध्यापक आशीष कुमार इसके सभापति हुए, सव्यसाची और अनुरूप क्रमशः मंत्री और कोषाध्यक्ष हुए। सब लोग वैद्यनाथ को संघ का सभापति बनाना चाहते थे, पर वैद्यनाथ और सव्यसाची में एक गुप्त परामर्श यह हुआ था कि वे दोनों चूंकि इस संघ में सामयिक रूप से हैं, इस कारण जहाँ तक हो सके पदाधिकारी दूसरों को बनाया जाय, ताकि यदि वे किसी कारण हट भी जायँ, तो ये हतोत्साही न हों, संघ चलता रहे। इसी कारण सभापति-पद के लिए वैद्यनाथ का नाम प्रस्तावित होने के पहले ही सव्यसाची ने अध्यापक का नाम पेश कर दिया था।

निश्चित हुआ कि सब तरह के धर्मों के विरुद्ध प्रचार के साथ-साथ वृद्ध-विवाह, बहु विवाह, गौरी विवाह आदि का विरोध भी किया जाय और अन्तर्जातीय, और अन्तर्प्रान्तीय विवाह और विधवा-विवाह को प्रोत्साहित किया जाय। इसके अतिरिक्त अछूतोद्धार, आंतर्जातिक और आंतर्धार्मिक भोज वगैरह कराना भी संघ के कार्यक्रम में रखा गया। रूढ़ि को मिटाना था।

बड़े उत्साह के साथ संघ की स्थापना और कार्यारम्भ हुआ। इस उत्साह की तरंगें अशोक के हृदय को भी छू गईं। वह भी इसका सदस्य हो गया और प्रत्येक अधिवेशन में आने लगा।

सरकार दूर से इस संघ की कार्यावली ध्यान से देखने लगी, पर चूँकि इस संघ का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं था, इसलिए उसने कोई बाधा उपस्थित नहीं की।

'सामाजिक विप्लवकारी संघ' की ओर से हिन्दी और उर्दू में पुस्तिकाएँ लिखी जाने लगीं, और उनमें से कुछ छापी भी गईं। सव्यसाची ने यह घोषणा की कि वह 'भारतवर्ष में अनीश्वरवाद का इतिहास' नामक एक पुस्तक लिखेगा, अध्यापक आशीषकुमार 'भारतवर्ष में धर्म और विज्ञान के संघर्ष का इतिहास' नामक एक पुस्तक लिखने लगे। वे एक अध्याय लिखते थे और संघ के साप्ताहिक अधिवेशन में उसे पढ़ कर सुनाते थे। वैद्यनाथ इस प्रकार की विद्वत्तापूर्ण पुस्तकों को पढ़ने का पक्षपाती होने पर भी, और उससे प्रचुर आनन्द प्राप्त करने पर भी समझता था कि इन पुस्तकों से संघ का उद्देश्य पूर्ण नहीं होता। वह चाहता था कि जनता की भाषा में जनता के समझने लायक चीजें लिखी जायँ।

दूसरे भी इस प्रकार का आदर्श सामने रख कर काम कर रहे थे। संघ की ओर से उर्दू और हिन्दी में साप्ताहिक पत्र निकलने लगे। इसके अतिरिक्त

संघ की ओर से जनता के लिए व्याख्यान-माला का प्रबन्ध भी किया गया। कुछ दिनों में संघ का नाम प्रान्त भर में परिचित हो गया। सचमुच ही इनकी भाव-धारा में ओज था।

: १६ :

लाहौर से सुजाता का पत्र आखिर आ ही गया।

भाई के पत्र में उसने सव्यसाची के विषय में कुछ भी नहीं लिखा था। अशोक ने इस सम्बन्ध में जो डेढ़ पन्ना उच्छ्वसित भाषा में रंग डाला था, उसके उत्तर में सुजाता ने केवल इतना ही लिखा था—'सुन कर प्रसन्नता हुई कि तुमने अपने नये मास्टर को पसन्द किया है। आशा करती हूँ कि तुम एन्ट्रेंस में भी वैसा ही अच्छा नतीजा दिखला सकोगे, जैसा तुम बराबर इसके पहले की परीक्षाओं में दिखलाते आये हो।'

यह नहीं कि सुजाता अशोक को सव्यसाची के सम्बन्ध में और कुछ लिखना नहीं चाहती थी, पर अशोक जिस प्रकार से सव्यसाची का भक्त हो गया था, उससे उसने यह अनुमान कर लिया था कि अशोक को लिखा हुआ पत्र सव्यसाची के हाथों में पड़ेगा, इसलिए उसने अपने को बहुत कठिनाई से रोका। दो-एक बहुत तीखे व्यंग उसकी कलम की नोक पर आ कर रह गये।

माँ को सुजाता ने जो पत्र लिखा था, उसमें उसने इस कमी की पूर्ति कर दी थी—

'तुम हमेशा से बंगालियों के प्रति कुछ पक्षपात करती आ रही हो। इस अधेड़ उम्र में भी वह पक्षपात तुम में ज्यों का त्यों है, यह जान कर मुझे अपार हर्ष हुआ। इससे यह सूचित होता है कि तुम्हारा मानसिक स्वास्थ्य बहुत ठीक है। तुमने लिखा है कि तुम जेल से छूटे हुए एक क्रान्तिकारी भले आदमी की मदद करना चाहती हो। इस प्रसंग में तुमने नीति-अनीति, कर्तव्य तथा वीर पूजा के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें छेड़ी हैं, और इस सम्बन्ध में मेरी राय माँगी है। जो कुछ भी हो, सव्यसाची बाबू के चरित्र में प्रचुर मात्रा में रोमांस है, इसमें सन्देह नहीं है। वे निस्सन्देह बहुत दिलचस्प व्यक्ति हैं। वे जेल से छूटते हैं, रेल पर एक धनी प्रौढ़ा उन्हें अपने पुत्र की तरह देखने लगती है और उन्हें अपने घर ले जाना चाहती है, पर वे भले आदमी इस आग्रह को अस्वीकार कर यह कहते हैं कि इस विशाल पृथ्वी पर वे सूर्य के नीचे अपनी जगह बना सकेंगे, पर व्यावहारिक रूप से वे जा कर एक धर्मशाला में ठहरते हैं। धर्मशाला में वे बेहोश हो जाते हैं, और इस के फलस्वरूप धर्मशाला का अध्यक्ष, धर्मशालाओं की सना-

तन धार्मिक रीति के अनुसार, उनकी सारी पूंजी बीस रुपये लेकर उन्हें अस्पताल भेज देता है। तुम वहाँ से उनका उद्धार कर उन्हें घर ले आती हो, इत्यादि।

'इसमें जो रोमांस है, उसके कारण आठ आना संस्करण का कोई भी उपन्यास अच्छी तरह बिक सकता है, यद्यपि इस रोमांस में कहीं-कहीं त्रुटियाँ रह गई हैं। रेल की घटना में और भी कुछ रंग भरा जा सकता था। मान लो कि डाकू तुम्हारी उंगली पर सदा रहने वाली पांच हज़ार रुपये के हीरे की अंगूठी की बात जान कर तुम पर आक्रमण कर देते, तुम डाकुओं को देखते ही बेहोश हो जाती, सव्यसाची बाबू डाकुओं को मार कर भगा देते, इसके बाद जब तुम्हें होश आता और तुम उन्हें धन्यवाद देने के लिए आगे बढ़ती तो प्रेमा बताती कि वे तो चलती गाड़ी से फांद कर चले गये। तब तुम्हारी कहानी का बाज़ार-दर बढ़ जाता। धर्मशाला और अस्पताल में भी इस प्रकार की एक-आध घटना आसानी से घटित हो सकती थी। क्यों नहीं घटित हुई, यह सोच कर बहुत आश्चर्य हुआ।

'तुम्हारे बाग और पुस्तकालय का उन्होंने पुनरुद्धार किया, यह बहुत ही फिट बैठता है। पिता जी की डाक्टरी पुस्तकों में उन्हें बहुत-सी अमूल्य तथा दुष्प्राप्य पुस्तकें मिलीं, यह बात तुम्हारे लिए भी अच्छी रही और उनके लिए भी अच्छी रही। पर यदि किसी पुस्तक की जिल्द में दबी हुई ऐसी कोई दलील या वसीयतनामा मिल जाता, जिनके फलस्वरूप तुम्हें रास्ते में बैठना पड़ता, तो उससे मामले में और भी रोचकता आ जाती।

'अशोक ने उनके सम्बन्ध में बड़े जोश के साथ लिखा है। उसके सब पत्रों का सार यह है कि सव्यसाची बाबू साक्षात् क्राइस्ट का अवतार हैं। वह तो खैर बच्चा है, तुम्हीं ने क्या कम लिखा है। सच तो यह है कि उनके सम्बन्ध में मुझे बहुत दिलचस्पी पैदा हो गई है। जो वीर-प्रवर इतने लोगों के हृदयों पर एकाएक अधिकार कर सके हैं, वे अवश्य ही दर्शनीय हैं। तुम्हारा पत्र पढ़ कर ऐसा मालूम हुआ कि वे सर्वगुण-सम्पन्न हैं। यदि एक वाक्य में कहा जाय, तो वे मध्ययुग सम्बन्धी उपन्यासों के नायक होने के योग्य हैं।

'और यह क्रान्तिवाद! असली क्रान्तिवाद की मैं प्रशंसक हूँ, पर तुम्हारे पत्र में सव्यसाची बाबू के क्रान्तिकारित्व पर विशेष कोई रोशनी नहीं पड़ी। हाँ, उनके प्रत्येक काम में अपनी एक शैली है, यह मैं भी समझ रही हूँ, और यह मेरे लिए बहुत बड़ी बात है। मैंने व्यंग किया है, इससे यह नतीजा न निकालना

कि मेरे पहुँचने पर सव्यसाची बाबू को किसी प्रकार की असुविधा होगी, बल्कि उन्हें समझ पाने पर मैं शायद उनकी तुम से भी अधिक प्रशंसक हो जाऊँ।

'मैं ठीक कब आऊँगी, यह नहीं लिख सकती। हाँ, परीक्षा के बाद ही आऊँगी। फिलहाल यहाँ के आल-जाल बन्द करके ही आऊँगी, बाद को देखा जायगा, एम० ए० पढ़ूँगी या नहीं।—सुजाता।'

धर्मशीला ने कई बार पत्र को पढ़ा, फिर उसे तह कर रख दिया। उसके मन की हालत कुछ-कुछ उस प्रकार की हो रही थी, जैसे परीक्षा के पहले परीक्षार्थी की हालत होती है। पर वे भीतर ही भीतर परिणाम के सम्बन्ध में निश्चिन्त थीं। उन्होंने प्रेमा और सोहनसिंह को बुला कर कहा कि सुजाता जल्दी ही आयेगी।

मकान में आनन्द की लहर दौड़ गई। साथ ही साथ एक दबा हुआ भय तथा परीक्षा के पहले की भावना फैल गई। मकान में झाड़ू अधिक लगने लगी। खोज-खोज कर मकड़ी के जाले नष्ट किये जाने लगे, नौकरों का दिन में सोना खतम हो गया।

: १७ :

लक्सा के बंगले के दायरे में ही एक बहुत बड़ा अश्वत्थ का वृक्ष था। उसमें कुछ चिड़ियों के खोंते भी थे। सव्यसाची अक्सर इसकी छाया में बैठकर पढ़ता-लिखता, और अशोक भी ऐसा ही करता। एक दिन ऊपर से चिड़िया का एक बच्चा गिर पड़ा, उसके माँ-बाप नीचे उतर कर विलाप करने लगे। सव्यसाची ने कुछ दूर तक देखा, जब सहन नहीं हुआ तो बच्चे को लेकर पेड़ पर चढ़ गया, और उसके खोंते की तलाश करने लगा। अशोक नीचे से बताने लगा कि खोंता किधर है।

सव्यसाची बड़ी मुश्किलों से खोंते पर पहुँचा, और बच्चे को उसमें रख दिया। फिर उतरने के पहले कुछ विश्राम करने लगा।

इतने में अशोक नीचे से चिल्ला उठा—'दीदी! दीदी!'

सव्यसाची ने पेड़ से देखा कि सचमुच अशोक का हाथ पकड़ कर सुजाता खड़ी है। इसका फोटो वह रोज़ ही मकान में बीसियों जगह देखा करता था। पेड़ की ऊँची डाल पर बैठ कर सव्यसाची की हालत ऐसी हुई कि काटो तो लहू नहीं। मानो वह कोई अपराध करते समय रंगे हाथों पकड़ा गया था। उसकी

समझ में नहीं आया कि वह उतर पड़े कि वहीं पर डटा रहे। ऐसी आफत में भी कोई पड़ता है।

सुजाता बिना खबर दिये लाहौर से आ गई थी।

सुजाता ने भाई से पूछा—'दोपहर के समय यह क्या कर रहा है ?'

अशोक ने कुछ तो इशारों और कुछ अस्फुट शब्दों द्वारा समझा दिया कि वह पढ़ रहा था।

सुजाता ने पूछा—'नये मास्टर जी कहाँ हैं ?'

सव्यसाची पेड़ पर बैठा-बैठा बहुत सटपटाया। 'वह क्या हैं'—कह कर अशोक ने पेड़ के ऊपर इशारा कर दिया, बोला—'चिड़िया का एक बच्चा गिर पड़ा था, उसे खोंते में पहुँचाने गये हैं। इतना छोटा बच्चा था कि अगर खोंते में न पहुँचाया जाता तो वह मर जाता।'

सुजाता हँसी, एक वीणा-विनिन्दित सरल हँसी। वह बोली—'जब मैं रोजाना इस समय सो जाती हूँ, तो तू शायद पेड़ पर चढ़ने की विद्या सीखा करता है।'

सव्यसाची पेड़ पर बैठा-बैठा लज्जा से गड़ा जा रहा था। उसकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि इस विपत्ति से उसका उद्धार क्योंकर होगा। किस कुघड़ी में वह पेड़ पर चढ़ा था!

ख़ैरियत तो यह हुई कि सुजाता अन्तरिक्ष की ओर जरा ताक कर मुस्कुरा कर अशोक का हाथ पकड़ कर बोली—'चलो, माँ के पास चलें।'

और दोनों मकान के अन्दर चले गये।

दोनों के चले जाते ही सव्यसाची जरा भी न रुक कर बहुत तेज़ी से पेड़ से उतर पड़ा, और अकस्मात् एक विशेष काम की याद आते ही घर से निकल पड़ा। उसने इस प्रकार हमला करने वाली स्त्री कभी नहीं देखी थी। मन ही मन उसने कहा—'बहुत खूब।'

सुजाता घर में गई, और माँ, प्रेमा, सोहनसिंह सबसे बात कर इस नतीजे पर पहुँची कि सव्यसाची साधारण से कुछ अलग किस्म का आदमी है। इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण उसे इस घटना से मिल चुका था कि चिड़िया के तुच्छ बच्चे को बचाने के लिए वह पेड़ की चोटी पर चढ़ गया था। सचमुच ही यह व्यक्ति अपने जटिल चरित्र से उसे चिन्तित किए जा रहा था।

सन्ध्या समय जब सुजाता और सव्यसाची में भेंट हुई, उस समय तक सुजाता ने अपना सन्देह भाव और व्यंग भाव बहुत कुछ अपनी ओर झाड़

दिया था। धर्मशीला और अशोक भी उपस्थित थे। धर्मशीला बोली—'तू काशी जी की निन्दा किया करती है; अब फ़ुरसत है, जरा घूम कर काशी देख ले, फिर कहना। अशोक तो काशी को एक रहस्यमय शहर समझता है, जितना देख रहा है, उतना ही आश्चर्य-चकित होता जा रहा है।

अशोक ने कहा—'मैं तो बनारस में रह कर भी बनारस का कुछ नहीं जानता था, सव्यसाची भैया के साथ घूम कर अब मुझे मालूम हुआ है।'

सुजाता ने सव्यसाची से पूछा—'आपका काशी में जन्म हुआ है?'

'जी हाँ।'

'अच्छा' अब की बार मुझे बहुत फ़ुरसत है, यदि आप मुझे काशी की आत्मा को खोजने में मदद दें, तो बड़ी कृपा होगी।'

'आत्मा' शब्द के प्रयोग में व्यंग था।

'इसमें क्या बात है, मैं आपका पंडा बनने के लिए तैयार हूँ, पर स्मरण रखिए कि मैं धार्मिक प्रवृत्ति का नहीं हूँ।'

'धार्मिक प्रवृत्ति की मैं भी नहीं हूँ, माँ को देख कर नतीजा न निकालें।'

निश्चित हुआ कि कल से शहर देखना शुरू होगा। धर्मशीला और अशोक भी साथ में रहेंगे। नौकरों में से एक सोहनसिंह साथ में रहने लगा, सव्यसाची इस व्यवस्था से बहुत खुश हुआ।

विभिन्न विषयों पर चर्चा होने लगी।

सव्यसाची अपने जेल के कुछ अनुभव बताने लगा। सव्यसाची ने जब यह वर्णन किया कि किस प्रकार तरह-तरह की सजाओं के होते भी उसने चक्की पीसने से निरन्तर इन्कार किया, कैसे उसकी तमाम पुस्तकों को छीन कर उसे एक सुनसान स्थान में बन्द किया गया, तब सुजाता यह स्वीकार करने के लिए बाध्य हुई कि सव्यसाची एक साहसी तथा शक्तिशाली व्यक्ति है। सव्यसाची के मुँह की तरफ़ ताक कर उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि इस आदमी ने इस प्रकार का कार्य किया, यह सब आश्चर्य की बात नहीं है।

प्रसंगवश सव्यसाची ने अपने भूतपूर्व साथियों का हाल सुनाया। उसकी बातों से यह स्पष्ट था कि उसके भूतपूर्व साथियों ने क्रान्तिकारी काम छोड़ दिये हैं। परन्तु इस कारण उसको उनके प्रति कुछ विद्वेष नहीं है, बल्कि वह उन्हें जितनी भी अच्छी रोशनी में रखना संभव है, रख रहा है। उनकी पुरानी बातों को कहते-कहते उसका स्वर भावोद्रेक वश काँप उठता था। सव्यसाची की आज जैसे किसी ने झिझक खोल दी। उन्मुक्त आकाश के नीचे अपने हाथों से लगाये

हुए तरह-तरह के फूलों की गंध के दायरे में बैठ कर नक्षत्रों की ओर ताकते-ताकते प्रश्न का उत्तर देते हुए सारे आतंकवादी आन्दोलन की व्यर्थता के इतिहास को अपनी ट्रेजेडी के साथ मिला-मिला कर कह गया। सव्यसाची अपनी स्वाभाविक सरलता वश यह भी कह गया कि क्रान्तिकारी समिति ने बार-बार बड़ी गलतियाँ की हैं, इसलिए वह इस प्रकार व्यर्थ हुई। इस बात को कहते समय उसने न मुँह बनाया न हिचकिचाया और न यह सोचा कि इसका परिणाम सुनने वालों पर क्या होगा।

सुजाता सुनते-सुनते समझ गई कि सव्यसाची यह जो क्रान्तिकारी समिति की अत्यन्त कटु आलोचना कर रहा है, उनकी चालों को गलत बता रहा है, आतंकवादियों को समझदार बता रहा है। इसका कारण यह नहीं है कि वह अविश्वासी, दल-त्यागी या भगोड़ा है, क्योंकि उसकी आलोचना कटु होने पर भी रचनात्मक है; तीव्र होने पर भी सहानुभूति पूर्ण है, अत्यन्त निकट अपने आदमी की आलोचना है।

कली जैसे धीरे-धीरे पुष्प के रूप में आत्म-प्रकाश करती है, सव्यसाची ने उसी प्रकार बातों-बातों में अपने को सुजाता के निकट स्पष्ट कर दिया। सुजाता को इस बात पर अब आश्चर्य नहीं था कि उसकी माँ और अशोक सव्यसाची पर लट्टू हैं। सुजाता ने इसके पहिले किसी व्यक्ति के जीवन की कहानी को इतने समग्र रूप से नहीं सुना था। किसी ने इसके पहले उसके कौतूहल को इतना उद्दीप्त नहीं किया था। कोई बारी-बारी उसकी सहानुभूति तथा प्रशंसा को जाग्रत नहीं कर सका था। सुजाता को ऐसा प्रतीत हुआ कि सव्यसाची की बातचीत में एक विशेष शैली है। उसे उसकी बातें बहुत पसंद आती थीं।

धर्मशीला सुजाता की भाव भंगी देख कर समझ गई कि वह भी सव्यसाची के व्यक्तित्व से प्रभावित हो चुकी है। यह सोच कर वे आश्वस्त हुईं। पर दूसरी तरफ उन्हें यह भी मालूम हुआ कि एक नये अध्याय का सूत्रपात हो चुका है, जिसका परिणाम अनिश्चित है।

: १८ :

अगले दिन शाम के पहले सव्यसाची, सुजाता और अशोक घाटों में टहलते-टहलते मणिकर्णिका जा पहुँचे। काशी के दो श्मशानों में मणिकर्णिका ही अधिक व्यवहृत है, और शायद धार्मिक दृष्टि से पवित्रतर है। हिन्दू मरने के बाद यदि किसी स्थान पर राख में परिणत होने की आकांक्षा रखता है, तो उसी स्थान पर। जगह में कोई विशेषता नहीं है और घाटों जैसा यह भी एक घाट

है। एक साथ शायद दस से अधिक चिताएँ यहाँ नहीं जल सकतीं। इससे अधिक यहाँ जरूरत भी नहीं होती। पर हिन्दुओं के पुराने संस्कार, विश्वास, प्रथा और परम्परा ने सैकड़ों वर्ष क्यों, हजारों वर्ष पुरानी इस चार पाँच सौ वर्ग गज जमीन को एक अलौकिक महिमा और माहात्म्य से मंडित कर रखा है। पौराणिक कथाओं और उसी ढंग पर सोचने में अभ्यस्त हिन्दू मन ने इसके इर्द-गिर्द एक मनोरंजक कहानी की सृष्टि की है—स्वप्न धूमिल जाल की सृष्टि की है। केवल वचनों पर ही मणिकर्णिका की पवित्रता का अट्टालिका निर्मित नहीं हुई, न मालूम किस युग से हजारों लाखों-करोड़ों आदमियों ने एक अविच्छिन्न अजस्र-धारा में मर कर और यहाँ पर जल कर इसकी पवित्रता की गवाही दी है।

आँधी की तरह देश में मुसलमान धर्मान्धों द्वारा हिन्दुओं के निर्यातन के अवसर आये, धर्मान्ध मुसलमानों ने मन्दिर के बाद मन्दिर को मिट्टी में मिला दिया, सागर या पर्वत उनके अभियान में बाधक नहीं हो सके, पर इन 'बुत-कशिनों' के गिरोहों ने मन्दिरों को ही तोड़ा और उन्हीं पर कब्जा किया। उनमें से बड़े से बड़े अत्याचारी ने भी हिन्दुओं की इस परम-पवित्र मणिकर्णिका की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखा। यदि मणिकर्णिका कुछ पत्थरों पर पत्थर डाल कर बनी हुई कोई इमारत होती, तो वह ढहा दी जा सकती थी, पर मणि-कर्णिका तो एक स्थान, एक श्मशान, एक संस्कार है; उसे कोई पकड़ना चाहे तो वह फिसल कर निकल जायगी, उसे मारने जाओ तो उसका बाल भी बाँका नहीं होगा, उसे कोंचना चाहें तो उसका कुछ बिगड़ेगा नहीं। ऐसी हालत में उसका कौन क्या बिगाड़ सकता है? वे चिताएँ जो सूर्यलोक में विषादपूर्ण टिमटिमाकर, और रात के समय वक्षस्थल में चपटी छाया विस्तार कर मानो नक्षत्रों के साथ होड़ कर आवाहमान काल से दिन-रात निरन्तर जल रही हैं। उनको तो कोई भी आलमगीर बुझा सकता था, पर वे चितायें मणिकर्णिका नहीं हैं, लकड़ी के वे अंगार मणिकर्णिका नहीं हैं। खूनी आँखों वाले चर्बीले कुत्ते भी मणिकर्णिका नहीं हैं। मुर्दों के जलने के समय जो चिड़-चिड़, पड़-पड़ आवाज आती है, वह भी मणिकर्णिका नहीं है। चिता पर चढ़ाते समय प्रियजनों का जो अन्तिम विलाप है, वह भी मणिकर्णिका नहीं है। इन सबकी समष्टि भी मणिकर्णिका नहीं है। मणिकर्णिका का एक संस्कार तथा एक ख्याल है, जिसका स्थान प्रत्येक हिन्दू के मस्तिष्क में है।

सुजाता, सव्यसाची तथा अशोक चिताओं की ओर ताक रहे थे। सव्यसाची एक चिता की ओर अपलक नेत्रों से देख रहा था। उसके चेहरे पर एक रंग

आता, एक जाता था। वह मानो मणिकर्णिका की आत्मा के साथ अपनी आत्मा का योगसूत्र स्थापित कर रहा था। सव्यसाची के दीर्घ मौन से सुजाता मन ही मन परेशान हो रही थी। उसे ऐसा मालूम हो रहा था, जैसे आज कुछ होकर ही रहेगा, कुछ होगा। वह जितना ही इस बात को सोच रही थी, उतना ही उसका मन कह रहा था कि कुछ हो तो ठीक ही है। अशोक सव्यसाची के इस प्रकार मौन-धारण का अभ्यस्त था। वह जानता था कि अब सव्यसाची कुछ कहने वाला है। उसका मौन आंधी के पहले की निस्तब्धता है।

सव्यसाची ने एक बार अशोक और सुजाता—विशेषकर सुजाता के मुँह की ओर देखा। उसने सिहर कर देखा कि सुजाता के चेहरे का वह लीलायित भाव, उसकी वह परेशान करने वाली चंचलता और अपने विद्रोही बालों को बार-बार माथे पर से हटा-हटा देने की अदा एक मुहूर्त में लुप्त हो गई थी। इस समय वह भी मणिकर्णिका की एक साधारण स्त्री हो रही थी।

सव्यसाची ने फिर चिता की ओर देखा। अकस्मात् वह कहने लगा—लोग यह समझते हैं कि हम लोग एक उत्कट रोमांस के वश में परम्परागत पैतृक धर्म से अलग हो गये हैं, पर वे मूर्ख हैं। वे यह नहीं देख पाते कि ऐसा करते हुए हमारी हरेक नस में दर्द उठ रहा है, हृदय का रक्त सूख रहा है। तभी तो वे इस प्रकार के मन्तव्य प्रकट करते हैं। हाः हाः! इसी मणिकर्णिका में मुझे याद पड़ता है, बहुत साल पहले मैं अपने पिताजी को राख बना कर गया था। मेरी माँ भी यहीं कहीं पर जली होगी।' वह एकाएक रुक गया, जैसे किसी को खोज रहा हो। फिर बोला, 'हाँ मेरी माँ भी यहीं पर जलाई गई होगी, मेरा दादा और दादी तथा मेरी नानी यहीं जली थीं, और बहुत से मित्र, रिश्तेदार, सहपाठी यहीं पर राख के ढेर बने हैं। आखिर मरना तो मुझे भी है। क्या यह इच्छा करना स्वाभाविक नहीं कि मैं भी मरने के बाद यहीं पर जलूँ, जहाँ मेरी माँ, दादी, नानी सब अपने-अपने समय पर जलीं। यहाँ न जलना मेरे लिये कितना बड़ा त्याग है, यह ये गाली-गलौज करने वाले धर्मध्वजी किसी भी प्रकार नहीं समझ पायेंगे। इसलिए ये आक्षेप करते ही जायेंगे। मैं परलोक में विश्वास नहीं करता, पर यदि यहाँ पर जल सकता, तो न मालूम किस प्रकार अपने प्रियजनों के साथ मृत्यु द्वारा योगसूत्र स्थापित होता, अन्तिम योगसूत्र।'

कहते-कहते सव्यसाची एक चिता की तरफ बढ़ने लगा। सुजाता और अशोक भी उसके साथ आगे बढ़े।

वहाँ से चिता की गर्मी और जलते हुए मनुष्य की दुर्गन्ध मालूम हो रही थी।

सव्यसाची की दोनों आंखें लाल-सुर्ख हो रही थीं। उसका चेहरा एक अद्भुत, परेशान, पीड़ित, आंधी से ताड़ित भाव धारण कर रहा था। स्थिर नेत्रों से चिता की ओर ताकते हुए, मानो कुछ क्रुद्ध होकर वह कहने लगा—'लड़के के लिए क्या यह इच्छा स्वाभाविक नहीं कि जहाँ उसके स्नेहमय पिता तथा स्नेहमयी माता जली हैं, वहीं जले ? क्या यह इच्छा स्वाभाविक नहीं ? वे पाजी, गुंडे, बदमाश हैं, जो कहते हैं...।' वह और कुछ न कह सका।

सुजाता को न जाने कैसे और क्यों यह आशंका हुई कि सव्यसाची सामने वाली जलती हुई चिता में कूद पड़ेगा। उसने कहा—'आइये आगे चलें।' और साथ ही अशोक ने सव्यसाची के हाथों को पकड़ लिया।

सुशील लड़के की तरह सव्यसाची अशोक के हाथों को पकड़ कर श्मशान से दशाश्वमेध की तरफ जाने लगा। उस समय ऊपर एक के बाद एक नक्षत्र निकलते चले जा रहे थे। बायीं तरफ हिन्दुओं द्वारा प्रदान किये गए अभिजात्य के गर्व और उसकी मर्यादा की रक्षा करती हुई, गंगा घोर मन्थर गति से चली जा रही थी। कोई जल्दी नहीं है, कोई आफत नहीं—काशी की इस गंगा को।

मीरघाट के एक निर्जन बुर्ज में आकर वे तीनों बैठ गये। सामने गंगा जी बह रहीं थीं। अँधेरे में उस पार का बालू विलीन हो गया था।

बात-बात में गंगा पर बात चल पड़ी।

सुजाता ने कहा—'आपकी काशी जी की गंगा मुझे बहुत अच्छी लगती है; कोई हिलता नहीं—स्नेहमयी मां की तरह।'

सव्यसाची ने उत्तर नहीं दिया। वह उस पार के जंगल की ओर ताक रहा था। बहुत दूर एक बत्ती एक रहस्य की तरह इधर से उधर जा रही थी। सव्यसाची आज बहुत ही भावुक अवस्था में था। वह एकाएक कह उठा—'हमें ऐसा मालूम होता है कि हम जो गंगा जी को, अनीश्वरवाद की लपेट में आकर, सब गौरव तथा पवित्रता से वंचित कर एक साधारण नहर या नदी में परिणत करने की कोशिश कर रहे हैं, यह अन्त तक सफल नहीं होगी, शायद यह सफल नहीं ही होगी।' कह कर उसने भौहों को तान दिया, फिर बोला—'आधे उत्तर भारत में उसका क्लांतिहीन प्रवाह है, उसके किनारे पर हरिद्वार, काशी, प्रयाग, कानपुर, कलकत्ता इत्यादि महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। आधा देश उसकी नदियों तथा नहरों से सींचा जा रहा है, उस पर नाव खेकर और मछली पकड़ कर हजारों

लोग प्रतिपालित हो रहे हैं, हमारा आधा इतिहास उसी के किनारों की घटना है। क्या इन सारी बातों का धर्म के अतिरिक्त कोई महत्त्व नहीं है? क्या इसका एक सहजात महत्त्व तथा पवित्रता नहीं है? जिस कारण से राइन जर्मनों के निकट, वालगा रूसियों के निकट, नील नदी मिश्रियों के निकट पवित्र है। उसी कारण से गंगा हम लोगों के निकट पवित्र रहेगी। इसमें धर्म की कोई बात नहीं है। धर्म ने तो बल्कि, गंगा की इस सहज पवित्रता का शोषण कर युग-युग से मनुष्य के मन पर अपना जादू फैला रखा है। रूप, रस, गन्ध, वर्ण, जीवन, प्रेम, मृत्यु में, जहाँ भी जो कुछ आकर्षण है, धर्म ने उसी को अपने मतलब के लिए दोहन कर अपने को पुष्ट बनाया है। यही धर्म की शक्ति का रहस्य है, उसकी सफलता की कुंजी है।'

सुजाता ने कहा—'आपकी बातों को सुनकर यह नहीं मालूम होता कि भौतिकवाद मास्को या बर्लिन से आई कोई अभारतीय वस्तु है, ऐसा ज्ञात होता है कि भारतीय की मिट्टी के अन्दर ही उसकी जड़ें हैं और उसी से रस-संग्रह कर वह पुष्ट हुआ है...।'

'बिल्कुल! पर सत्य का न तो कोई देश और न कोई जाति ही है। सत्य सार्वदेशिक है, सब देशों का ही उस पर समान रूप से अधिकार है।'

रात होती जा रही थी! वे उठ कर मकान की तरफ चलने लगे।

... ...

इस प्रकार सव्यसाची को साथ लेकर सुजाता कभी पैदल और कभी गाड़ी पर घूमने निकलती। सव्यसाची प्रत्येक वस्तु में अपने मन का रस लगाकर उसे द्रष्टव्य, दिलचस्प और क्लासिकल कर डालता। इसकी बातों से उसका निःसंदिग्ध क्रान्तिकारित्व व्यक्त होता और यह ज्ञात होता कि वह छोटी से छोटी चीज को दर्द और सहानुभूति के साथ समझने की चेष्टा करता है।

सुजाता धीरे-धीरे उसकी प्रशंसक होती जाती थी। वह देख कर अवाक् हो रही थी कि यह व्यक्ति प्रत्येक विषय में एक निजी मत रखता है और उस मत में ओज है। रवीन्द्रनाथ की प्रशंसा करते हुए एक दिन सव्यसाची ने कहा—'बहुत दिनों तक रवीन्द्रनाथ की "गीतांजलि" ने मुझे अनीश्वरवादी होने से रोका...।'

'कैसे?'

'मैंने सोचा कि अनीश्वरवादी हो जाने पर इन सुन्दर कविताओं का मेरे लिए कोई विशेष अर्थ नहीं रहेगा। विवेकानन्द, रामतीर्थ, अरविन्द जो बात करने

में असमर्थ रहे, उसे मेरे जीवन में सौन्दर्योपासक कवि रवीन्द्रनाथ करते रहे। सौन्दर्य भाव की प्रेरणा बड़ी सूक्ष्म होती है। मैं रवीन्द्र के कारण ही बहुत दिनों तक अनीश्वरवाद की चौकट पर खड़े-खड़े हिचकिचाता रहा। मुझे अब भी ऐसा ज्ञात होता है कि रवीन्द्र का मानव धर्म साधारण ईश्वरवाद से निरीश्वरवाद के कहीं नजदीक है। रवीन्द्रनाथ ने मानव-धर्म में मानो भौतिकवाद को ही ईश्वर वाद में अनूदित करने की चेष्टा की है।'

इस प्रकार न मालूम वह क्या कहता गया। सुजाता बीच-बीच में यह समझने की चेष्टा कर रही थी कि उसके सम्बन्ध में सव्यसाची की क्या भावना है? ऐसे ही कौतूहलवश, और कुछ नहीं। कौन नहीं चाहता कि दूसरे उसे अच्छा समझें? पर यह सव्यसाची भी अजीब आदमी था। उसकी बातचीत और दृष्टि में कोई ऐसी बात नहीं मिलती थी, जिसका कोई अर्थ लगाया जा सके। फिर भी वह कुछ चिन्तित रहने लगी थी। न मालूम क्यों?

एक दिन धर्मशीला बोली—'चलो बेटा, एक दिन हमें सारनाथ दिखा लाओ। अपने प्राणों के रस समन्वित कर उसे दिखाओ, यों तो सारनाथ कई बार देखा है।'

सव्यसाची मुस्कराया। केवल क्रान्तिकारी ही ऐसे मुस्करा सकते हैं।

सुजाता बोली—"आपकी व्याख्या से चीज़ें जैसे मूर्त्त होकर सामने आ जाती हैं, उनके भीतर की आत्मा आसानी से पकड़ में आ जाती है।"

एक दिन यथेष्ट सामान, नौकर आदि ले कर सब लोग सारनाथ रवाना हो गये। धनियों की सारनाथ यात्रा थी न, वे साथ ही साथ बने भोजन का मज़ा भी चाहते हैं।

भारतीय इतिहास में बौद्धयुग एक विराट परिवर्तन तथा प्रबल हलचल का युग था। गलत हो या सही हो, भारतवर्ष की अन्तरात्मा उस समय यह अनुभव कर रही थी कि वह ऐसी अलौकिक चीज़ की स्वामिनी हो रही है, जो दूसरों को अप्राप्य है, पर उसने इस चीज को दबा कर अपने पास रख लेने की चेष्टा नहीं की। सम्राट अशोक के जमाने में निर्भीक प्रचारक-गण चारों ओर इसकी वाणी लेकर गये। ये साहसी प्रचारक चीन, तिब्बत, लंका, मिश्र—यहाँ तक कि ग्रीस में भी गये। समुद्र, पर्वत, भाषा की दीवारें तथा भँवर उनके मार्ग को रोकने में समर्थ नहीं हुए। वह एक तुमुल उत्तेजना का युग था, इसी भारत में। भारत का आकाश तथा वायुमण्डल उस समय 'बुद्धं शरणं गच्छामि', 'संघ शरणं गच्छामि', 'धर्मं शरणं गच्छामि' की वाणी से गूँज रहा था। भारत का यह युग

अब केवल अतीत युग का एक पन्ना या अधिक से अधिक अध्याय मात्र है। पुरातत्ववेत्ताओं ने इस अतीत युग के पृष्ठों का पुनरुद्धार करने के लिये कुदाल की सहायता ली है, जिससे अतीत के सम्बन्ध में अधिक से अधिक मालूम हो। उनकी सेवा बहुत सराहनीय है। सारनाथ का अजायबघर इसी प्रकार की एक महान् चेष्टा का परिणाम है।

पहले वे लोग उस तरफ गये, जहाँ अभी खुदाई जारी थी। वे दावोगा स्तूप के पास बड़ी देर तक खड़े रहे। इसके बाद वे अजायबघर में गये। सामने ही अशोक का बनाया हुआ विराट सिंह-स्तम्भ था। बाइस सौ सदियों के बाद भी उसमें मलिनता नहीं आई थी। अशोक के युग की स्थापत्य-कला का गौरव शृङ्ग।

बड़ी देर तक उन लोगों ने अजायबघर को घूम-घूम कर देखा। तरह-तरह की मुद्रा में बुद्ध की असंख्य मूर्तियाँ थीं, इनमें 'धर्मचक्रप्रवर्त्तन' भी एक मुद्रा थी। बुद्ध ने सारनाथ में ही धर्मचक्रप्रवर्त्तन किया था, इस कारण सारनाथ में इस मुद्रा की विशेष महत्ता थी। सव्यसाची ने बड़ी देर तक उसे घूर घूर कर देखा, पर कुछ कहा नहीं। सभी देखने में मस्त थे, कोई उसकी व्याख्या सुनने के लिए उत्सुक नहीं था। वे शायद भूल गये थे कि सव्यसाची की व्याख्या सुनने के लिए ही वे वहाँ अब की बार आये थे।

सुजाता ने एक नाक टूटी हुई बुद्ध भगवान् की मूर्ति के सामने खड़े हो कर सव्यसाची से पूछा—'बुद्ध के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं?'

'बुद्ध के सम्बन्ध में मेरे क्या विचार हैं, इस पर मैंने ध्यान से नहीं सोचा है, क्योंकि बुद्ध के व्यक्तित्त्व से उनके विचारों को पृथक् नहीं किया जा सकता। रहा बुद्ध के व्यक्तित्त्व के सम्बन्ध में, सो उसकी महत्ता के सम्बन्ध में मुझे सन्देह नहीं है। बुद्ध का यह वचन कि—'इहासने शुष्यतु मे शरीरं त्वगस्थिमांसं प्रलयंच यातु, अप्राप्य बोधिं बहुकल्पदुर्लभां, नैवासनात्छेहमतश्चलिष्यते' किसी भी क्रान्तिकारी के लिए अनुकरणीय है। भीष्म प्रतिज्ञा से भी यह प्रतिज्ञा भीषणतम है।' कह कर सव्यसाची कुछ रुका, फिर कहने लगा—'मैंने एक बात सोच कर देख ली, वह यह कि यदि धर्म उठ गया तो दुनिया में सबसे अधिक हानि दो देशों की होगी, एक भारत की, दूसरे अरब की। अरबी भाषा दुनिया की एक प्रमुख भाषा है। उसका कारण धर्म ही है। अरब प्रायद्वीप की तरफ लाखों भक्तों की दृष्टि निबद्ध है, इसका भी कारण धर्म ही है। यदि धर्म का अन्त हो जाय तो ये लोग जो भक्ति के कारण अरब देश का नाम जानते हैं, वे उसका नाम नहीं जानेंगे, अर्थात् अबीसीनिया की तरह एक भौगोलिक भू भाग के रूप में जानेंगे। इसी

प्रकार भारतवर्ष भी जगत के एक हिस्से की आँखों में जगद्-गुरु है, और दूसरे भागों के निकट उसकी प्रतिष्ठा इसलिए है कि वह इन देशों की निगाह में जगद्-गुरु है। यदि धर्म का अन्त हो गया, तो उस हालत में इस जगद्-गुरुडम का भी अन्त हो जायगा। व्यापार संस्कृति, भाषा सभी दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत नुकसान में रहेगा।'

इसी शैली में सव्यसाची बौद्ध-धर्म तथा साहित्य के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें कहता रहा। जब गाड़ी वापस लकसे में पहुँच गई, तभी सब को होश हुआ कि वे अब सारनाथ में नहीं हैं। सुजाता, धर्मशीला, अशोक सभी यह मानने के लिए बाध्य हुए कि उन लोगों ने मौलिक बातें सुनी हैं। सव्यसाची की एक-एक बात ने उन्हें सोचने के लिए मजबूर किया।

: १६ :

सामाजिक विप्लवकारी संघ का अधिवेशन हो रहा था। ये अधिवेशन अनियमित तरीके से ही हुआ करते थे, नियम की जरूरत नहीं पड़ती थी!

गत पाँच-छः महीनों के जीवन में संघ ने पुस्तकों, व्याख्यानों द्वारा प्रचार करने के अतिरिक्त कोई काम नहीं किया था, यह बात बहुत से सदस्यों के मन में असन्तोष पैदा कर रही थी। सव्यसाची मन्त्री होने पर भी गत डेढ़ महीने से संघ के काम में विशेष ध्यान नहीं देता था। 'भारत में अनीश्वरवाद का इतिहास' लिखना भी कुछ आगे नहीं बढ़ रहा था। इन दिनों सव्यसाची सुजाता को बनारस की सैर कराने में व्यस्त था। सव्यसाची ने जिस आशा से इस संघ को बनाया था, जब देखा कि वह पूरी नहीं हो रही है, तो उसका उत्साह क्रमशः ढीला पड़ता गया।

वैद्यनाथ भी इस बात का अनुभव कर रहा था। उसने एक दिन जेब से अखबार निकालते हुए कहा—'मिर्जापुर के गांवों में प्लेग और हैज़ा फैल रहा है।'

सभी अखबार के चिह्नित भाग को पढ़ने लगे—ऐसे ही साधारण रूप से।

वैद्यनाथ ने कहा—'गांव का गांव उजड़ता जा रहा है। हमारे संघ की तरफ से एक सेवा-दल भेज दिया जाय तो कैसा रहे?'

सब लोग अवाक् रह गये। प्लेग? हैज़ा? वहाँ पर सेवा दल?

वैद्यनाथ कहता गया—'अब तक हमने सिर्फ बातों का जमा-खर्च किया है, अब काम का समय आया है, काम का।' इन बातों को मानो लोगों के हृदयों

की गहराई तक पहुँचा देने के लिए थोड़ा ठहर कर बोला—'कोई शायद कहे कि इस प्रकार सेवा दलों का भेजना संघ के उद्देश्य के बाहर है। हो सकता है, पर यह मानव जाति की सेवा के बाहर नहीं है अवश्य इस प्रकार से काम करना मौलिक इलाज से पृथक् वस्तु है, उससे निकृष्ट है। जरूर हम इस समय सिर्फ प्रचार कार्य कर रहे हैं। इस प्रचार कार्य को सफल करने के लिए यह जरूरी है कि जनता के मन में संघ स्थान प्राप्त कर ले। इस दृष्टि से यह काम बहुत ही अच्छा होगा। जनता देख ले कि कुछ उद्भट तथा उत्कट विचारों को लेकर प्रयोग करना हमारा उद्देश्य नहीं है, हम उनके दुःख में दुखी हैं, और उनके सुख में सुखी।'

सब लोग एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। ये ढोंगी नहीं थे, पर प्लेग एवं हैज़ा जैसी महामारी में सेवा-कार्य करना यह बिल्कुल ही दूसरी बात थी। यदि कोई उनसे न कहता तो चाहे शहर में प्लेग और हैज़ा होता, वे पूर्णतः उदासीन और तटस्थ रह कर समय काट देते, पर किसी ने आँख में उँगली डाल कर दिखा दी तो फिर इनके लिए दूसरी बात हो जाती। कम से कम उन्हें ऐसा ही मालूम देता था।

सव्यसाची ने कहा—'मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ।' पर ऐसा कहने के साथ ही साथ उसके मन में कहीं पर एक टीस-सी उठी। उसे ऐसा ज्ञात हुआ कि वह अब आँधी की तरह स्वतन्त्र नहीं है। पर जितना ही उसे यह अनुभूति होने लगी कि उसके लिए वर्तमान जीवन से अपने को काट कर अलग कर देना कठिन और कष्टकर है, उतना ही उसने अपने ऊपर ज़ोर डालते हुए कहा—'मैं जाने के लिए तैयार हूँ।'

और भी कई सदस्य जाने के लिए तैयार हुए। तय हुआ कि वैद्यनाथ, अनुरूपकुमार, डाक्टर चन्द्रशेखरसिंह और सव्यसाची ये चार आदमी सेवा दल में जायेंगे, जरूरत पड़ने पर और भी लोग जायेंगे। अध्यापक आशीष कुमार ने कहा कि वे संघ के पत्र का सम्पादन छोड़ कर जाने को तैयार हैं, विशेषकर जब कि यह काम पत्र-सम्पादन से अधिक महत्त्वपूर्ण है।

पर यह तय हुआ कि अभी वे न जायें। सेवा दल के लिए जो रुपया खर्च होने को था, वह चन्दे से जमा किया गया। अशोक ने भी जाने की इच्छा प्रकट की, पर सब ने उसकी हँसी उड़ाई। सव्यसाची को अपने छात्र की इस भावना पर बहुत खुशी हुई।

तय हुआ कि चौबीस घंटे के अन्दर ही सेवा दल रवाना हो जायगा।

इससे अधिक समय नहीं दिया जा सकता। वैद्यनाथ ने कहा—'इस समय एक-एक घंटे का मूल्य शायद एक-एक जीवन है।'

सभी जल्दी से अपने-अपने घर गये।

सव्यसाची ने सोचा कि वह यह खबर धीरे-धीरे धर्मशीला और सुजाता को देगा, पर अशोक ने पहले ही आकर इस बात का प्रचार कर दिया था।

सुजाता ने सव्यसाची से पूछा—'आप मिर्जापुर जा रहे हैं ?'

'हाँ !' उसने देखा कि सुजाता के माथे पर बल आ गये हैं। उसने समझने की चेष्टा की कि इसका कारण क्या है, पर समझ में नहीं आया।

'आपके संघ के लोगों ने आपको ही इस खतरनाक काम के लिए पकड़ा है ?'

'नहीं' मैंने स्वयं ही यह भार अपने ऊपर लिया है, मुझे किसी ने मजबूर नहीं किया।'

'तो क्या आप जान-बूझ कर प्लेग के मुँह में जा रहे हैं ?' सव्यसाची के अक्खड़पन पर क्रोध के मारे सुजाता का चेहरा लाल हो गया था।

सव्यसाची ने सोचा था कि सुजाता इस बात को सुन कर प्रसन्न होगी, पर उसको चिन्तित एवं क्रुद्ध होते देख कर उसे आश्चर्य हुआ। उसने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को फैला कर बच्चे की तरह सुजाता की ओर देखा अजीब पहेली थी।

पहले से कुछ सम्हल कर, अपेक्षाकृत नरम आवाज में सुजाता ने कहा—'तो आपने तय कर लिया है कि आप जायेंगे ही ?'

'मैं तो समझता हूँ कि इस प्रकार बेकार समय बिताने के बजाय सेवा-कार्य करना अच्छा है। उसमें फिर भी कुछ सार्थकता है।'

'बेकार जीवन कैसा ? मैं तो आप को सवेरे से रात के बारह बजे तक किसी समय खाली नहीं देखती।'

'उन कामों में तृप्ति कहाँ ! मन में कहीं न कहीं कुछ चुभता-सा रहता है, मालूम होता है कि जीवन बिना सार्थकता के ही चला जा रहा है। यह दुःख कैसा है, इसका अनुभव सुजाता देवी, आपको कभी न होगा। मृत्यु का दुःख भी इसके सामने कुछ नहीं है।'

धर्मशीला भी चिन्तित हुई, फिर भी उन्होंने न तो मना ही किया और न क्रोध ही दिखलाया, एक अनिवार्य भाग्य समझ कर इस बात को स्वीकार कर लिया, और सव्यसाची की यात्रा की तैयारी करने लगीं। सव्यसाची के साथ क्या-क्या चीज़ें भेजनी चाहिए, माँ और बेटी ने मिल कर इसकी एक लम्बी

सूची तैयार की। तय हुआ कि अगले दिन सुजाता इन सब चीज़ों को खरीदने के लिए बाज़ार जायगी।

बूढ़ा सोहनसिंह सव्यसाची की यात्रा की बात से दुःखी हुआ। सव्यसाची से बोला—'मैं भी आपके साथ जाना चाहता हूँ, मेरा यह चौथापन है, अब प्लेग और हैज़े से क्या डर ?'

सव्यसाची बूढ़े की बात सुन कर बहुत विचलित हुआ, पर उसे साथ ले जाने के लिए तैयार नहीं हुआ। उसने कहा—'सरदारजी, तुम तो निडर जाति के हो, और फिर तुम एक निर्भीक सैनिक भी रहे हो, तुम्हारे लिए ऐसा करना शोभा देता है, पर हम युवकों का भी एक कर्त्तव्य तो है, हम कभी भी इस बात को होने नहीं दे सकते। धरती बूढ़ों का खून नहीं चाहती, वह नौजवानों के खून की प्यासी है।'

सव्यसाची बूढ़े को साथ ले जाने के लिए किसी प्रकार तैयार नहीं हुआ। बूढ़ा क्या करता, सव्यसाची की यात्रा की तैयारी में मदद देने लगा।

अगले दिन चार बजते-बजते ही सुजाता टोकरियों में चीज़ें खरीद कर लौट आई। केक, लाजेंज, तरह तरह के सुगन्धित तैल, पानी फिल्टर करने की छोटी-सी मशीन, आयलक्लाथ, डिब्बों में बन्द दूध, कोको के टीन, काफी, चाय, फल और मछली, बिस्कुट, पर्दा, लालटेन इत्यादि। इनके अतिरिक्त उपन्यास भी थे। सव्यसाची इन सब चीज़ों को देख कर आश्चर्य करने लगा। सुजाता ने तसल्ली देते हुए कहा—'ये चीज़ें केवल आपके इस्तेमाल की नहीं हैं, ये आपके रोगियों के लिए भी हैं।'

इसलिए सव्यसाची को सब चीज़ें लेनी पड़ीं।

थोड़ी देर में सब चीज़ें पैक हो गईं। यात्रा के पहले फोटोग्राफर भी आया और सव्यसाची को बीच में बैठा कर ग्रूप फोटो लिया गया।

यात्रा शुभ हो इस ख्याल से सोहनसिंह ने गुरुमुखी भाषा में मंत्र पाठ किया। सव्यसाची ने सरल बूढ़े के इस अनुष्ठान को ऐसे ग्रहण किया, मानो वह इन मंत्रों में विश्वास ही करता हो।

स्टेशन तक सुजाता, अशोक और सोहनसिंह उसे पहुँचा आये। वहाँ पर साथ के सब सदस्य उपस्थित थे। डा० चन्द्रशेखर के साथ चिकित्सा सम्बन्धी बहुत-सा सामान था। वैद्यनाथ के साथ सबसे कम सामान था। एक छोटा-सा सूटकेस और बिस्तरा, बस। सेवा दल के अन्य सदस्यों के भी मित्र तथा रिश्ते-दार आये थे। संघ के सदस्य अखबार के महत्त्व को जानते हुए भी आत्म-प्रचार

में विश्वास नहीं करते थे, इसलिए किसी अखबार वाले को खबर नहीं दी गई थी। अवश्य यथासमय सारी खबरें संघ के अखबारों में छपीं। आशीष कुमार अपने साथ कैमरा ले आये थे, चारों यात्रियों का फोटो लिया गया।

तुमुल जय ध्वनि और रूमाल हिलाने के बीच सेवा दल रवाना हो गया। सुजाता और अशोक हृदय में एक शून्यता लेकर घर लौट आये।

: २० :

एक दिन सुकुमार एकाएक बाँकीपुर से आ गया। धर्मशीला के प्रश्न के उत्तर में उसने कहा—'वहाँ का सब काम खतम कर आया, दो साल तक कोई गड़बड़ी नहीं होगी।' यह कह कर वह अपने किये हुए कामों का ब्यौरा देने लगा। अन्त में उसने कहा—'इसके अलावा हमारी तबियत भी वहाँ खराब हो रही थी।'

सुकुमार सब काम खतम कर आया था, इसलिए धर्मशीला कुछ बोली नहीं, यद्यपि बिना कुछ खबर दिये आने के कारण वह कुछ असन्तुष्ट जरूर हुई।

सुकुमार ने आकर देखा कि सव्यसाची जिस लायब्रेरी के कमरे में रहता था, उसमें धूल जमी है, इसलिए वह समझ गया कि सव्यसाची कहीं गया है। उसके मन में एक अदम्य कौतूहल उत्पन्न हुआ, पर अशोक या सुजाता से कुछ पूछने का साहस नहीं हुआ और उन लोगों ने अपनी तरफ से कोई बात नहीं कही। मजबूरन सुकुमार को मकतूब अली की शरण लेनी पड़ी।

मकतूब अली के साथ सुकुमार की कभी कोई घनिष्ठता नहीं थी। मकतूब दिल से सुकुमार को पसन्द नहीं करता था—नौकर मालिक को जिस तरह देखता है, उसी दृष्टि से उसे देखता था। सुकुमार यह चाहता था कि सव्यसाची के सम्बन्ध में बिना कुछ कौतूहल दिखलाये ही सब खबर मिल जाय। उसने कहा—'मकतूब कैसे हो?'

'आपकी दुआ से अच्छा हूँ!' उसने संदिग्ध दृष्टि से सुकुमार को देखा, क्योंकि सुकुमार उसके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में व्यग्र होगा, यह अजीब बात थी। मकतूब अली कुछ दकियानूसी मिजाज का आदमी था, वह इस प्रकार नयापन पसन्द नहीं करता था।

सुकुमार ने कहा—'सव्यसाची बाबू हवा बदलने गये, सो वह कुछ बीमार हैं क्या?'

'अच्छा? इसी बीच में बीमार भी हो गये? अभी दस ही दिन तो हुए। बीमारी यानी...! खुदा रहम करे! बाबू बहुत अच्छे आदमी थे!'

'अच्छा, तो बीमारी इतनी सख्त है कि जिन्दगी की कोई उम्मीद ही नहीं है ?'

'और क्या ? प्लेग, हैज़ा इन सब बीमारियों में तो ख़ुदा ही बचा सकता है...!'

'क्या ? प्लेग ? फिर हैज़ा ?'

'हाँ, दूसरे की मुसीबत में उनका दिल रो उठता है, तभी तो वे गये हैं। अब अल्लाह के सिवा कोई उन्हें बचा नहीं सकता। या अल्लाह !'

सुकुमार और खड़ा नहीं हुआ। उसने समझा कि जिस खबर की जरूरत थी वह मिल गई। हाँ, उसने यह विश्वास नहीं किया कि प्लेग और हैज़ा दोनों रोग एक साथ सव्यसाची को हो गये। पर उसने सोचा कि अवश्य ही सव्यसाची को कोई भयंकर रोग हुआ है, बहुत सम्भव है तपेदिक़ हुआ है और इसीलिए हवा बदलने गया है।

... ...

चौबीस घंटे बाद की बात है।

सुजाता ने जल्दी से सुकुमार के पास आकर कहा—क्या ऐसी खबर भी छिपाई जाती है ? सव्यसाची बाबू को क्या बीमारी है ?'

मकतूब अली ने अभी-अभी सुजाता से कहा था कि सुकुमार बाबू ने उससे कहा है कि सव्यसाची को ताऊन हो गया।

'कोई भयंकर रोग हो गया, ऐसा सुना है, पर क्या रोग है, पता नहीं। आपको मालूम नहीं है ?' सुकुमार ने दिल में खुश होते हुए कहा।

'नहीं तो !' कह कर सुजाता आँधी की तरह निकल गई और अध्यापक आशीष कुमार के घर में पता लेने गई। वहाँ पर वे इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानते थे, इसलिए सुजाता और आशीष कुमार ने सीधा डाकघर में जाकर जवाबी अरजेण्ट तार दिया और एक बेंच पर बैठ कर उदास होकर उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी।

सुजाता का चेहरा परेशानी से पीला पड़ गया था। उसका हृदय भीतर ही भीतर धड़क रहा था। सव्यसाची की बौद्धिक उच्चता स्वीकार करने पर भी वह उसे एक हद तक एक धूर्त व्यक्ति समझती थी। पर जब सव्यसाची ने बात की बात में अपनी जान जोखिम में डाल कर इस प्रकार सेवा दल में जाना स्वीकार कर लिया था, तब से वह उसे दूसरी ही दृष्टि में देखने लगी थी अब सव्यसाची जितना ही दूर था, वह उतना ही करीब मालूम हो रहा था। सुजाता को

ऐसा ज्ञात हो रहा था कि वह सव्यसाची को प्यार करती है, प्राण देकर प्यार करती है, अब उसके अन्तरतम हृदय में यह पश्चात्ताप सुई की तरह चुभ रहा था कि क्यों वह एक बार भी सव्यसाची से यह बात नहीं कह सकी। कहीं सव्यसाची प्लेग से मर गया तो...वह और आगे सोच नहीं सकी। उसने अकस्मात् आशीष कुमार से पूछा—क्या प्लेग होने से ही मृत्यु अनिवार्य है ?'

'शायद नहीं, वर्ना इस सेवा दल को भेजने का कोई अर्थ ही नहीं होता।' फिर अकस्मात् कुछ याद कर बोले—'मेरे एक मौसेरे भाई को प्लेग हुआ था, पर वह मरा नहीं था।'

सुजाता आश्वस्त हुई।

'अच्छा यदि इस सेवा दल का कोई सदस्य मर जाय तो ?' सुजाता ने पूछा।

'तो क्या, कोई और जाकर उसकी जगह काम करेगा। अब की बार मैं ही जाऊँगा...।'

'क्यों ? विश्व-विरक्ति के कारण ?'

'ठीक वह बात नहीं। फिर भी कुछ एक ख़ब्त-सी है। उनसे छुटकारा चाहता हूँ। मेरे जीवन में सब कुछ है, फिर भी किसी बात में तृप्ति नहीं है। तीन बार तीन विषयों में मैंने एम० ए० किया, मालूम होता है जैसे बेगार भर हूँ। सिनेमा में जाता हूँ, पर ऐसा मालूम होता है कि मेरे जीवन के साथ उसका कोई नाड़ीगत संयोग नहीं है। परोपकार शब्द भी मेरे प्राणों में एक भी हिलोर नहीं उत्पन्न करता, उत्तेजना उत्तेजक नहीं ज्ञात होती है, इसलिए विपत्ति में, ऐसी भयानक विपत्ति में कूद पड़ना चाहता हूँ, जिसमें पग-पग पर मृत्यु के अतुल गह्वर में गिर जाने का डर हो। शायद वहाँ वह मिले, जो जीवन में नहीं मिला।'

सुजाता उसकी तरफ आश्चर्य चकित दृष्टि से देखती रही, मानो उसने उसी के हृदय की बात को भाषा देकर सामने ला दिया हो। बिल्कुल यही भावना, यही अतृप्ति, यही ज्वाला, यही असन्तोष, नवीन के लिए वही प्रतीक्षा, उत्कण्ठा और आग्रह उसमें भी तो है। पर अध्यापक के चेहरे की ओर देखते-देखते उसने सोचा—'ये भावनाएँ सव्यसाची में तो नहीं थीं। सव्यसाची इस प्रकार अंधेरे में तो नहीं टटोल रहा है। उसमें तो अदम्य विश्वास और अविचलित निष्ठा है। उसने हज़ारों रास्तों के संगम-स्थल पर अपना रास्ता पा लिया है। और यह ?'

आशीष कुमार कहते गये—'इतिहास, अंग्रेजी तथा प्रयोगात्मक मनो-

विज्ञान में एम० ए० किया, पर क्या लाभ हुआ ? शराबी जैसे शराब पीकर अपने दुःखों को तथा विवेक को दबाये रखता है उसी प्रकार मैं किताबें पढ़ कर अपने को वास्तविक जीवन-समस्या से अलग रखता हूँ। मैंने अधिक पढ़ा है, अधिक विश्लेषण किया है, इसलिए सभी बातों में विश्वास खो बैठा हूँ। विश्वास याने वह विश्वास, जिसके कारण लोग जान लड़ा देते हैं, वह मुझमें कहाँ है ? नहीं है। हाय, यदि मैं मूर्खों की तरह धर्म में, ईश्वर में या किसी चीज़ में विश्वास कर सकता ...।'

सुजाता के लिए और सुनना असहनीय हो गया। उसे ऐसा मालूम हुआ कि यदि वह अधिक देर तक ऐसी बातें सुनेगी तो हृदय फट पड़ेगा। उसने बात बदलने के लिए कहा—'कितने बजे ? शायद जवाब आने का टाइम हो गया...।'

'हाँ, हाँ !' कह कर अध्यापक ने कलाई की घड़ी की ओर देखा—'डेढ़ घंटा हो गया, जवाब आता ही होगा। पर जल्दी की जरूरत नहीं, न मालूम कैसी खबर आवे।'

दोनों चिन्तित हो कर चुप हो गये। भीतर 'टेरेटक्क' की भाषा में बराबर खबरें आ-जा रही थीं। सुजाता तार देने के शब्द को सुनते-सुनते कल्पना करती जाती थी कि वे काम कैसे होंगे जहाँ सव्यसाची गया है। क्या सव्यसाची को सख्त बीमारी है ? एक बार उसे गुस्सा आया कि अच्छा हुआ उसे रोग हुआ। यह तो होना ही था। पर क्रोध अधिक देर न टिका, वह धीरे-धीरे सहानुभूति और बाद को दुःख में परिणत हुआ। सव्यसाची जैसे व्यक्ति पर जो अपना नुकसान आप करता है, क्रोध कैसे किया जा सकता है ?

अकस्मात् आशीष कुमार तार लाकर बोला—'यह आ गया।'

जल्दी में सुजाता ने तार को लेकर पढ़ा, उसमें अंग्रेजी में लिखा था—'खैरियत, अभी खतरा नहीं।'

सुजाता के चेहरे पर फिर स्वास्थ्य का रंग दौड़ गया। वह आशीष कुमार से दो एक साधारण भद्रता की बात कर के वह घर की ओर चली। सुकुमार पर उसे बहुत क्रोध आ रहा था कि उसने सब कुछ जानते हुए इस प्रकार की अफवाह क्यों फैलाई ? बदमाश कहीं का ?

अगले दिन सुकुमार और सुजाता में अकेले में भेंट हो गई।

सुकुमार किसी निर्णय पर पहुँचने के लिये व्याकुल हो रहा था। बोला—'मिस बैनर्जी, आपसे मुझे कुछ बातें करनी हैं...।'

सुजाता ने मानो कुछ प्रतिध्वनि करते हुए कहा—'आपसे भी मुझे कुछ बातें करनी हैं।'

'कहिए'

'आप पहिले कहिए', सुजाता ने तैश के साथ कहा।

नम्रता के साथ सुकुमार ने कहा—'शायद हम दोनों का वक्तव्य एक ही हैं, शायद आप भी वही कहना चाहती हैं; जो मैं कहना चाहता हूँ।'

'फिर भी आप पहिले कहिए।'

सुकुमार बड़ी विपत्ति में फँस गया। वह प्रेम के लिए सुजाता के साथ विवाह करने का प्रस्ताव नहीं रख रहा था। वह इसलिए यह प्रस्ताव रख रहा था कि उम्र निकली जा रही है तथा सुजाता धनी कन्या है। फिर भी उसने यह समझ लिया कि प्रेम करना तो सहज है, पर प्रेम-निवेदन बहुत ही कठिन है। फिर भी कहना ही था, उसने गिड़गिड़ाते हुए कहना शुरू किया—'सुजाता देखो, हम बड़े दिनों से प्रतीक्षा कर रहे हैं। तुम भी बी० ए० पास हो गई हो, अब हम लोगों की शादी हो जानी चाहिए।'

उसने इस प्रकार इन बातों को कहा मानो सुजाता उसकी वाग्दत्ता हो।

'क्या ?' आश्चर्य चकित सुजाता ने कहा।

'हम लोगों की शादी हो जाय।' एक झूठ कहने पर जैसे और झूठ कहना पड़ता है, उसी प्रकार एक बार साहस किया था, तो फिर साहस कर सुकुमार ने कहा।

सुजाता हहराकर हँसी, बोली—'इसके माने ?'

सुकुमार को पसीना आ चुका था, पर कुछ बोला नहीं।

सुजाता ने कहा—'तुम्हारे साथ मेरी शादी ? हः हः ! इसके बाद फिर यह बात न कहना। समझे ? समझने को उसने इस प्रकार कहा मानो सुकुमार की गर्दन पकड़ कर झकझोर दिया हो, फिर बोली—'यही तुम्हारा वक्तव्य था। मैंने सुन लिया। अब मेरा वक्तव्य सुनो...।'

क्रोध से बमकती हुई सुजाता बोली—'तुमने यह अफवाह क्यों फैलाई कि सव्यसाची जी को ताऊन हो गया !'

'मुझे ऐसी ही खबर मिली थी ?'

'किसने तुम्हें यह खबर दी थी ?'

सुकुमार ने उत्तर नहीं दिया।

'किसने यह खबर दी थी ?' सुजाता ने फिर कहा।

'एक विश्वस्त व्यक्ति ने।'

'कौन वह विश्वस्त व्यक्ति है ?'

'मैं उसका नाम नहीं बताऊँगा।' प्रतिहिंसा लेने का एक मौका पाकर सुकुमार बोला।

'क्या ?' फिर रुक कर बोली—'मैं पूछती हूँ, वह कौन है ?'

'कौन ?'

'और कोई नहीं, उड़ाने वाले तुम स्वयं हो। तुम्हें शर्म नहीं आती कि एक ऐसे आदमी के सम्बन्ध में ऐसी बातें उड़ाते हो। तुम आदमी नहीं हो......।'

सुजाता और कुछ नहीं बोली, वह रुद्ध अभिमान से बाहर चली गई।

: २१ :

डेढ़ महीना पहिले वैद्यनाथ आदि ने इस महामारी पीड़ित इलाके के बीच में एक गाँव के पास के आमों के बागों में आश्रय लिया था। जिन ग्रामवासियों को सुविधा तथा सामर्थ्य थी, वे भाग कर दूसरे जिलों में चले गये थे। बाकी लोग गाँव छोड़ कर बागों में पड़े थे। गाँव उजड़े पड़े थे।

सेवा दल ने जिस आमों के बाग़ में अपना डेरा जमाया था, उसी के पास सुनौरा गाँव था। सुनौरा में कभी एक हज़ार की आबादी थी। उसके अधिवासी चैन से रह रहे थे, पर अकस्मात् प्रकृति के अभिशाप स्वरूप प्लेग के प्रारम्भ होते ही सब गड़बड़ हो गया। झुण्ड के झुण्ड लोग मरने लगे। आबादी से चहकता हुआ गाँव एका एक निस्तब्ध श्मशान-सा हो गया। एक-एक घर में दो-दो तीन-तीन आदमी मरे। जो स्थान कभी नर-कंठों के कोलाहल से पूर्ण थे, वहाँ अब मनुष्य मिलते ही नहीं थे। इतने लोग मरते थे कि दाह-संस्कार नहीं हो रहा था। लाशें यों ही पड़ी पड़ी सड़तीं, या फूल कर पानी के ऊपर तैरतीं। प्लेग का डर भयानक होता है, नहीं तो लोग कभी अपना घर-बार थोड़े ही छोड़ते हैं।

सेवा दल के सदस्यों का पहला दिन और पहली रात स्थान ठीक करने में लगी। दूसरे दिन सबेरे से ही उन्होंने काम शुरू किया और सुनौरा देखने गये। गाँव के अधिवासियों ने उन्हें बहुत मना किया, कहा—'बाबू, उस गाँव में इस समय अपदेवता का कोप है, वहाँ न जाइये, वहाँ कोई है भी नहीं।'

वे गाँव वालों की बात न मान कर गाँव में दाखिल हुए। केवल डा० चन्द्रशेखर सेवा दल के तम्बू में रहे, बाकी तीनों गाँव के अन्दर गये। वे अपना पथ-प्रदर्शक आप बने। दिन का समय था और वे तीन साथी थे, फिर भी कुछ

दूर गाँव के अन्दर जाते ही उन्हें कुछ डर मालूम होने लगा। एक अजीब बदबू गाँव के प्रत्येक मकान से निकल कर गाँव के वायु मण्डल को दूषित कर रही थी। चारों तरफ एक ऐसी उथल-पुथलकारी दृश्य था, जो अजीब भावनाएँ उत्पन्न करता था। जनहीन मकान अपनी कहानी आप ही कह रहे थे।

तीनों चलते-चलते अकस्मात् रुक गये। उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि उन्होंने गाँव के अन्दर किसी आदमी की आवाज़ सुनी है। पर कुछ देर खड़ा हो कर भी वे फिर उस आवाज़ को सुनने में समर्थ नहीं हुए। वे फिर आगे बढ़ने लगे। उन्होंने देखा कि मकानों के आँगनों में जो एक-आध तुलसी या या बैंगन आदि के पौधे थे, वे सूख गये हैं—मानो गरीब ईसाइयों की कब्रों पर वे क्रास हों। सभी मकानों में ताले पड़े थे। कहीं-कहीं मकानों के किवाड़े खुले भी थे, मानो उनमें कुछ ऐसी बात थी ही नहीं, जो छिपाने की हो। वे समय समय पर आने वाली हवा से हिल-हिल कर मानो कह रहे थे 'हे विश्वासी, देख लो हमारे पास कुछ भी नहीं है, कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं।' हो सकता है कि उनके सभी मालिक एक साथ प्लेग के शिकार हो चुके हों।

कोई दूसरा समय होता तो ये दृश्य उनके मन में केवल करुणा का उद्रेक करते, पर प्लेग, महामारी, मृत्यु के संयुक्त होने के कारण ये दृश्य उनके मन में भय-मिश्रित विषाद का संचार कर रहे थे। विज्ञान के छात्र वैद्यनाथ के मन में यह बात काँटे की तरह चुभ रही थी कि विज्ञान ने तो प्लेग, हैज़ा इन सब कथित दैवी विपत्तियों के उन्मूलन के लिए आविष्कार किये हैं, फिर यह महामारी, मृत्यु तथा कष्ट क्यों? तो फिर विज्ञान पैर कटे हुए व्यक्ति के लिए साइकिल की तरह एक उपहास मात्र है? वह सोच रहा था कि विज्ञान जिस वेग से उन्नति कर रहा है, मनुष्य उस वेग से उसके साथ कदम मिला कर क्यों नहीं चल पा रहा? विज्ञान ने तो अपनी प्रयोगशाला में बहुत से रोगों को अव्यर्थ औषध खोज निकाली है, फिर भी ये रोग रह कैसे गये? उन रोगों का नाम मैस्टोडोन मैमाथ की तरह एक प्रागैतिहासिक वस्तु क्यों नहीं हो गया? उसने सोच कर देखा कि इसका कारण निर्धनता और समाज की तरफ से किसी प्रकार के पद्धतिगत कार्यक्रम का अभाव है।

वैद्यनाथ मानो चिल्ला कर सोचते हुए बोल उठा—'वैज्ञानिकों को अब अपनी प्रयोगशालाओं को छोड़ कर बाहर निकल आना चाहिए।'

'क्यों?' अनुरूप ने न समझ कर पूछा।

'और क्या? विज्ञान ने निज हितकर बातों का आविष्कार किया है, वे

जीवन में अनुवादित नहीं हो सकीं। ऐसी हालत में आविष्कार करने का क्या अर्थ है ? सिद्धान्त और व्यवहार में यदि एक पूरे युग की खाई रह गई तो क्या लाभ एक चिरन्तन द्वंद्व और द्विधा तो रह ही गई। इसलिए मैं कहता हूँ कि वैज्ञानिकों को अब कुछ दिनों के लिए अपनी प्रयोगशालाओं में ताला डाल कर बाहर आकर इस बात के लिए संघर्ष करना चाहिए कि जीवन विज्ञान के साथ एक कतार में आ जाय। जो विज्ञान इतना बहुमूल्य है कि वह फोर्ड, आगाखां और निजाम के कष्टों का ही शमन कर सकता है, ऐसे विज्ञान को मैं नहीं चाहता, मैं ऐसे विज्ञान को चाहता हूँ जो सूर्य की रोशनी की तरह सबके काम आ सके।

सव्यसाची ने बातचीत में भाग लेते हुए कहा—'मैं वैज्ञानिकों को प्रयोगशाला की आबोहवा से खींच कर बाहर लाकर जीवन के नेता के रूप में खड़ा कर देने का पक्षपाती नहीं हूँ। उनमें वैज्ञानिक साहस होने पर भी वे अक्सर व्यक्तिगत जीवन में विज्ञान के उपसंहारों के विरुद्ध चलते हैं। वे विज्ञान के नेता हैं, इसी कारण जीवन के अच्छे नेता होंगे, ऐसी कोई गारण्टी नहीं है। उनमें वह मानसिक गठन तथा वह साहस नहीं है। यह अच्छा ही है कि ऐसे लोगों के हाथों में हमारे जीवन की लगाम नहीं है। इसके अतिरिक्त जीवन और विज्ञान के बीच में जिस खाई की बात कही जा रही है, मैं उससे डरता नहीं हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ, यदि सही सामाजिक पद्धति स्थापित हो गई तो एक दिन में ही व्यवहार विज्ञान को पकड़ लेगा, बल्कि उस समय हमारे दुःख तथा शिकायत का कारण यह होगा कि विज्ञान घोंघे की चाल चलता है। उस समय लोग कहेंगे कि और भी अधिक लोग वैज्ञानिक बनें, और वैज्ञानिक एक रात में नहीं बन सकता। समाज पीछे नहीं है, विज्ञान पीछे है।

सव्यसाची की उद्दीप्त वाग्धारा में बाधा पड़ गई। तीनों खड़े होकर कान लगा कर सुनने लगे। नहीं, अब के कोई गलती नहीं हो सकती। पास के किसी मकान से स्पष्ट ही मनुष्य की आवाज़ सुनाई पड़ रही थी। एक तीखे और दीर्घ विलाप की तरह...।

दृढ़ हृदय होने पर भी सब लोग कुछ सहम गये! वे सतर्क होकर चारों ओर देख कर एक-एक कदम आगे बढ़ाने लगे।

शब्द अब सुनाई नहीं पड़ रहा था। वे रास्ते से चलने लगे।

अकस्मात् अनुरूप ने संकुचित और कुछ जकड़ी हुई आवाज़ में कहा—'वह देखो!' कह कर उसने एक मकान की ओर उंगली से संकेत किया। दो ज्वलन्त आंखें उनकी तरफ घूर रही थीं, मानो श्मशान घाट का कोई मुर्दा खड़ा

हो गया हो। सन की तरह सफेद बाल जो बेतरतीब इधर-उधर उड़ रहे थे, आँखें बैठी हुईं, मुँह में एक हिंस्र विषादपूर्ण भाव, चेहरा पीला और सूखा था, जैसा मुर्दे का होता है।

भय-मिश्रित प्रथम आश्चर्य पर विजय पाने के बाद सव्यसाची आदि समझ गये कि यह कोई प्रेतात्मा नहीं बल्कि एक बुढ़िया है, जो किसी कारण से भूल से यहाँ रह गई है, या लोगों ने इसे मुर्दा समझ कर छोड़ दिया होगा, बाद को जिन्दा हो गई!

वे नौजवान उसके उद्धार के लिए व्यग्र हो उठे!

वे उस मकान के आंगन में गये।

बुढ़िया आकर उनके सामने खड़ी हो गई। अब वह हिंस्र तो नहीं मालूम होती थी, बल्कि उसके पहनावे को देख कर दया का ही उद्रेक होता था। सैकड़ों जगह से फटा हुआ मैला कपड़ा, कहीं पर अलंकार की कोई चेष्टा भी नहीं। उसे मनुष्य कहते हुए जोर देना पड़ता है, नहीं तो आँखों से तथा पहनावे से वह एक जंगली पशु मात्र ही ज्ञात होती थी।

वैद्यनाथ ने बनारस की तरफ के गाँव की भाषा में कहा—'बुढ़िया, तुम यहाँ कैसे रह गई?'

बुढ़िया उसकी तरफ घूरती रही, जवाब नहीं दिया।

सव्यसाची ने फिर पूछा—'बूढ़ी, तुम अकेली क्यों हो?'

पर फिर कोई उत्तर नहीं मिला।

तब अकस्मात् अनुरूप ने सोचा कि शायद बुढ़िया कानों से कम सुनती हो, इसलिए उसने चिल्ला कर कहा—'बुढ़िया, तुम यहाँ क्यों रह गई?'

अब की बार बुढ़िया ने बड़े दुर्बल स्वर में कहा—'यह मेरा घर जो है।'

चिल्ला कर सव्यसाची ने कहा—'और सब तो गाँव छोड़ कर भाग गये, तुम्हें कोई नहीं ले गया?'

'नहीं, उन्होंने तो कहा था, मैं ही नहीं गई।'

'तुम जानती हो, चारों तरफ महामारी है, इस समय यहाँ रहना ख़तरनाक है?'

'महामारी मेरा क्या बिगाड़ेगी'—बुढ़िया ने मानो दृढ़ता से कहा।

सब लोग उसकी ओर ताकने लगे। कौन जाने इसका क्या रहस्य है?

बुढ़िया बोलने लगी—'पचास या साठ साल पहले मैं शादी के बाद बाप के घर से यहाँ आई। एक-एक कर मैंने सात लड़के पैदा किये, एक-एक कर वे

सातों यहीं मरे। पति बर्मा या चीन कहीं जा कर मरे। अब मैं अकेली हूँ, बिल्कुल अकेली। मेरे जीवन में कौन-सा सुख है कि मैं प्लेग से डरूँ?'

उसकी कहानी करुण थी, उसका जीवन एकाकी था, पर जिस परिस्थिति में वह थी, उसके कारण उसकी कहानी और भी करुण और उसका जीवन निःसंग मालूम होता था। सव्यसाची ने उससे आग्रह किया कि वह गाँव के बाहर चले, पर उसने कहा—'नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, मैं इस मकान को नहीं छोड़ने की......!'

और कहीं ऐसा न हो कि वे उसे जबरदस्ती गाँव से ले जायँ इसलिए उसने भीतर घुस कर सिटकनी बन्द कर ली। उस निर्जन परित्यक्त गाँव में किवाड़ बन्द करने की यह आवाज़ एक बहुत ही कर्कश एवं भयंकर वज्रपात की तरह मालूम हुई। रात में नक्षत्रों से खचित मेघहीन आकाश की तरफ ताकते अकस्मात् एक नक्षत्र को गिरते देख कर जो भावना मन में उत्पन्न होती है, तीनों मित्रों के मन में वही भावना उत्पन्न हुई। भय, आश्चर्य, सहानुभूति और न समझ पाना...।

बुढ़िया जैसे सारे विश्व को चुनौती देकर इस जीर्ण मकान के अन्दर किलाबंदी करके बैठी है। न मालूम किस यक्ष के धन पर वह पहरा दे रही है। बाहर के लिए उसका यह भय क्यों है? यह गृह-सर्वस्वता क्यों? यह ज़िद क्यों?

तीनों मित्रों ने बन्द किवाड़ की ओर देखा, मानो वे उन्हीं के अन्दर से उसके रहस्य को जानने की चेष्टा कर रहे हों।

ऊपर से अकस्मात् उनके सिर पर ढेलों की वृष्टि होने लगी और साथ ही साथ कोई गिड़गिड़ा कर कुछ बक-झक कर रहा था, फिर उनको कुछ भय-सा लगा। एक अभूतपूर्व परिभाषाहीन आतंक से वे किंकर्तव्यविमूढ़ होकर एक ओर गये, साथ ही साथ ढेलों की वृष्टि भी खतम हो गई।

तीनों मित्र रास्ता चलते-चलते इस बात को स्मरण करने लगे कि बुढ़िया जिस मकान में है, उसका आंगन बढ़िया तरीके से लिपा हुआ था तुलसी और पुदीना जीवन से हरे हो रहे थे, चारों तरफ जैसे प्राणों की चिनगारियों का स्फुरण था। उसका मकान मानो इस मरुभूमि में एक छोटा-सा नखलिस्तान की तरह था। बुढ़िया को जीवन में बहुत कष्ट मिला था, साथ-साथ लड़के और पति का वियोग; पर फिर भी उसके द्वार ढेले फेंकने का कारण समझ में नहीं आया।

वे रास्ते पर चलने लगे।

पीछे से बुढ़िया के मकान से आवाज़ आ रही थी—

चित्रकूट के घाट पर, भई संतन की भीर।
तुलसीदास चंदन घिसें, तिलक देत रघुबीर ॥

सव्यसाची ने ठिठक कर खड़े होते हुए कान लगा कर सुना, कहा 'सुन रहे हो ?'

'बुढ़िया का जीवन एकदम एकाकी नहीं। मालूम होता है उसके पास एक सुआ है। सुन नहीं रहे हो सुआ को पढ़ा रही है ?'

'हाँ।'

सब लोग कान लगा कर चौपाई सुनने लगे। बुढ़िया सुए को पढ़ाने में मानो अपना सारा हृदय उड़ेल दे रही थी। पहले बात करते समय ऐसा मालूम हो रहा था मानो बुढ़िया की आवाज़ कर्कश है, और अब सुए को पढ़ाते समय ऐसा मालूम हो रहा था कि उसके कंठ में सारे जगत की मधुरता आ गई थी। सब मनुष्यों के प्रति विमुख हो कर, उनके संग का त्याग कर, यहाँ तक कि उन पर ढेला फेंक कर, उनके सुख-दुःख में सहयोग करने से इन्कार कर उनके सार्वजनिक भय के कारण से डरने से इन्कार कर उसने अपना समस्त ध्यान, आस्था, विश्वास और शायद प्यार इस वन-पक्षी पर व्यक्त किया था। अजीब यह बुढ़िया थी।

तीनों मित्र इन्हीं बातों को सोच कर गाँव घूम कर लौट आये। देर हो रही थी, और उनका असली काम अभी शुरू नहीं हुआ था। काम की बात याद आते ही उनके शरीर में बिजली-सी दौड़ गई। बुढ़िया को देख कर जैसे काम में उनकी अभिरुचि और सेवा में उत्साह बढ़ गया था। उनको यह बात अब तीव्र रूप से मालूम हो रही थी कि इस पीड़ित, क्लिष्ट, सन्तप्त मानव समूह कीसेवा करनी ही चाहिए। बुढ़िया ने ढेला फेंका था, इस कारण उस पर उनके मन में कोई विद्वेष नहीं था। बल्कि उसके प्रति सहानुभूति ही उत्पन्न हुई थी।

इसके बाद वे बराबर गत डेढ़ महीने से रोगियों की तरह-तरह से सेवा करते आ रहे हैं दवा दे रहे हैं, पथ्य दे रहे हैं, मीठी-मीठी बातों से तसल्ली दे रहे हैं। कितने ही लोगों की मृत्यु-शय्या के सिरहाने बैठ कर उन्होंने उनका अन्तिम कराहना सुना। कहीं-कहीं उनकी दी हुई तसल्ली सफल रही, कहीं बिल्कुल असफल। उन्होंने रोगियों पर सब तरह के चिकित्सा के प्रयोग किये, ऐसे रोगियों पर जिनके रोग का नाम सुनते ही गाँव के गाँव उजड़ जाते हैं। रोज़ वे

मृत्यु का ताण्डव देखते हैं। मृत्यु उनके निकट साधारण वस्तु हो गई है। जैसे बनिया के निकट बटखरा।

अनुरूप एक रोगी की मृत्यु-शय्या पर से लौटा, बोला—'देखो, हमें पग-पग पर एक बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है...।' उसके चेहरे पर परेशानी, लज्जा और किंकर्तव्यविमूढ़ता थी।

उस समय कुछ देर के लिए चारों साथी तम्बू में एकत्र हुए थे।

सबने सहानुभूति के साथ पूछा—'क्यों?'

'हम मरने वालों को क्या कह कर तसल्ली दें, यह समझ में नहीं आता। फिर सव्यसाची की तरफ देख कर बोला—'तुम तो विशेषज्ञ हो, बताओ भौतिक-वाद में मरने वाले के लिए कोई तसल्ली भी है?'

सव्यसाची अन्यमनस्क हो गया। सव्यसाची को मौन देख कर वैद्यनाथ बोल उठा—'मरने वाले को देने के लिए कोई झूठी सान्त्वना हमारे पास नहीं है। हम किसी को यह आशा नहीं दिला सकते कि वह मरने के बाद फिर जीवित होगा, या बाद को अपने प्रियजनों को मिलेगा, क्योंकि यह सब झूठ है...। यदि वे झूठी सान्त्वना चाहते हैं, तो वे धर्म के बनावटी मणिमुक्ता के कारखाने में जायँ, वहाँ उन्हें चिरजीवन, दूध और शहद की नदी से पूर्ण स्वर्ग की, और न मालूम किस-किस बात की आशा दिलाई जायगी...।'

अनुरूप ने कड़वेपन के साथ कहा, मानो वह अभी तक दुःख से विह्वल उस मरने वाले को देख रहा था, जिसके पास से वह अभी लौटा था—'पर उन्हें तो कोई तसल्ली चाहिए ही...।'

वैद्यनाथ ने हठपूर्वक कहा—'झूठी तसल्ली?'

अनुरूप क्या कहे, यह न समझ पाकर निरुत्तर हो गया, पर उसे तृप्ति नहीं हुई। वह तो अभी तक उसी मरने वाले के पास बैठा हुआ था, वह उसकी प्रत्येक बात तथा रंग-ढंग को प्रत्यक्ष देख रहा था। मरने वाला कह रहा था—'मैं मरना नहीं चाहता, नहीं चाहता। मेरी उम्र सिर्फ पैंतीस है...।' अकस्मात् रुक कर, जैसे कुछ सोचकर उसने कहा था—'अच्छा बाबू, मरने के बाद फिर मैं अपनी स्त्री से मिलूँगा? वह बहुत तकलीफ में मरी है। वह भी मरना नहीं चाहती थी। ओह! क्या हम लोग फिर मिलेंगे?'

अनुरूप किसी भी कारण से झूठ बोलना पसन्द नहीं करता था, इसलिए उसने केवल यही कहा—'चुपचाप लेटो, ज्यादा बात मत करो...।' कह कर उसके मुँह से दवा का गिलास लगा दिया था।

दवा के गिलास को धरती पर पटक कर मरने वाले ने कराहते हुए कहा था—'आह, मैं मरना नहीं चाहता। बुखार में मरना कोई बात नहीं थी, पर प्लेग से नहीं! आह, मेरी बीबी! ऐ मेरी मां! ऐ मेरे बाप! क्या मैं तुम लोगों के पास आ रहा हूँ?'

अनुरूप के मन में बड़ी इच्छा हो रही थी कि वह इस प्रश्न के उत्तर में 'हाँ' कह कर मरने वाले के हृदय में अन्तिम बार के लिए एक सुखानुभूति की तथा एक निरापद हो जाने की भावना की सृष्टि करे, पर उसका निरीश्वरवाद उसे ऐसा कहने से रोकता था। हाँ, यह एक कितनी छोटी-सी, कितनी अनाडम्बर तथा कितनी साधारण बात थी, पर यह उसके लिए एक गत-जगत की व्याख्या थी जो उसे मृत्यु का, अनिवार्य मृत्यु का सामना करने का साहस देती।

जब तक वह व्यक्ति मरा नहीं, वह इसी प्रकार के अजीबो गरीब प्रश्न पूछता रहा। यदि वह व्यक्ति मरने वाला न होकर साधारण स्वस्थ व्यक्ति होता, तो अनुरूप उसके साथ तर्क करता, उसे समझाता, प्रमाण देता, और जरूरत पड़ने पर उसके साथ लड़ बैठता, पर इस मरने वाले के साथ क्या किया जा सकता था? इस व्यक्ति के साथ न तो तर्क करने की प्रवृत्ति हो रही थी, न इसके लिए समय ही था, न मौका। जिस किसी घड़ी भी यह व्यक्ति अपनी अन्तिम साँस खींच सकता था—तर्क के दौरान में ही, ऐसे से क्या तर्क करना?

इस प्रकार कराहते-कराहते एक समय उसकी ऐंठी हुई देह सीधी पड़ गई, उसके हाथ पैर शिथिल हो गये, उसका मुँह कुछ खुल गया, मानो गिड़-गिड़ा कर दो शब्द कह रहा हो, एक अस्फुट दर्द कराहना, उसके बाद सर्व समाप्ति। बिजली की तरह जल्दी से उसके सारे शरीर में मुर्दे का पीलापन दौड़ गया। सब खतम हो गया। मरने के बाद भी उसकी दोनों आँखें विस्फारित थीं—आश्चर्य से या आतंक से?

अनुरूप अपने प्रति रुष्ट तथा क्रुद्ध होकर वहाँ से चला आया था। उसके बाद स्नानादि कर शुद्ध होकर तम्बू में आया था। वैद्यनाथ ने फिर कहा—'झूठी तसल्ली? वह माँग रहा है, इसलिए उसे झूठी तसल्ली देनी पड़ेगी?

अनुरूप अप्रसन्न होकर बोला—'यदि झूठ से ही उनकी तसल्ली होती हो तो? यदि सत्य में उनकी तसल्ली का कोई उपकरण न हो तो?'

गरज कर वैद्यनाथ ने कहा—'डाक्टरी की जरूरत के अनुसार रोगी के प्राणों में आशा का संचार करने के लिए जो चाहे सो कहो, पर दूसरी हालत में

झूठी तसल्ली देने का काम हमारा नहीं है। यदि किसी को इसकी जरूरत है, तो वह धर्म के पास जाय। मान लो, मिल में काम करते-करते एक आदमी का हाथ कट जाय, तो उसके लिए क्या तसल्ली हो सकती है? हम क्या उसे यह कहें कि मरने के बाद क्षतिपूर्ति के रूप में वह चतुर्भुज हो जायगा, या उससे यह कहें कि उसका जो हाथ कट गया है, वह भ्रम है. वह हाथ था ही नहीं। हम लोग केवल इतना ही कर सकते हैं कि उसका हाथ जिन कारणों से तथा जिन असावधानियों के कारण कट गया बाद को वह या और कोई उसका शिकार न हो, हम यह देखेंगे कि हाथ न रहने पर भी उसके परिवार के लोग भूखों न मरें, हम लोग यह भी देखेंगे कि वैज्ञानिक तरीके से उसे कृत्रिम हाथ दिया जा सकता है या नहीं। जहाँ इसमें अधिक माँग है, वहाँ पर हम उसकी पूर्ति नहीं कर सकते। उस अवस्था में उन्हें धर्म की शरण में जाना पड़ेगा। हम कुछ नहीं कर सकते हैं।'

'पर मृत्यु के सम्बन्ध में क्या होगा?'

'जो अनिवार्य है, उसे ग्रहण करना, और जिसका प्रतिकार हो सकता है, उसका प्रतिकार करना, और धीरे-धीरे विज्ञान की सहायता से, कल्पना या मायावाद की सहायता से नहीं, इस अनिवार्य के इलाके को घटाते जाना यही जहाँ तक मैंने समझा है, हमारा उद्देश्य है। जो अनिवार्य है, उसे शान्ति के साथ तब तक ग्रहण करना जब तक वह अनिवार्य है, और इस बीच में इसकी अनिवार्यता पर चोटें करना। कल्पना की सहायता से उसे उड़ा कर या उसे दो जीवनों के बीच एक पुल बनाने से काम न चलेगा। अवश्य मृत्यु आयेगी कह कर निष्क्रिय रूप से आत्म-समर्पण करने से काम नहीं चलेगा। अन्तिम मुहूर्त्त तक उसके साथ पूरे साहस-बल से लड़ना पड़ेगा। मेरा विश्वास है कि विज्ञान एक दिन मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकेगा।'

अनुरूप ने ज़िद् के साथ कुछ कहा।

पर वैद्यनाथ अनुरूप की बात नहीं सुन रहा था, वह तम्बू के किवाड़ के अन्दर से दूर क्षितिज की ओर ताक रहा था। उस समय सन्ध्या आने वाली थी, मेघों ने उस समय सूर्य की सहायता से आकाश के हृदय में तरह-तरह के रंगीन स्वप्नों की रचना की थी। वह स्वप्न वैद्यनाथ के विज्ञान सम्बन्धी स्वप्न की तरह रंगीन तथा दीप्त था।

वैद्यनाथ को चुप देख कर सव्यसाची ने कहा—'हम इस तसल्ली मानने की मनोवृत्ति को ही खतम कर देना चाहते हैं...हम लोग मनुष्य को ऐसा तगड़ा बना देना चाहते हैं कि वह सत्य का सामना करके भी सुखी रह सके।'

इस प्रकार काम से सिद्धान्त में और सिद्धान्त से काम में उनका गत डेढ़ महीना बीत गया था। बहुत अधिक काम, फिर कुछ तर्क, अत्यन्त अधिक वास्तविकता और प्रयोग, उसके बाद थोड़ा-सा उपसंहार जैसे खूब अधिक खरीद फरोख्त, उसके बाद थोड़ा-सा हिसाब मिला लेना। यही उनके गत डेढ़ महीने का जीवन था।

कितने जीवनों को उन्होंने बचा लिया। वे इन ग्रामवासियों में दुःखहर्ता विज्ञान की वार्ता लेकर मानवता के देवदूत के रूप में आये थे। परिश्रम के मारे दुबले हो गये थे, फिर भी काम में कमी नहीं थी, उद्यम निश्चल था। सव्यसाची और वैद्यनाथ काम इस प्रकार करते थे, मानो भीतर से उन्हें कोई प्रेरणा मिल रही हो। पर सव्यसाची और डाक्टर अपने सिद्धान्तों का परीक्षण कर रहे थे। काम सभी दिल खोल कर करते। डाक्टर में जो आशावाद था, उसमें संदेहवाद की मिलावट थी, फिर भी वह प्रचंड था। सेवा की आग सब में सुलग-सुलग कर नहीं, लपटों का विस्तार कर जल रही थी।

: २२ :

जाड़ा शुरू हो गया। महामारी का प्रकोप प्रायः नहीं के बराबर है। इधर-उधर एक-आध छिट-फुट केस हो रहे हैं। महाकाल ने अपना चंगेज़खानी कत्लेआम बन्द कर दिया है। अब तो ऐसा मालूम हो रहा था कि मामूली कर मात्र ले रहा है। गांव वाले बाग़ छोड़ कर गांवों में लौट गये हैं। सेवा दल को अब अधिक दिन दिल्ली रहना नहीं है। इतने में वैद्यनाथ को एकाएक बुखार हो आया। डाक्टर ने टेम्परेचर लेते हुए कहा—'एक सौ दो।'

सब लोग सन्नाटे में आ गये। डाक्टर का चेहरा देख कर ऐसा मालूम हुआ कि मामला संगीन है।

सव्यसाची ने डाक्टर को आड़ में ले जाकर पूछा कि मामला क्या है? इस पर डाक्टर ने जो कुछ कहा वह बहुत ही भयानक था। चन्द्रशेखर ने कहा—'वैद्यनाथ को तुरन्त काशी ले जाना चाहिए। यहाँ पर जो इलाज होगा, उससे रोग बहुत दिनों में ठीक होगा।' इसके बाद कुछ सोच कर कहा—'शायद न भी ठीक हो। यह टाइफाइड है।'

वैद्यनाथ को काशी लौट चलने के विषय में कहा गया, पर वह किसी भी तरह काशी लौटने के लिये तैयार न हुआ। उसे समझाया गया कि गांव का सब काम खतम हो गया है, अब यहाँ रहने का कोई अर्थ नहीं है। पर उसने इन बातों पर कान नहीं दिया। रोगी की अकारण हठ की चट्टान पर उनके सब

अनुरोध टकराकर टूट गये। वैद्यनाथ ने हाथों को अजीब ढंग से पटक कर और हँसने की चेष्टा कर कहा—'जो कबिरा काशी मरै, रामैं कौन निहोर' और जाने से इन्कार कर दिया। उसे जबरदस्ती ले जाया नहीं जा सकता था अतः उसकी सेवा तथा इलाज जारी रहा। एक चौदह पन्द्रह वर्ष की अनाथ लड़की बतसिया जो अब इस सेवा दल की सदस्या-सी हो गई थी, वैद्यनाथ की विशेष सेवा कर रही थी।

इस अनाथ लड़की का इतिहास यों था—

जिस समय सेवा दल अभी आया ही था, उस समय सव्यसाची एक चमार परिवार में सेवा करने गया था। उस परिवार में पति, पत्नी और यह लड़की थी। पहले पत्नी और बाद को पति प्लेग के शिकार हुए। रह गई केवल यह अनाथ लड़की।

लड़की का बाप स्त्री के शोक में इतना विह्वल था कि जब उसे प्लेग हुआ, तो उसे कुछ दुःख नहीं हुआ। हाँ, लड़की का मुँह देख कर वह कभी-कभी रो पड़ता था। लड़की न होती तो वह सुख से ही मरता। स्त्री के मरने के बाद उसे अपने जीवन में कोई आकर्षण नहीं मालूम होता था। अछूत, तिस पर गरीब। सव्यसाची दवा की शीशी तथा पंखा हाथ में लेकर उसकी ओर ताकता रहता था, एक निष्फल और असहाय करुणा उसके अन्दर धुंधुआती रहती थी। वह कुछ समझ नहीं पाता था कि क्या करे?

मरने वाले ने कहा—'बाबू, यह न समझिए कि मरने के डर से रो रहा हूँ, मुझे सोच है तो इस लड़की के विषय में। बाबू, अगर तुम लोग इस लड़की का भार उठा लो, तो मैं आराम चैन से मरूँ।' फिर जरा हिचकी-सी भर कर बोला—'पर किसी भी तरह इसे इस गांव में न छोड़ जाना। यह गांव बाम्हनों का है। वे सब हम से तो घृणा करते हैं, पर कइओं की नज़र इस बतसिया पर है......।'

वह कुछ नहीं बोला। सव्यसाची समझ गया। पिता की मृत्यु के बाद बतसिया की क्या गति होगी, यह भी वह समझ गया।

मरने वाले को सान्त्वना देने के लिए उसने कहा—'हमने तुम्हारी लड़की का भार ले लिया, चिन्ता न करो...।'

मरने वाले के चेहरे पर कुछ मुस्कराहट-सी दिखाई दी थी। फिर वह बुझ गया था।

उस दिन से बतसिया सेवा दल के तम्बू में रहती थी और बाबुओं के

काम में सहयोग देती थी। वह भी प्लेग से नहीं डरती थी। वह रोगियों की सेवा में दत्त थी। माता-पिता के शोक में वह कभी-कभी चिल्ला कर रो पड़ती थी, पर सान्त्वना की दो-एक बातों से चुप हो जाती थी और फिर काम करना शुरू कर देती थी। दुःख तो उसके लिए एक विजातीय वस्तु थी, उसके साथ उसकी दो दिन की भेंट थी, हँसना ही मानो उसका स्वधर्म था। दवा की बोतलों के सम्बन्ध में उसे बहुत कौतूहल था, डाक्टर को वह परेशान कर मारती थी... 'इस बोतल में क्या है, उस बोतल में क्या है ?' इत्यादि।

डाक्टर कुछ प्रश्नों का उत्तर देते, कुछ का नहीं देते। पर बतसिया मन ही मन याद कर लेती...यह बुखार की दवा है, यह दस्त की, यह जुलाब की। वह बोतलों को हिला-डुला कर, घुमा-घुमा कर देखती थी। बोतलों के चिकने धरातल पर हाथ फेरने में उसे बहुत अच्छा मालूम होता था। सेवा दल के सभी सदस्य उसका ख्याल रखते थे, क्योंकि बिचारी मातृ-पितृ हीन थी। सभी उसको समय समय पर नई-नई बातें सिखाने की चेष्टा करते थे, उसके मूर्खतापूर्ण प्रश्नों का वैज्ञानिक उत्तर देते थे। उसे वे समझाने की चेष्टा करते थे कि वह चमार कुल में उत्पन्न होने के कारण उनसे नीची नहीं है। इन लोगों की कुछ बातों को वह समझती थी, कुछ को नहीं समझती थी। दूर से आये हुए सागर कोलाहल की तरह वह इनकी बातों में एक पुकार सुन पाती थी, पर उनकी बातों में कहाँ शक्ति और कहाँ आकर्षण था, इसे वह समझ नहीं पाती थी। फिर भी वह इन लोगों की बातों को पसन्द करती थी। उनके स्वर में तथा उनके कहने की शैली में ही कोई आकर्षक उपादान था।

उसके आ जाने पर सेवा दल वाले समझते थे कि वे चार से पाँच, बल्कि साढ़े पाँच हो गये हैं, क्योंकि वह अवसर कामों को दौड़-दौड़ कर करती थी। एक दिन चन्द्रशेखर तम्बू से दूर एक आम के बाग़ में रोगी को देखने के बाद बक्स टटोल कर बोला—'लो जुलाब की शीशी तो मैं भूल ही गया और उसके बिना तो इलाज नहीं हो सकता।'

डाक्टर का चेहरा खिन्न-सा हो गया, क्योंकि इसका अर्थ यह था कि दो मील पैदल जाकर दवा लेकर फिर दो मील आना। संयोग से उस दिन बतसिया साथ में थी। बोली—'क्या चाहिए ?'

'जुलाब की बोतल भूल आया !'

'ओह, यह बात ! मैं अभी ला देती हूँ। वह काँच की डाट वाली लाल बोतल न ?'

'ऐसी तो कई बोतलें हैं !'

पर डाक्टर की बात पूरी भी नहीं हो पाई कि बतसिया फुदकती हुई चल पड़ी। डाक्टर बाग़ के दूसरे रोगियों को देखने लगे। कुछ देर में बतसिया एक बोतल बगल में रख कर लौट आई और उसे चन्द्रशेखर के हाथ में दिया। चन्द्रशेखर ने मुस्करा कर कहा—'हाँ, यही है वह शीशी !'

बतसिया का चेहरा खुशी के मारे उद्भासित हो गया। वह उस दिन से और भी ध्यान से डाक्टर की दवा आदि मिलाना देखने लगी। इन कामों में उसे बहुत आनन्द मिलता था। वह जिस दिन से आई थी, तम्बू का रूप रंग ही बदल गया था। डाक्टर के लिए यह कम खुशी की बात नहीं थी। डाक्टर उसकी इन सब बातों से खुश होकर उसे बीच-बीच में एक दवा इनाम के रूप में पीने के लिए देता था। दो दवा मिलाते ही गिलास में उफान आ जाता था। बतसिया को यह दवा बहुत पसन्द थी, पर उस उफान के लिए ही वह मीठी तो होती नहीं थी। यह सिडलिट्स पौडर जैसी कोई दवा थी।

बतसिया इन चारो में से डाक्टर के साथ अधिक मिलने-जुलने पर भी, सव्यसाची को अधिक अपना समझती थी। उसका बाप तो उसे सव्यसाची के हाथ में ही सौंप गया था। सव्यसाची काम के मारे उसकी बात सोचने का अवसर नहीं पाता था, पर जब भी वह उसके सामने पड़ जाती थी, एक भयंकर समस्या उसके सामने आ जाती थी। अब तो खैर, जब तक यह सेवा दल है, कोई बात नहीं, पर इसके बाद इसे लेकर क्या होगा ? इसे गाँव में छोड़ दिया जाय ? नहीं, यह कभी नहीं हो सकता। इसका अर्थ होगा कि इसे ऐसे लोगों के हाथों में छोड़ देना जो उससे सहानुभूति नहीं रखते और इस अनाथ लड़की का इतना रूप ? यही रूप उसका परम शत्रु है। तिस पर उसकी अनुभव हीनता। सव्यसाची इस समस्या का समाधान नहीं कर पाता था। बतसिया के बाप को उसने वचन दिया था, केवल यही बात नहीं। वह बतसिया को एक अनिश्चित परिस्थिति में छोड़ जाने को राज़ी नहीं था। बतसिया से उसे कुछ स्नेह हो गया था।

बतसिया की सेवा, चन्द्रशेखर के इलाज तथा अनुरूप और सव्यसाची की देख-रेख के रहते भी वैद्यनाथ की हालत दिनों दिन बिगड़ती गई। सभी के चेहरों पर उदासी छाने लगी। वैद्यनाथ दिनों दिन परिश्रान्त, मौन, आत्म-समाहित, अपने में मग्न-सा हो जाता था। वह दिन दिनों स्वयं बात ही नहीं करता। कोई दूसरा भी बात करता तो उसे हाथ के इशारे से मना कर देता था, मानो

बात करके वे किसी अति पवित्र वस्तु की पवित्रता को नष्ट कर रहे हों। वह दवा खाये जा रहा था, पथ्य लिये जा रहा था, पर बात कम करता। कोई चीज़ भीतर ही भीतर उसे तथा उसकी जीवनी शक्ति को कुरेद कर खा रही थी।

सव्यसाची अपने पुराने साथी की ओर करुण नयनों से ताकता रहता, सव्यसाची उसका विश्लेषण, डाक्टर उसके रोगों के लक्षणों का अध्ययन करता, पर इन सब बातों का केन्द्र-स्थल जो वैद्यनाथ था, वह इन सब बातों की ओर ध्यान नहीं देता था। उसकी आँखों में लालटेन की रोशनी लगती थी, इस कारण तम्बू में लालटेन ही नहीं जलाई जाती थी।

वैद्यनाथ ने एक दिन अकस्मात् बिछौने पर लेटे-लेटे कहा—'संतोष को आजकल बार-बार देख रहा हूँ, उसका चेहरा मलिन-सा है...।'

इस प्रकार बीच-बीच में वह असम्बद्ध सी बातें करता। एक दिन वह प्रलाप कर रहा था...'सन्तोष...ठीक...मैं 'अपोस्टेट' नहीं हूँ। नहीं नहीं...यह सेवा दल नकली काम कर रहा है, असली...जानता हूँ, जानता हूँ...।'

अनुरूप और डाक्टर उसकी बातों को असम्बद्ध प्रलाप मात्र समझते, पर सव्यसाची ऐसी बातों को सुनकर उदास हो जाता, और उसके माथे पर के बल गहरे हो जाते, वह चिन्तित हो जाता। कभी-कभी वह सुनते-सुनते तम्बू के बाहर चला जाता, और आम के बाग़ की अर्धालोकमयी छाया में घंटों चहल-कदमी करता रहता। अनुरूप और डाक्टर सोचते कि सव्यसाची शायद किसी रोगी के पास जा कर बैठा है, केवल बतसिया जानती थी कि वह कहाँ है। वैद्यनाथ को सोते देख कर जब डाक्टर और अनुरूप भी सो जाते थे, तब बतसिया दबे पाँव तम्बू के बाहर जाती थी, और सव्यसाची के पास जा कर खड़ी हो जाती थी।

'बाबू!' कह कर वह सव्यसाची का हाथ पकड़ लेती थी, और धीरे-धीरे उसे तम्बू के अन्दर ले जाकर उसे बिछौने पर सुला देती, मानो वह कोई रोगी हो। फिर जा कर वैद्यनाथ के पास बैठ जाती।

सव्यसाची ने पहले पहल उस दिन इस प्रकार से चहल-कदमी की थी, जिस दिन अपने बक्स में कोई चीज़ खोजते-खोजते उसे सुजाता का फोटो मिला था। फिर जब से वैद्यनाथ बीमार हुआ था, यह उसका नित्य का नियम हो गया था। अब तो काम की भी भीड़ नहीं थी। ग्राम से दूर इस स्थान पर चहल-कदमी करते-करते वह कितनी ही समस्याओं पर विचार करता। सुजाता, वैद्यनाथ, सामाजिक विप्लवकारी संघ, बतसिया, भावी कार्यक्रम...।

: २३ :

सब सेवा शुश्रूषा तथा इलाज को व्यर्थ करते हुए वैद्यनाथ मर गया। एक नीरव वेदनाहीन मृत्यु...जैसे आकाश के नक्षत्रों की होती है। वैद्यनाथ ने एक बार भी अपनी कष्ट की बात नहीं कही, एक भी शिकायत नहीं की, स्टोइक उदासीनता के साथ उसने अपने परिणाम को, भाग्य को तथा यवनिका को ग्रहण किया। जैसे मृत्यु भी दो और दो चार हो।

सव्यसाची, अनुरूप और डाक्टर कुछ देर तक वज्राहत की तरह बैठे रहे, मानो जो कुछ हुआ वह अप्रत्याशित, अभूतपूर्व और कार्य-कारण सम्बन्ध हीन है, जगत में इसके पहले कभी नहीं हुआ, मानो पहली ही बार इन्होंने मृत्यु का चेहरा देखा हो और गत दो महीनों में कुछ नहीं तो चार-पाँच सौ लोगों को उन्होंने मरते देखा था, उनके अन्तिम मुहूर्त्त का प्रलाप-विलाप सुना था। उनकी आतंकग्रस्त तथा भयभीत आँखों को देखा था, पर आज जैसे उन्होंने एक दूसरी ही चीज़ देखी। मृत्यु को आज जैसे उन लोगों ने बहुत पास से देखा।

बतसिया आकाश को विदीर्ण कर चिल्ला कर रोने लगी, जैसे कि स्त्रियाँ ही रो सकती हैं। सव्यसाची ने जो उसका रोना सुना, तो उसके माथे पर बल आ गये। वैद्यनाथ ने अपने जीवन को नीरव सेवा में बिता दिया, मरा भी चुप-चाप नीरव शहीद के रूप में, इसलिए उसकी मृत्यु के साथ इस रोने का कोई सामंजस्य सव्यसाची को ज्ञात नहीं हुआ। उसे ऐसा जान पड़ा, जैसे कि उसकी शहादत में इस रोने से कुछ बट्टा आ गया। पर जितना ही वह यह बात सोचने लगा, उतना ही उसके अन्दर से एक प्रबल क्रन्दन जोर मार कर ऊपर आने लगा। वैद्यनाथ का शव इन सबों के प्रति उदासीन एक विराट वास्तविकता की तरह पड़ा रहा, जिसे कोई पागल कल्पना भी अस्वीकार नहीं सकती थी।

गांव वालों की सहायता से इसी आम के बाग़ के एक किनारे आम और बबूल की लकड़ी से चिता की रचना हुई। किसी ने मन्त्र नहीं पढ़ा, किसी ने उसके परलोक की फ़िक्र नहीं की, यों ही शव को चिता पर चढ़ा दिया गया।

चिता पहले चुपचाप और फिर जोरों के साथ चिड़चिड़ पिड़पिड़ शब्द कर जलने लगी।

चार में से बाकी तीन मित्र चिता के पास ही एक जगह मिट्टी पर बैठे रहे। मिट्टी ही आज उनके लिए उपयुक्त आसन था। कोई भी बात नहीं कर रहा था। कीड़ों की आवाज़ को डुबाकर चिता की चिड़चिड़ पिड़पिड़ पटपटास

आवाज़ सुनाई पड़ रही थी। जैसे एक जगत का भूडोल से अन्त हो रहा था। एक आदमी एक जगत ही तो होता है।

सभी चुप थे, बतसिया तक।

पर वे जितने चुप थे, उनके हृदय में उतना ही कोलाहल मचा हुआ था। सभी के सामने एक साथ सैकड़ों समस्याएँ आ रही थीं। जीवन को देखकर लोग जीवन की समस्याओं को कम सोचते हैं, पर मृत्यु को देखते ही जीवन की बात अवश्य याद आ जाती है। फिर तो उसकी हज़ारों समस्याएँ हमको समाधान के लिए व्याकुल कर देती हैं।

पूर्व की ओर से एक बादल लुढ़कता इधर ही आ रहा था। वह रस से भरा हुआ था। आकर वह उस आम के बाग़ पर खड़ा हो गया। चिता उसी प्रकार शब्द कर जल रही थी। बीच-बीच में चिता से एक लकड़ी फिसल कर नीचे गिर रही थी।

नन्हीं-नन्हीं बूंदें पड़ने लगीं। सव्यसाची और अनुरूप ने एक बार अधजली चिता की ओर, और फिर घनघटा से गिरे हुए भौंह ताने हुए से आकाश की ओर सप्रश्न दृष्टि से देखा। स्वल्पभाषी डाक्टर चन्द्रशेखर मानों इन्हीं के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहने लगा—'नहीं, यह चिता कभी बुझ नहीं सकती। आँधी पानी की क्या मजाल है कि इस चिता को बुझा सके। जब तक वैद्यनाथ जीवित थे, तब तक उनके हृदय में निरन्तर एक चिता जलती रही, कभी तो वह राख के नीचे दबी पड़ी सुलगती रही, कभी वह क्षितिज तक लपटें फैला कर अग्निकांड की सृष्टि करती रही। यह चिता उसी की परम्परा है। यह बुझ नहीं सकती। जहाँ भी इस शहीद की चिता की एक चिनगारी भी गिरेगी, वहाँ आग लग जायगी और वह तब तक जलती रहेगी, जब तक विश्व का सब अन्याय, ज्यादती, वैषम्य उसके द्वारा सुलगाई हुई विराट चिता में जल न जाय।'

फैलते हुए अन्धकार को दृष्टि से विद्ध करते हुए डाक्टर कहने लगे—'मैं स्पष्ट ही देख रहा हूँ कि इन सब दधीचियों की चिताओं के बीच में से एक नवयौवन प्राप्त और जाग्रत भारत उठ रहा है, जो कर्म में महान, आत्मस्थ तथा आत्मचालित ज्ञान से उद्दीप्त और जीवन से परिपूर्ण होगा। कोई शक, कोई हूण, कोई मुग़ल उस भारत का बाल बाँका न कर सकेगा। वह भारत अपनी शक्ति से अपने त्राण की साधना करेगा।'

थोड़ा-थोड़ा पानी बरस रहा था, पर चिता मानों उसकी अवज्ञा कर

और भी जोर के साथ चिड़चिड़ कर जल रही थी। मिट्टी की एक महीन सोंधी गन्ध से सारी दिशाओं के आँचल भर गये थे। चिता के सामने बैठकर कुमारी मिट्टी की सोंधी गन्ध लेते-लेते नवजाग्रत भारत का स्वप्न जैसे प्रत्यक्ष होता जाता था। चिता की लपलपाती हुई शिखाएँ बीच में ऊपर हो उठ जाती थीं, आम के पेड़ उससे चमक उठते थे।

सव्यसाची वैद्यनाथ को बहुत बचपन से जानता था। भूतकाल में जो साथी राजनैतिक कार्य में उसके साथ सम्बद्ध थे, उनमें से वैद्यनाथ के अलावा बाकी सबसे उसका सम्बन्ध-विच्छेद हो चुका था। एक वैद्यनाथ ही उसके भूत-काल के साथ एक कड़ी की तरह मौजूद था, पर वह भी आज चल बसा। सव्य-साची अपने को असहाय, एकाकी, परित्यक्त पा रहा था। मानो उसका कोई नहीं। सारा विश्व उसके निकट एक शून्य स्थान प्रतीत होता था, इतना शून्य स्थान, जिसकी शून्यता उसे अखर रही थी। वह अपने से पूछ रहा था कि सुजाता और धर्मशीला उसकी कौन हैं। वह खुद ही कह रहा था...कोई नहीं। यही वैद्यनाथ और इस प्रकार के लोग उसके अपने हैं, क्योंकि वे उसकी आत्मा के पास हैं, दूसरे नहीं।

इसी प्रकार ये लोग सोचते जाते थे, और उधर चिता की आग धीरे-धीरे एक मनुष्य को नहीं, मनुष्य के अवशिष्ट को नहीं, युगान्तकारी महान विचारों के भंगुर आधार को जला कर खाक कर रही थी, क्योंकि वैद्यनाथ का असली परिचय यही था, न कि और कुछ।

:: २४ ::

सव्यसाची लौट आया है, जान कर लक्सा वाले मकान के सभी लोग फाटक पर आ गये। सव्यसाची गाड़ी से समान उतरवा रहा था। उसने लोगों का यथायोग्य सम्भाषण किया।

सव्यसाची बहुत दुबला हो गया था। धर्मशीला यही कह रही थी। सव्यसाची ने कहा—'मैं तो खैर दुबला ही हुआ, हम में से एक तो चल बसा...'

धर्मशीला ने यह बात पहले सुनी थी! वे इस बात को अभी उठाना नहीं चाहती थीं, यद्यपि वैद्यनाथ की मृत्यु के विषय में वे बहुत कुछ जानना चाहती थीं। उन्होंने सोहनसिंह से कहा—'देख कर सब चीज़ उतरवा लो' और सव्यसाची से कहा—'चलो मकान के भीतर', पर सव्यसाची ने पीछे न चल कर पीछे खड़ी बग्घी की तरफ मुँह करके पुकारा—बतसिया! बतसिया!

गाड़ी का दरवाजा खोल कर उतरती हुई एक मैली धोती पहिने

रूपवती तरुणी आकर सव्यसाची के पास खड़ी हो गई। सभी ने उसकी ओर आश्चर्य चकित दृष्टि से देखा। सुजाता के माथे पर जरा सा बल आ गया। सोहनसिंह का देशी कुत्ता जो अभी तक सव्यसाची को देख कर स्वागत में जोर से पूँछ हिला रहा था, क्योंकि सव्यसाची उसका भी मित्र था, और सव्यसाची के पैर चाटने की प्रबल इच्छा प्रकट कर रहा था, अब बतसिया को देख कर कुछ हट गया और गुर्राने लगा। बतसिया कौतुकदीप्त नयनों से उसके उद्धत आचरण को देख रही थी।

कुछ हिचकिचाते हुए सव्यसाची ने बतसिया की सारी कहानी धर्मशीला को बता दी, और उपसंहार के रूप में कहा—'ले आने को तो मैं इसे ले आया, पर इसे कहाँ रखूँ, क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता। न हो तो किसी अनाथाश्रम में ही पहुँचा देंगे!'

सव्यसाची यह कहने की हिम्मत नहीं करता था कि बतसिया को धर्मशीला अपने घर पर रख लें।

धर्मशीला ने कहा—'यह कौन सी बड़ी बात है? अभी तो यहीं रहे, अगर उसे पसन्द आवे तो हमेशा रहेगी, नहीं तो बाद को कोई ढंग किया जायगा।'

ऐसे समय एक घटना हुई जिससे सभी आश्चर्य में हो गये। बतसिया तीर की तरह कुत्ते पर लपकी, और कुत्ता यह समझ पाने के पहिले कि मामला क्या है एक हाथ से उसका सिर पकड़ कर दूसरे हाथ से मुँह पकड़ लिया। कुत्ता बिल्ली के द्वारा पकड़े हुए चूहे की तरह भीतर ही भीतर कीं-कीं करने लगा, और पूँछ को लाँग की तरह कर आँखें बन्द कर लीं।

कोई दूसरा समय होता तो सव्यसाची इस बात पर बहुत मजे लेता, पर इतने आदमियों के सन्मुख उसके संरक्षण में आई हुई बतसिया ने ऐसा आचरण किया, इससे वह बहुत लज्जित हुआ। विशेषकर कुत्ता सोहनसिंह का लाड़ला था इससे उसे और भी दुःख मालूम हुआ।

धर्मशीला ने सव्यसाची को इस मनोकष्ट से छुटकारा दिया। वह आगे बढ़ कर गई, और बतसिया के हाथ को पकड़ लिया। कुत्ता ज्योंही छूटा वह बदला लेने की बात भूल कर भाग निकला। आश्चर्य की बात यह है कि सोहनसिंह भी इस घटना से नाराज़ नहीं हुआ, उसने कहा—'इस पाजी से इतना कहा कि चुप रह, पर गुर्राता ही गया, अब मजा मालूम हुआ, बूढ़ा दिल खोल कर मुस्कराने लगा।

सुजाता ने कहा—'यह तो बिल्कुल वीरांगना है, राह पड़े आपको कोई बुरी चीज़ नहीं मिली।

सव्यसाची ने सोचा कि सुजाता की बात में व्यंग कहीं जरूर है, पर एक मुहूर्त्त के लिए ही।

अब तक अशोक चुप था, उसने सव्यसाची से पूछा—'तो यह सांप भी पकड़ती होगी।'

सव्यसाची ने हँस कर कहा—'हो भी सकता है, जानती होगी, पूछ कर देख सकते हो।'

धर्मशीला ने कहा—'पूछ कर देखो तो कोई बात नहीं, पर कहीं सीखने न लगना।'

सब मकान के अन्दर चले गये।

बतसिया के सम्बन्ध में यह तय हुआ कि वह प्रेमा के साथ रहेगी। प्रेमा उसे पाकर सुखी ही हुई। बतसिया दिन में कई बार सव्यसाची के कमरे में जाकर उससे मिल आती थी। यद्यपि उसके आने-जाने से सव्यसाची की लिखाई-पढ़ाई में बाधा होती थी पर वह उसे मातृ-पितृ हीन जान कर कुछ नहीं कहता था। इसके अतिरिक्त बतसिया पर उसका कुछ सहज स्नेह था। उसे यह देख कर खुशी हुई कि बतसिया यहाँ पर सबकी प्रियपात्री हो गई है। धर्मशीला ने उसे साड़ी आदि पहना कर ऐसा कर दिया था कि वह कोई गरीब लड़की है, मातृ-पितृ हीन और परित्यक्त है यह कोई नहीं जान सकता था। अनुरूप और चन्द्र-शेखर उसे बीच-बीच में देख जाते थे, और उसके लिए तरह-तरह के उपहार द्रव्य ले आते थे। बतसिया सब चीज ले जाकर प्रेमा के हवाले कर देती थी।

बतसिया कुछ दिनों में ही शहर की लड़कियों की तरह हो गई।

सुजाता बतसिया को पसन्द करती थी, पर वह जो सव्यसाची के पास जाकर उसकी लिखाई-पढ़ाई में बाधा पहुँचाती थी, इस बात को वह पसन्द नहीं करती थी। उसे यह एक हद तक ज्यादती ही मालूम देती थी। वह समझ गई थी कि एक न एक दिन बतसिया की शादी होगी ही, अवश्य ही कोई राजकुमार उसका वर नहीं होगा, इसलिए उसे चाहिए कि वह उस दिन के लिए तैयारी करे।

एक दिन सुजाता के दिमाग में अकस्मात् एक ख्याल आया। वह जल्दी से माँ के कमरे में गई और बोली—'एक बात याद आ रही है।'

'क्या?'

'यदि प्रेमा के लड़के जोगिन्दर के साथ बतसिया की शादी कराई जाय तो कैसी रहे ?'

'यह कैसे होगा ? एक सिक्ख एक चमार ।'

'उससे क्या ? चमार से सिक्ख होते कितनी देर लगती है ? सिक्ख लोग तो इससे खुश ही होंगे । इसके अलावा प्रेमा को इससे अच्छी बहू कहाँ मिल जाती है ?'

प्रेमा के निकट प्रस्ताव किया गया । सोहनसिंह ने इस मामले में राय दी, कहा—'यह तो अच्छी बात है !'

इसलिये प्रेमा की भी राय हो गई ।

सव्यसाची यह सुन कर गंभीर हो गया, बोला—'जल्दी किस बात की है, पहले वह अपनी मातृभाषा हिन्दी तो सीख ले, इसके अलावा सिक्ख होना...'

धर्मशीला ने कहा—'क्यों ?'

'एक अन्धेपन से दूसरे अन्धेपन में जाना ।'

अब तक सव्यसाची की आपत्ति नहीं मानी गई । सव्यसाची ने भी सोचा कि चलो सिर से बोझ उतरा ।

बतसिया की राय किसी ने पूछी ही नहीं !.........

इसलिए एक दिन बाजा गाजा के साथ ग्रन्थी ने आकर जोगिन्दर और बतसिया की शादी करा दी ।

अनुरूप, चन्द्रशेखर ने उपयुक्त उपहार दिये । धर्मशीला ने उनको एक छोटा-सा मकान दिया । सुजाता ने एक साड़ी दी, सव्यसाची ने भी कुछ दिया ।

बतसिया की शादी के दिन सव्यसाची जिस समय दरवाज़ा बन्द कर रात को सोने गया, तो उसकी आँखों से टपटप दो आँसू उसके सीने पर गिरे । आज वैद्यनाथ की बहुत याद आ रही थी । उसे अपने मित्र की याद बड़ी देर तक सताती रही । वह बड़ी देर तक इधर-उधर की बातें सोचता रहा, फिर सो गया ।

सुजाता बहुत दिनों बाद निश्चिन्तता की नींद सोई । बड़ी देर तक पुस्तक हाथ में लेकर बैठे-बैठे सुजाता को जब कोई बात नहीं सूझी, तो उसने कहा—'बतसिया के सिक्ख हो जाने में आपको क्या उज्र था, समझ नहीं सकी ? क्या आप अस्वीकार करते हैं कि सिक्ख एक साहसी जाति है और सिक्खों का इतिहास वीरता से पूर्ण है ?'

सव्यसाची ने कहा—'सिक्खों के प्रति मेरा कोई विशेष विरोध नहीं है, मैं तो सभी धर्मों को बौद्धिक शोषण का प्रतीक समझता हूँ । धर्म मनुष्य को ऐसी

बहुत-सी चीजों के साथ सामंजस्ययुक्त तथा मित्रतापूर्ण कर देता है, जिनको सहन करने पर भी मनुष्य हीन हो जाता है। धर्म केवल गैलिलियो और कोपरनिकस के युग में ही प्रतिक्रियावादी शक्ति थी। ऐसी बात नहीं। आज भी उसने अपनी इस विशेषता को कायम रखा है और सिक्खों की बहादुरी की जो बात आप कह रही हैं......'

सुजाता ने कहा—'तो आप यतसिया का मुसलमान होना पसन्द करते हैं? यह मैं सिर्फ आपकी राय जानने के लिए पूछ रही हूँ'—अन्तिम शब्दों को सुजाता ने ऐसे लहजे में कहा जिससे वाक्य नरम पड़ गया।

'बिल्कुल नहीं। बल्कि और भी खराब होता। इस्लाम धर्म दृढ़ता के साथ सीमित धर्म है, इसमें प्रत्येक बात की परिभाषा कर यह बता दिया गया है कि यों और यों नहीं। उसमें कहीं भी अस्पृश्यता नहीं है। प्रत्येक विषय में एक पद्धति है। एक मुसलमान के लिए मोहम्मद पुरुषोत्तम हैं, इसमें न तो कोई सन्देह कर सकता है, और न कोई मीन-मेख निकाल सकता है। इसमें कोई विकल्प नहीं है याने चुनने की स्वतन्त्रता नहीं है, जैसा हिन्दुओं में कुछ हद तक है। इसके अतिरिक्त मुसलमानों का कुरान हिन्दुओं के वेद की तरह अनिर्दिष्ट, अस्पष्ट, अपरिमार्जित, अगम्य नहीं है, पद्धति कालक्रम से कुरान की बहुत सी व्याख्याएँ और टिप्पणिएँ हैं। इसके अतिरिक्त मुसलमानों के जितने भी पवित्र व्यक्ति हैं, वे सब के सब अरब में पैदा हुए थे और उनका सारा पुराण अरब में ही घटित हुआ। इसलिए मुसलमान लोग अरब की ओर बहुत देखते रहते हैं, यह एक बहुत बड़ी आपत्ति है। अरब में कोई अच्छी चीज हो तो उसे ग्रहण करना चाहिए, ऐसी धर्मान्धता के कारण अपने देश को दूसरे अन्य देशों से छोटा करके देखना एक हीन-मान्यता की भावना है, इसके शिकार होने के विरुद्ध प्रबल संग्राम करना चाहिये।

सुजाता इन दिनों बहुत समय सव्यसाची के साथ ही काटती थी। बहुत समय वह तर्क करती थी। उसने कहा—'जानते हैं मुसलमान लोग क्या कहते हैं? वे कहते हैं कि हिन्दुओं के ही संग दोष के कारण वे केवल भारतवर्ष में ही गुलाम हुए हैं।'

भौंहों को कुञ्चित करते हुए सव्यसाची ने कहा—'हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है, पर इस्लाम एक आक्रमणात्मक धर्म है, इसमें सन्देह नहीं। इस आक्रमणात्मकता में बहुत-सी अच्छी चीजें हैं, इसमें सन्देह नहीं। जीवन में विजयी होने के बहुत से उपादान इसमें हैं। भारतवासियों में यह गुण

न होने के कारण भारत को विदेश से किये हुए हमलों की बाढ़ के सामने बराबर पीछे हटना पड़ा है।"

सव्यसाची इस समय यह बात कह रहा है, यह देखकर सुजाता ने तर्क बढ़ाने के लिए कहा—"आप मुसलमानों की जिस आक्रमणात्मकता को सराह रहे हैं, उसके सम्बन्ध में यह द्रष्टव्य है कि भारत का बौद्ध धर्म बिल्कुल आक्रमणात्मक नहीं था, फिर भी वह जन्मभूमि के बाहर इस्लाम से कहीं अधिक सफल रहा।"

इस प्रकार तर्क-वितर्क में सुजाता का बहुत-सा समय जाता था। सव्यसाची घंटों व्याख्यान-सा देता रहता, सुजाता अवाक् होकर सुनती जाती, बीच-बीच में एक-आध बात कर देती। बात करते-करते सव्यसाची को कभी-कभी ऐसा ख्याल होता कि सुजाता उसकी बात नहीं सुन रही है, वह केवल एक व्यथा और तृष्णा लेकर उसके चेहरे को देख रही है। सव्यसाची अकस्मात् उसकी तरफ ताक कर लाल पड़ जाता, कुछ देर के लिए ठहर जाता, फिर दूसरी तरफ ताक कर अपना व्याख्यान शुरू करता।

समय-समय पर इन आलोचनाओं में धर्मशीला और अशोक भी भाग लेते थे, कभी-कभी अशोक कुमार आदि बाहरी लोग भी आ जाते थे।

धीरे-धीरे लोगों ने यह मान लिया कि सव्यसाची और सुजाता का विवाह होगा, पर कब होगा यह किसी को नहीं मालूम था। सुजाता ने भी मन ही मन इस बात को स्वीकार कर लिया था, बल्कि सच बात तो यह है कि वह इस बात को अन्तरतम हृदय से चाह रही थी, और उस शुभ घड़ी की प्रतीक्षा कर रही थी जब सव्यसाची मुँह खोल कर बात कहेगा और विवाह को सम्भव करेगा। कितने ही बार वह तृषार्त्त होकर सव्यसाची के मुँह की ओर देखती कि शायद वह वांछित बात आ रही है, पर वह बात नहीं आती थीं। सुजाता बात को उस तरफ ले जाने की कोशिश करती थी, पर सव्यसाची चाहे जान कर करता रहा हो या अजान में इस दिशा की ओर फटका ही नहीं, बगल से रास्ता काट कर निकल जाता था। सुजाता उसके मुँह की तरफ देख कर यह समझने की चेष्टा करती थी कि क्यों वह इस प्रकार भागा भागा फिर रहा है, पर समझ नहीं पाती। कुछ देर तक सव्यसाची के चेहरे की ओर ताक कर वह आश्वस्त हो जाती, यह व्यक्ति जान बूझ कर किसी की अवज्ञा नहीं कर सकता।

रही सव्यसाची के मन की बात, सो उसे यह नहीं मालूम था कि लोग उसके विवाह के सम्बन्ध में इस प्रकार कह रहे हैं, उसने उस तरफ सोचा भी नहीं था।

: २५ :

'सामाजिक विप्लवकारी संघ' का असाधारण अधिवेशन हो रहा था। सब सदस्य, यहाँ तक कि अशोक भी उपस्थित था। आशीष कुमार बीच में विराजमान थे। सुजाता दर्शकों के बीच में थी। वह अन्त तक यह तय नहीं कर पाई कि बनारस में रहेगी या अन्यत्र। इसलिए वह इस संघ की नियमित सदस्या नहीं बनी थी, पर वह तरह-तरह से संघ की सहायता करती थी और भविष्य में भी सहायता देते रहने का वचन दिया था।

संघ के सामने आज एक महत्त्वपूर्ण मामले की आलोचना होने वाली थी और एक जरूरी फैसला किया जाने वाला था, इसलिए सभी सदस्य सावधान तथा कुछ हद तक उत्तेजित थे।

जब सब सदस्य उपस्थित हो गये, तो आशीष कुमार ने एक बार कलाई घड़ी की तरफ देखा और एक अपरिचित व्यक्ति से कहा कि वह अपना वक्तव्य कहे। वह अपरिचित व्यक्ति कुछ हिचकिचाने के बाद खड़ा हो गया और लोगों के मुँह की तरफ ताकने लगा।

आशीष कुमार ने कहा—'बताइये!'

सभी लोग उसके मुँह की तरफ ताक रहे थे। वह भला आदमी फिर भी कुछ नहीं बोला, वह शायद समझ ही नहीं पा रहा था कि कहाँ से शुरू करे। उसकी आँखें और चेहरा लाल हो गया था।

आशीष कुमार ने कहा—'अच्छा, मैं ही कहता हूँ।'

सब उसके मुँह की तरफ ताकने लगे। अपरिचित व्यक्ति छुटकारा पा गया और धम्म से वहीं पर बैठ गया।

आशीष कुमार ने कहा—'मामला यह है कि इन महोदय की जानी हुई एक सोलह सत्रह वर्ष की लड़की है, जिसकी शादी नहीं हो रही है, इसलिए उसका एकमात्र अभिभावक उसका चचा...।'

अपरिचित व्यक्ति ने सुधारते हुए कहा—'चचा नहीं मामा।'

'हाँ, उसके मामा उसकी शादी एक ५८ साल के धनी व्यक्ति से कर रहे हैं। अब प्रश्न यह है कि हम लोगों का संघ इस सम्बन्ध में क्या कर सकता है? करना तो चाहिए इस विषय में। मैं समझता हूँ सभी सहमत हैं।'

किसी ने कुछ न कहा।

द्वारका पांडे ने उस अपरिचित व्यक्ति से पूछा—'लड़की इस शादी से राजी है कि नहीं ?'

सव्यसाची ने कहा—'इस प्रकार के असम विवाह में कौन लड़की राज़ी हो सकती है ?'

द्वारका पांडे ज़रा नाराज़ होकर बोले—'यह बात नहीं'—फिर उस अपरिचित की ओर ताककर बोला—'क्या लड़की इस शादी से राज़ी नहीं है ?'

अपरिचित ने कहा—'अवश्य ही नहीं ?'

'उसने क्या यह बात किसी से कही और ज़रूरत होने पर अदालत में ऐसा कह सकेगी ?'

अपरिचित हिचकिचाते हुए बोला—'इतने के लिए शायद वह राजी न हो। हिन्दू घर की लड़की है, मामा को बाप के समान समझती है और मामा पर उसी अनुपात से भक्ति भी रखती है। मामा भी लड़की को प्यार करता है, बड़ी मुसीबत में तभी...'

दर्शक और सदस्यों में से कुछ लोग मामा के प्यार के सम्बन्ध में एक अस्फुट ध्वनि कर सन्देह व्यक्त करने लगे। दो-एक वक्ता की तरफ क्रुद्ध होकर देखने लगे। अपरिचित व्यक्ति झेंप कर चुप हो गया।

द्वारका पांडे धीरे से दाहिना हाथ पटक कर बोला—'ऐसी हालत में कानूनी रूप से हम इस मामले में कुछ नहीं कह सकते। कानून उनकी तरफ है।'

अनुरूप ने कहा—'क्यों ? कर क्यों नहीं सकते ? हम लोग घर से लेकर कन्या के बाप तक सब को समझा सकते हैं, शायद उससे उनका सुप्त विवेक जाग उठे, तब तो काम हो जायगा...'

सदस्यों ने नाक चढ़ा ली, सव्यसाची ने कहा—'ओह ! जैसे प्रस्तावित उपाय, उपाय ही नहीं था। आशीष कुमार ने सभापति के कर्तव्य को अनिच्छा के साथ पूर्ण स्पष्ट करते हुए कहा—'तो निश्चय ही रहा कि वर तथा कन्या के पिता के पास संघ की तरफ से एक प्रतिनिधि मंडल भेजा जाय।

'पर उससे कोई लाभ नहीं होगा।' सव्यसाची ने यह बात ऐसे कही मानो सभापति के वाक्य को पूरा करते हुए ऐसा कहा हो।

आशीष कुमार ने कहा—'मैं भी इस बात को जानता हूँ।'

अनुरूप ने निराशा के साथ कहा—'इसके अलावा और क्या कर सकता हूँ ?' उसने चारों ओर देखा।

सव्यसाची पर जैसे ज़िद चढ़ गई थी, उसने कहा—'मान लीजिए, यदि समझा बुझा कर कोई फायदा न हो ? यदि दुनिया के सब तर्क उनके विरुद्ध होते हुए भी और सारी मानवता द्वारा विरोध करने पर भी वे इस अपराध को करना चाहें तो उस हालत में क्या होगा ?'

सब एक दूसरे का मुँह ताकने लगे।

द्वारका पांडे ने कहा—'तो क्या, तो कुछ भी नहीं। हम उस हालत में कुछ भी नहीं कर सकते।'

सव्यसाची ने कहा—'वाह ? एक इतना बड़ा अन्याय हमारे सामने हो, और हम कुछ भी नहीं कर सकते। सब तरह से उसका प्रतिवाद करना चाहिये, उसमें बाधा देनी चाहिए।'

डाक्टर चन्द्रशेखर यह नहीं समझ पाये कि सव्यसाची का मतलब क्या है, फिर वह अपना स्वाभाविक संग्रामशीलता के कारण बोल उठा—'निश्चय ही सब तरह से इसका प्रतिवाद करना चाहिए।

सव्यसाची कहने लगा—'एक काम को खराब जान कर भी जो लोग उसका विरोध करने में हिचकते हैं कि वह काम प्रचलित कानून के द्वारा अनुमोदित है, या उसका विरोध इसलिए नहीं करते कि उसका अर्थ यह होगा कि कानून को अपने हाथ में ले लेना है, वे और कुछ भी हों साहसी नहीं हैं। क्रांतिकारी तो खैर हैं ही नहीं क्योंकि वे तर्क के अन्तिम परिणाम तक जाने से हिचकते हैं। मैं प्रस्ताव पास करता हूँ कि किसी भी प्रकार से यह विवाह तोड़ दिया जाय, या इसे रोक दिया जाय।'

द्वारका पांडे ने कहा—'जिस किसी प्रकार से ? इसका क्या अर्थ है ?'

'इसके माने यह हैं कि जिस किसी प्रकार से, सत्याग्रह करके या बल प्रयोग कर जैसे भी हो सके'—सव्यसाची ने कहा।

किसी ने इस बात की आशा नहीं की थी। सब यही सोच रहे थे कि सव्यसाची यह कहेगा कि वर तथा कन्या के अभिभावक के नाम से पुस्तिका छाप दी जाय, उन्हें बदनाम किया जाय या किसी और उपाय से चन्दा जमा कर कन्या के अभिभावक की मदद की जाय ताकि शादी टूट जाय। उन्होंने इतनी उम्मीद नहीं की थी। इस कारण वे आश्चर्य में पड़ गये। पर जितना ही वे आश्चर्य में पड़े, उतना ही वे जोश में आते गये। यौवन और तारुण्य के लिए सबसे बड़ा अभिशाप असमर्थता है जो असहाय होने की अनुभूति है। यह अगर

न रहे तो रास्ता चाहे जितना दुर्गम हो और जितना भी भयङ्कर हो, यौवन न तो उससे डरता है और न कुछ कुंठित ही होता है ।

आशीष कुमार अपनी जगह पर हिल कर तथा सावधान होकर बैठ गये, मानो वे अब तक सो रहे थे । कौतूहल तथा जोश से उनका सारा चेहरा तमतमाने लगा ।

चन्द्रशेखर कह उठा—'और मैं इस प्रस्ताव का हार्दिक समर्थन करता हूँ । यह मामला उतना भयङ्कर है कि इसके लिए एक-आध जान चली जाय, तो कोई बात नहीं । मैं इस घटना की ही बात नहीं कह रहा हूँ, इसके पीछे जो पैशाचिक मनोवृत्ति और गतानुगतिका है उसका किसी भी प्रकार विरोध होना चाहिए ।'

द्वारका पांडे ने कहा—'पर इसके पहले एक बार समझा बुझा लेना चाहिए । सामाजिक क्षेत्र में रातों रात क्रान्ति नहीं हो सकती । किसी जाति की विचारधारा (जिसका सबसे परिष्कृत रूप विज्ञान है) अभिज्ञता और तर्क इन दो पहियों के बल चलती है, इसलिए वह चाहे जितना आगे बढ़े बढ़ सकती है, पर समाज की बात और है, वह छाती के बल रेंग कर इञ्च-इञ्च करके आगे बढ़ता है ।.....'

सव्यसाची ने मन ही मन स्वीकार किया कि यह रूपक इस समय के समाज पर लागू है, पर वह इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं था कि वह इस कारण मामूली तरह समझा-बुझा कर चुप बैठ जाय । हाँ, वह इस बात पर राज़ी था कि पहले दूसरे उपायों को काम में लगाया जाय ।

इसके अतिरिक्त यद्यपि उसने झक में आकर सत्याग्रह का प्रस्ताव रखा था, पर उसने सोच कर देखा कि वह इतनी जल्दी इन बातों और इन बातों के परिणाम के लिए तैयार नहीं था । इसलिए जब संघ के अधिवेशन में पहिले प्रतिनिधि मंडल भेजने का प्रस्ताव आया, तो वह उससे नाराज़ नहीं हुआ ।

इसके अतिरिक्त शादी में अभी देर थी । संघ की तरफ से कन्या के अभिभावक और वर पक्ष को समझाने के लिए आशीष कुमार, सव्यसाची तथा डाक्टर चन्द्रशेखर नियुक्त हुए ।

: २६ :

काशी गलियों का शहर है । गलियों को लेकर ही काशी है । बड़ी-बड़ी सड़कें काशी की विशेषताएँ नहीं हैं, बड़ी-बड़ी सड़कों के पास नहीं बल्कि असंख्य गलियों से युक्त घनी आबादी-युक्त स्थान में ही काशी के हृत्-पिण्ड का स्पन्दन

सुनाई पड़ेगा। न मालूम यहाँ के लोग इन गलियों के गोरख-धन्धे से होकर अपना रास्ता कैसे पहचान लेते हैं।

सन्ध्या के कुछ पहले तीन व्यक्ति गलियों को पार करते हुए एक मकान के सामने आकर खड़े हो गए। यह मकान देखने में अच्छा नहीं था। ऐसा ज्ञात होता था कि यह ईंट-काठ-पत्थरों का अनियमित समन्वय है। कला का कोई प्रयास भी नहीं है।

सव्यसाची ने कहा—'यही मकान है...'

नम्बर पढ़ते हुए आशीष कुमार ने कहा—'हाँ, यही है, नम्बर तो वही है।'

सव्यसाची दरवाज़ा खटखटाने लगा, और साथ ही साथ भवानन्द, भवानन्द जी कह कर पुकारने लगा।

बड़ी देर तक चिल्ला-चिल्ली के बाद एक नौकर ने आकर किवाड़ खोला—'कौन है! आप लोग किसकी तलाश कर रहे हैं?

'क्या यह भवानन्द जी का मकान है?' आशीष कुमार ने एक ही सांस में पूछा।

'हाँ'

'हम उनसे मिलना चाहते हैं।'

'आप लोगों का परिचय क्या बतायें?'

'कहो कि तीन भले आदमी उनसे मिलना चाहते हैं।'

नौकर ने किवाड़ बन्द कर दिये, और कुछ देर बाद लौट कर कहा—'चलिए।'

तीनों उसके पीछे-पीछे चलने लगे। दो मंजिल के एक कमरे में एक अधेड़ उम्र के मोटे-ताज़े आदमी के सामने उन्हें बैठाया गया।

भवानन्द काइयाँ आदमी था। उसने बहुत रुपया पैदा किया। रुपया पैदा करने में वह इतना मस्त था कि पैंतीस साल तक उसे शादी करने की सुध ही नहीं रही। उसकी पहली शादी पैंतीस साल की वय में हुई थी, वह स्त्री कब की मर चुकी थी। उस स्त्री से कुछ लड़के बच्चे हैं। पहले लड़के की उम्र इस समय इक्कीस साल है। वह तथा उसके भाई और बहिनें सब कलकत्ते में रहती हैं। भवानन्द का कारोबार करीब-करीब इस समय पूरे ज़ोर पर है। यह कारोबार करीब-करीब अपने आप चलता है, उसमें बीच-बीच में उत्तेजना देने के लिए भवानन्द के मस्तिष्क की ज़रूरत होती है, वह अब पत्नी-वियोग के तीन

वर्ष बाद विवाह की आवश्यकता का अनुभव कर रहा है। स्वाभाविक रूप से उस उम्र में शादी में वह शोरगुल पसन्द नहीं करता, रिश्तेदारों को असली बात बिना बताये ही वह काशीवास का नाम लेकर अपने काशी वाले मकान में टिका है। जब शादी हो जायगी वह घर वालों को खबर करेगा। देखा जायगा, कोई जल्दी नहीं।

भवानन्द ने कुछ भले आदमियों को सामने देख कर फर्शी के नल को मुँह से निकाल लिया और बोला—'तशरीफ रखिये, आप लोग किसे खोज रहे हैं ?' भवानन्द ने आँखें फाड़ कर विस्मय दिखलाया।

आशीष कुमार ने भूमिका के तौर पर कहा—'हम स्थानीय 'सामाजिक विप्लवकारी संघ' के सदस्य हैं...'

भवानन्द के पास कलकत्ते में बहुत से संघ तथा समिति के लोग चन्दे के लिए आया करते थे, इसलिए इसे आश्चर्य नहीं हुआ। वह अपनी श्रेष्ठता की द्योतक हँसी हँसा, फिर तम्बाकू पीने लगा। फर्शी से एक आत्म तृप्तपूर्ण दुलार भरा शब्द निकलने लगा और उसके मुँह से तम्बाकू का सुगन्धित सुनहली धुआँ निकलने लगा।

आशीष कुमार की यह बात समझ में नहीं आ रही थी कि विषय का कैसे आरम्भ करे, इसलिए सव्यसाची ने कहा—'हम लोगों ने सुना है कि आप विवाह करने जा रहे हैं।'

भवानन्द ने ज़रा भौहों को तान लिया और बोला—'ऐं' इसके बाद आँखों को उलटते हुए ज़रा नाक चढ़ा कर ऊपर की तरफ ताकते हुए कहा—'सब परमेश्वर की इच्छा है।'

सव्यसाची ने वज्र की आकस्मिकता के साथ कहा—'हम इस विवाह को अनुचित समझते हैं।'

मुरादाबादी फर्शी का ज़रीदार नल भवानन्द के हाथ से गिर पड़ा। वह तीनों मित्रों की तरफ इस प्रकार ताकने लगा मानो उसने भूत देखा हो।

'हम इस विवाह को अनुचित समझते हैं क्योंकि यह असमान विवाह है। आप समाज की एक कमज़ोरी या मूर्खता का फायदा उठा कर अपनी पोती की उम्र की एक लड़की के साथ शादी करना चाहते हैं, यह अन्याय है। हम आपकी शादी का विरोध नहीं करते, आप खुशी से अपने लायक किसी स्त्री से विवाह करें, पर यह तो बिल्कुल अन्याय है।'

भवानन्द मन ही मन जरा क्रुद्ध हुआ, पर व्यापारी जीवन में वह कटु

बातों को सुनने का अभ्यस्त था, इसलिए अपने क्रोध को पीते हुए उसने कहा—'आह क्या मैं क्षुद्र जीव कुछ कर सकता हूँ ? सब उन्हीं की इच्छा है, उनकी इच्छा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता, उनकी इच्छा न होती तो मेरी लक्ष्मी-सी स्त्री का देहान्त ही क्यों होता ?' वह फिर दीवार की ओर ताक कर तम्बाकू पीने लगा।

डाक्टर चन्द्रशेखर बोले—'आप यदि अपने को उस लड़की के स्थान में रख कर सोचें तो यह कितना बड़ा अन्याय होने जा रहा है, यह आपकी समझ में आ जायगा। आप उस हालत में अवश्य ही इस शादी को पसन्द नहीं करते।'

भवानन्द ने नाक से बोलते हुए कहा—'कुछ नहीं, कुछ नहीं, मेरे पसन्द करने न करने से कुछ नहीं आता जाता, उन्हीं की इच्छा पूर्ण होगी। फिर रुक कर अनुप्राणित-सा कहने लगा—'हम क्या हैं ? कीटस्य कीट। उनकी इच्छा के बगैर हम एक पैर तो हिलावें ? सूर्य उन्हीं के आदेश से तपता है, चन्द्र उन्हीं की इच्छा के अनुसार फैलता है, उनके अलावा किसकी मजाल है कि कुछ कर ले ? उन्हीं की इच्छा पूर्ण हो। हे परमेश्वर ! तेरी ही इच्छा पूर्ण।'

सव्यसाची को गुस्सा आ रहा था, पर आशीष कुमार को मज़ा आ रहा था। एक ऐसे रोगी के पास, जो मरने ही जा रहा है, खड़े होकर डाक्टर चन्द्र-शेखर को जो अनुभूति हुआ करती थी वही इस विगत यौवन विवाहार्थी के पास खड़े होकर उसी प्रकार की एक अनुभूति उसे हुई। सभी समझ गये कि इसे समझाना समय का अपव्यय करना है।

आशीष कुमार ने फिर भी चेष्टा करना उचित समझा, बोला—'भारतीयों की औसत आयु तेइस-चौबीस साल है, आप सत्तावन साल जिन्दा रहे हैं, बहुत है। अब तिस पर आप शादी करना चाहते हैं। व्यर्थ ही एक विधवा स्त्री का जीवन नष्ट करेंगे, और कुछ नहीं।' बातें ज़रा क्रोध से कही गईं मानो आशीष कुमार भवानन्द के गुरु या अभिभावक थे।

भवानन्द अवाक् रह कर थोड़ी देर तक आशीष कुमार के मुँह की तरफ देखने लगे, इसके बाद बाप जैसे लड़के को डाँटता है इसी लहजे में कहने लगे—'छिः यह तुम लोगों की कैसी बातें हैं ? गलित मुंड और पलित केश पिता रह जाता है और उसका समर्थ नौजवान लड़का चल बसता है, यह तो रोज़ का अनुभव है। अतएव विधवा और सधवा की अच्छी बात चलाई, यह तो रोज़ का अनुभव है। किसके भाग्य में परमेश्वर ने क्या लिखा हो। यदि यही उसका प्रारब्ध हो, तो कौन उसका खंडन कर सकता है ? तुम

लोग करोगे ? हाः हाः हाः हाः ? वही सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर की इच्छा पूर्ण होगी। मैं विवाह करना चाहता हूँ, यह मेरी अपनी इच्छा थोड़े ही है। अजी राम भजो, मैं जो विवाह करूँगा, इसमें मेरा क्या लाभ है ? जो भगवान की इच्छा है, उसे पूर्ण करना ही पड़ेगा। मेरा क्या है ? मेरी क्या मजाल है ? मैं तो कीटस्य कीट हूँ....'

भवानन्द ने इस प्रकार मुँह बनाया मानो वह भगवान की इच्छा को देख रहा था।

उसकी बातों को सुनते-सुनते सव्यसाची को बहुत क्रोध चढ़ रहा था, उसने अत्यन्त ज़ोर डाल कर अपने भावों का दमन किया, फिर कह उठा—'यह सब ढोंग है, ईश्वर ईश्वर हर बात में ईश्वर, मैं तो सुन कर अवाक् रह गया।'

भवानन्द अकस्मात् खड़ा हो गया और आहत अभिमान के स्वर में बोला—'क्या कहा ? तुम लोग ईश्वर को नहीं मानते ? इस जगत की सृष्टि प्रलय जो करने वाले हैं उन्हीं को तुम लोग नहीं मानते ? तुम लोगों की बातें सुन कर मैं पहले ही समझ गया था, नहीं तो एक अच्छे खासे आदमी को मार कर एक कुमारी को विधवा की बात कहते ? आश्चर्य ! परमाश्चर्य !!'

डाक्टर ने कहा—'हाँ, हाँ हम ईश्वर नहीं मानते, तो क्या ? आप विषय के गुण दोष पर विचार कीजिए, ईश्वर को बीच में क्यों घसीटते हैं ?'

भवानन्द चले जाने के लिए तैयार होकर बोला—'नहीं नहीं, जो लोग ईश्वर को नहीं मानते उनके साथमें बात नहीं करना चाहता। हे परमेश्वर ! तेरी ही इच्छा पूर्ण हो। नहीं, नहीं,...' वह थरथर काँपने लगा। मानो ऐसे पापियों से बातचीत कर वह भविष्य के विषय में चिन्तित हो गया था।

इस पर क्या कहना ? तीनों मित्र उठ कर चले गये। भवानन्द ने उँगली से चिलम के अन्दर टोते हुए देखा कि आग है या नहीं, फिर तम्बाकू पीने लगा। उसके मन में कहीं पर अशान्ति का एक छोटा-सा बादल दिखाई पड़ा। उसके माथे पर बल आ गये। तम्बाकू के गोल-गोल धुएँ से फिर कमरा भर गया।

: २७ :

भवानन्द के निकट से निराश होकर तीनों मित्र कन्या के पिता के मकान की ओर आ गये। वे वहाँ भी टका-सा जवाब पाने की आशंका करते थे, पर फिर भी कर्त्तव्य समझ कर वहाँ एक बार जाना उचित समझा। वहाँ से टेढ़ी नीम काफी दूर है, पर बातों-बातों में रास्ता कुछ नहीं मालूम दिया, और वे एक मकान के सामने आ कर रुक गये। सभी अपने विचारों में डूबे हुए थे।

सब अपने-अपने ढंग पर भवानन्द की बातों की जुगाली कर रहे थे। सव्यसाची क्रोध के आवेश में था, एक सर्वग्रासी क्रोध उसके रक्त की गति को तीव्र कर रहा था। डाक्टर को वैसी ही चोट लगी थी, जैसी अपने किसी रोगी की मृत्यु पर लगती थी, पर उसके हृदय में निराशा का सिक्का जमने से पहले ही वहाँ पर एक दुर्दान्त आशा का संचार हो गया। यही एक वैज्ञानिक की विशेषता है।

अंशीप कुमार ने मुँह पर एक व्यंग भरी हँसी का प्रलेप लगा लिया था, मानो इस घटना से विश्व के प्रति उसकी विरक्ति का मूक समर्थन हुआ था।

दरवाज़ा ढकेलते हुए सव्यसाची ने कहा—'रसिकलाल जी घर पर हैं? रसिकलाल जी?'

थोड़ी देर में साठ साल की उम्र का एक गंजा व्यक्ति लालटेन हाथ में लेकर आ गया। वह तीनों मित्रों की ओर आश्चर्य के साथ देख रहा था।

'आप हमें नहीं पहचानते? हम स्थानीय विप्लवकारी संघ के सदस्य हैं।' सव्यसाची ने यह कह कर फिर सबका परिचय कराया। बोला—'हम लोग आपसे कुछ विशेष बात करना चाहते हैं। आप ही रसिकलाल जी हैं न?'

'हाँ, मैं ही हूँ, बैठक में चलिए...'

रसिकलाल ने लालटेन दिखा कर तीनों मित्रों को बैठक में ले जाकर बैठाया। बैठक की सजावट बहुत मामूली थी। बैठक में कुछ तस्वीरें टँगी हुई थीं, जिनको देखते ही ऐसा मालूम होता था कि घर के मालिक ने इनका संग्रह किसी पद्धति के अनुसार नहीं किया। जैसे-जैसे आती गई सजती गई। जैसा मध्यवित्त परिवारों में हुआ करता है। ऐसे लोगों को सुरुचि का मौका ही कहाँ लगता है। वे तो बेचारे रोटी की फिक्र ही में मर जाते हैं।

एक चौड़ी चौकी पर एक पुराना कालीन बिछा हुआ था। कभी यह कालीन अच्छा रहा होगा। पर इस समय इसकी हालत बुरी थी। तीनों मित्र इसी पर बैठ गये। रसिकलाल कमरे के एक मात्र बेत के मोढ़े पर बैठा। सब लोग कुछ देर तक चुप रहे। इसी बीच में पन्द्रह-सोलह साल की एक लड़की पान दे गई। तीनों मित्र उसकी तरफ देख कर अर्थपूर्ण तरीके से एक दूसरे का मुँह देखने लगे। सबने यह माना कि यह लड़की सरला है। इस बात को जितना ही उन्होंने समझा, उतनी ही दृढ़ इच्छा उनकी उस लड़की के उद्धार करने की हुई। उन्होंने कल्पना में इस लड़की को भवानन्द के बगल में बिठाया, इस पर उनके मन में विद्रोह भावना और भी प्रबल हो गई। मन ही मन उन्होंने कहा—'यह अन्याय है।'

रसिकलाल ने उनकी तरफ पान की तश्तरी बढ़ा दी। सव्यसाची ने कहा —'नहीं, नहीं, कष्ट न कीजिए, काम की बात शुरू हो।'

पर उसने बात नहीं शुरू की, चुपचाप बैठा रहा।

डाक्टर ने कहा—'हम लोगों को मालूम हुआ है कि आप अपनी भांजी की शादी एक बूढ़े के साथ कर रहे हैं, हम उसी सम्बन्ध में बात करने आये हैं।'

रसिकलाल ने अपने गंजे सिर पर हाथ फेरा।

सव्यसाची ने डाक्टर की असम्पूर्ण बात को सम्पूर्ण करते हुए कहा— 'आपकी भांजी की उम्र पन्द्रह वर्ष है।'

'पन्द्रह नहीं, सोलह।'

'हाँ, सोलह ही सही, पर आपने उसके लिए जो वर चुना है, उसकी उम्र सत्तावन साल है।'

रसिकलाल ने भूल सुधारते हुये कहा—'नहीं, पैंतालीस।'

तीनों मित्र एक दूसरे का मुँह देखने लगे। उन्हें यह समझने में देर नहीं लगी कि भवानन्द ने रसिकलाल को अपनी उम्र घटा कर पैंतालीस वर्ष बताई है। खैर, भवानन्द के माथे पर यदि बल न होते तो मज़े में उसकी उम्र पैंतालीस वर्ष होने की सम्भावना की जा सकती है।

'हाँ, तो पैंतालीस ही सही, पर वह आपकी भांजी की उम्र की लड़की को योग्य वर नहीं हो सकता।' इतना कह कर कुछ जैसे याद करते हुए सव्यसाची ने कहा—विशेषकर वह दुहेजा है। उसकी पहली स्त्री से तीन चार लड़के हैं, ऐसी हालत में क्षमा कीजियेगा यह शादी नहीं, लड़की को जान कर कुएँ में ढकेल देना होगा, और कुछ नहीं।'

रसिकलाल कुछ देर तक सोच कर कड़वी हँसी हँसते हुए बोला—'क्या आप जानते हैं कि सरला के लिए योग्य वर खोजने में मैंने कोई कसर की? योग्य वर कहाँ मिला? केवल उम्र से जवान देख कर ही तो मैं उसके हाथों लड़की नहीं सौंप सकता, यह भी तो देखना पड़ेगा कि वह कुछ खाता-कमाता है कि नहीं। रोज़ आँखों के सामने देख रहा हूँ कि बहुत से कथित प्रेममूलक विवाह अर्थाभाव की चट्टान से टकरा कर व्यर्थ हुए जा रहे हैं। अर्थाभाव से पहले पहल कुछ मामूली असन्तोष रहता है, फिर मनमुटाव आता है। एक तरफ यह लाओ, वह लाओ, दूसरी तरफ से अपनी इस सम्बन्ध की कमजोरी का बोध रहता है। इस प्रकार प्रेम एक जीवित समाधि के समान होता है। मैं अपने चालीस साल के विवाहित जीवन के अनुभव से कह रहा हूँ, यदि मेरी उम्र पन्द्रह या बीस साल

अधिक होगी तो उससे कुछ आता जाता नहीं, पर यदि मैं तीस रुपये न पाकर पाँच सौ रुपये पैंशन पाता तो हमारी गृहस्थी अधिक सुखी होती। युवक युवती का आकर्षण कितने दिन टिकता है? अधिक से अधिक दो साल। साधारणतया शादी का तो यही हाल है, इसके बाद रुपयों तथा अन्य चीज़ों की माँग आती है। यह माँगें रुपये से ही पूरी हो सकती हैं। हमें कई एक वर ऐसे मिले थे जो युवक भी थे और खुशहाल भी, पर उनकी माँग इतनी अधिक हैं, वे दहेज इतना अधिक माँगते हैं कि मेरे वश की बात नहीं थी। रही दुहेजा की बात, वह कुछ नहीं है। वह लड़की के नाम से इतनी अधिक सम्पत्ति लिखने जा रहा है कि उससे उसे कभी कमी नहीं रहेगी।

रसिकलाल की बातें सुन कर सव्यसाची एकदम सिहर उठा। उसका क्रोध एक निमेष में जाता रहा, और उसकी जगह एक सर्वग्रासी घृणा आ गई, जो बार-बार दया में परिणत होती रही। उसने मानो इसलिए कि कुछ कहना ही है, कहा—'आपने जीवन को जिस तरह से लिया है, जीवन वास्तव में इतना खराब नहीं है। इसके अतिरिक्त आप जबरदस्ती अपने कड़वे अनुभव को उस पर लाद रहे हैं, यह अन्याय है।'

'मैं सरला के हित की दृष्टि से सब कुछ कर रहा हूँ, अवश्य मैं अपनी धारणा के अनुसार ही किसी की भलाई कर सकता हूँ।'

डाक्टर ने बीच में बोलते हुए कहा—'आप उसी प्रकार से उसका हित कर रहे हैं जिस प्रकार से पहले के युग में डाक्टर लोग बुखार वाले का परत खोल कर उसका हित करते थे।' डाक्टर सूखी हँसी हँसा।

रसिकलाल लाल पड़ गया, क्योंकि वह सन्तानहीन था, और अपना सारा हृदय लगा कर वह सरला से प्रेम करता था। वह कुछ तैश में आकर बोला—'आप लोग हमें सरला के सम्बन्ध में क्या करने के लिए कहते हैं? इसे हमेशा के लिए कुमारी रख छोड़ें?'

आशीष कुमार ने संक्षेप में कहा—'हानि क्या है?'

'हानि क्या है? इतना ही यदि समझ पाते तो इस प्रकार मकान पर चढ़ कर एक भले आदमी का अपमान न करते। क्षमा करियेगा, मैं आप लोगों को गलत नहीं समझ रहा हूँ। आप लोग आदर्शवादी हैं, इसमें सन्देह नहीं, पर आपका आदर्शवाद थोथा है, क्योंकि जीवन के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। वह केवल बातों का जमा खर्च मात्र है'—कह कर रसिकलाल रुक गया, फिर बोला—'किसे इच्छा नहीं होती, मेरी क्या इच्छा नहीं होती है कि मेरी सरला रानी

बने। मैं क्या चाहता हूँ कि उसके पति की उम्र पैंतालीस साल हो। कितना आश्चर्य है! आप शायद सोच रहे हैं कि मैंने भवानन्द से कोई मोटी रकम मारी है, अवश्य ही आप ऐसा सोच रहे हैं। आप लोगों का चेहरा देख कर तथा बातचीत का ढंग सुन कर मैं यही समझ रहा हूँ'—रसिकलाल उत्तेजना से खड़ा हो गया।

सव्यसाची ने कहा—'तो आप यह शादी करेंगे ही?'

'हाँ, करूँगा, आप से जो करते बने वह कर लीजिए'—कह कर अत्यन्त क्रोध में रसिकलाल धम्म से बेंत के मोढ़े पर बैठ गया। इसके बाद कुछ देर तक सोच कर प्रायः सिसकियाँ भरते हुए बोला—'मेरी सरला के भाग्य में बदा होगा तो वह इस दुहेजा के साथ शादी में ही सुखी होगी। आप लोग मेरी परिस्थिति में होते तो क्या करते? ज़रा सुनूँ।'

इसके उत्तर में क्या कहना चाहिए, कुछ समझ में नहीं आया। आशीष कुमार ने सोच कर कहा—'आपको संघ रुपयों की मदद दे सकता है। आर्थिक मदद!'

'आप लोग क्या मुझे या सरला को भीख माँगने वाले समझते हैं? सरला गरीब है, उसका मामा गरीब है, गरीब की तरह उसकी शादी होगी, तो क्या? दूसरा कोई उपाय बतलाइये।'

आशीष कुमार ने कहा—'लड़की को कुमारी रख कर पढ़ाइये।'

रसिकलाल थोड़ी देर तक आशीष कुमार को ध्यान से देखता रहा, मानो यह देखने के लिए कि वह दिल्लगी कर रहा है या गम्भीरता के साथ कुछ कह रहा है, फिर कड़वी हँसी हँस कर बोला—'ऐसा सम्भव नहीं।'

इसके बाद भी कुछ देर तक बातचीत होती रही, पर कुछ नतीजा नहीं निकला। इसलिए तीनों मित्र बहुत क्षमा माँगने के बाद वहाँ से चल दिये। सव्यसाची ने रसिकलाल के मकान से निकल कर यह अनुभव किया कि एक संग्राम की जरूरत है और उसमें न मालूम क्या हो। एक बार आकाश के तारों की ओर फिर एक बार रास्ते की ओर ताक कर वह लम्सा के लिए रवाना हो गया। डाक्टर और आशीष कुमार भी घर चले गये।

: २८ :

टेढ़ी नीम के एक मकान में दरवाजे पर सबेरे से उत्सव के सुर में शहनाई बज रही थी। छोटे से मकान ने अपना रोज़ का उदासीन रूप त्याग कर उत्सव का रूप धारण किया था। लोगों के आने-जाने से सारा मकान मुखरित

हो रहा था। मकान की प्रत्येक ईंट मानो इस उत्सव में शामिल थी, इस उत्सव में अगर कोई शामिल नहीं था तो वह रसिकलाल था, इस उत्सव का आयोजन-कर्ता रसिकलाल। जितना ही विवाह का लग्न पास आता जाता था, वह गम्भीर-तर होता जाता था। जिस दिन से तीन मित्र उससे मिल गये थे, उस दिन से उसके मन में एक सन्देह का काँटा चुभ रहा था और यह काँटा दिनोंदिन अधिक पीड़ा उत्पन्न करता जा रहा था। फिर भी न मालूम किस अपरिहार्य बात द्वारा परिचालित होकर वह इसी विवाद की ओर गर्दन तोड़ तेज़ी से आगे बढ़ता गया था।

और इस उत्सव, शहनाई, शोरगुल, दौड़-धूप, फूलों की झालर आदि का केन्द्रस्थल जो सरला थी, वह क्या कर रही थी? वह इस समय वही कर रही थी जो हज़ारों वर्ष से ऐसे समय में उसकी माँ, नानी, दादी, यह सब करती आई हैं, अर्थात् एक अज्ञात, अपरिचित पुरुष को अपने जीवन के साथी के रूप में वरण करने के लिए निष्क्रिय रूप से तैयार हो रही थी। उसने इस घटना को बिना भय तथा बिना आनन्द के स्वीकार कर लिया था।

स्त्रियाँ स्वभाव से ही कुछ भाग्यवादी होती हैं, यह उनकी दीर्घकालीन गुलामी का परिणाम है। प्राच्य देशों की स्त्रियाँ कुछ अधिक भाग्यवादी होती हैं। प्राच्य देशों में पुरुषों को बहु-विवाह का अधिकार रहा है, इसी के कारण प्राच्य स्त्रियाँ एक तरह से व्यक्तित्व वर्जित, स्थूल तथा निष्क्रिय हो गई हैं।

संघ के सदस्य सन्ध्या के पहले से ही आकर इस मकान के एक रास्ते को बन्द करके बैठे हुए थे, उनका कार्यक्रम यह था कि वर को शादी वाले मकान में आने ही न दिया जाय! इसके लिए वे रास्ता बन्द कर लेटने के लिए और जरूरत पड़ने पर जबरदस्ती करने के लिए तैयार थे। रसिकलाल यह बात जानते थे, उसने वर को यह खबर दी, और उसके साथ परामर्श कर लौट आया।

सुजाता और अशोक यह देखने के लिए यहाँ पर आये हुए थे कि अन्त तक क्या रहता है, इसके अलावा वे संघ को मदद भी करना चाहते थे।

पुलिस भी संघ के इस गैर-कानूनी प्रयास की बात जानती थी, और पास ही शक्ति रक्षा के लिये कुछ वर्दी में और कुछ सादी पोशाक में मौजूद थी। संघ को अच्छी आँखों से नहीं देखते थे, इसलिए वे जिस किसी बहाने से संघ के लोगों को जेल में भरने के लिए तैयार थी। रसिकलाल के साथ दरोगा जी की देर तक अलग में बातचीत हुई थी।

विवाह का लग्न रात के दस बजे था। जब नौ बजे रात तक वर तथा बरातियों का कहीं पता नहीं मालूम दिया तो सब लोग आश्चर्य में रह गये। पहले तो सबने सोचा कि शायद विवाह स्थगित कर दिया गया, पर जब उन्होंने देखा कि उत्सव का कार्य उसी प्रकार से जारी है, और गली में पुलिस वाले उसी प्रकार भूत की तरह धीरे-धीरे आ-जा रहे हैं, तब उन्हें कुछ तसल्ली हुई। इतना दूर आकर और इतना आयोजन कर सब संग्राम खतम हो जायगा, यह सोच कर उन्हें दुःख हो रहा था। बखेड़े में भी एक मजा होता है, चाहे बखेड़े का नतीजा कुछ भी क्यों न हो। जुए का आनन्द भी इसी प्रकार का एक आनन्द है।

जितनी ही देरी होने लगी, सव्यसाची उतने ही ध्यान के साथ चारों तरफ दृष्टि दौड़ाने लगा। वहाँ प्रति मिनट यह आशा कर रहा था कि दूर से बैंड की आवाज़ सुनाई देगी, पर बड़ी देर तक प्रतीक्षा करने पर भी कुछ सुनाई नहीं पड़ा।

:: २६ ::

सव्यसाची और उसके मित्रगण शादी वाले मकान की ओर ऐसे ताक रहे थे मानो वे दृष्टि से, ही उसके अन्दर के रहस्य को जानना चाहते हों। कोई बात नहीं कर रहा था। इतने में सव्यसाची ने कहा—'सुनो।'

सभी उसके पास आकर उसे घेर कर खड़े हो गये। सुजाता की रेशमी साड़ी का एक छोर एक क्षण के लिए उसे छू गया, वह सिहर उठे। आशीष कुमार ने धीरे से उससे पूछा—'क्या है?'

सव्यसाची ने कहा—'मकान के अन्दर जैसे भवानन्द की आवाज़ सुन पड़ी।'

सबने आश्चर्यातिरेक से कहा—'क्या?'

और साथ ही साथ सब लोग बिना बुलाये हुए अनिमन्त्रित के तौर पर मकान के अन्दर हहरा कर घुस पड़े। सबके आगे डाक्टर रहे। अध्यापक आशीष कुमार और द्वारिका पांडे भी किसी के पीछे नहीं रहे। सबसे पीछे सुजाता का हाथ पकड़े हुए अशोक रहा।

शहनाई वालों के साथ मिल कर दरवाज़े के पास एक पुलिस वाला बैठा था। वह पगड़ी भी नहीं सम्हाल पाया था कि संघ वाले दो-मंजिले पर वहाँ जा कर पहुँचे, जहाँ शादी की तैयारी हो रही थी। सच बात तो यह है कि वह पुलिस वाला इसलिए धोखे में आ गया कि उसने यह आशा नहीं की थी कि ये

भद्र युवक इस प्रकार का व्यवहार भी कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त शहनाई की तान से वह जरा कवित्वपूर्ण मनोवृत्ति में हो रहा था।

उस समय तक विवाह शुरू नहीं हुआ था। भवानन्द सामने ही एक कमरे में बैठा था। मंडप में दुलहिन, पुरोहित सभी उपस्थित थे, केवल वर के आने की देर थी। सव्यसाची तथा उसके मित्रों की सम्मिलित दृष्टि के सामने से भवानन्द भाग नहीं सका। वह विस्मय, भय तथा उत्तेजना में अपने कमरे के सबसे दूर के सिरे पर जाकर खड़ा हुआ। वह यह दिखलाने की चेष्टा कर रहा था कि उसे कुछ परवाह नहीं, फिर भी उसके हाथ काँप रहे थे।

डाक्टर ने उसकी तरफ आगे बढ़ते हुए कहा—'कावर्ड ब्रूट जानवर।'

पर भावी वर और डाक्टर के बीच में रसिकलाल बिजली की तेज़ी से आकर खड़ा हो गया, और कठोर कंठ से बोला—'तुम लोग क्या चाहते हो?'

साथियों की भीड़ में से आगे बढ़ते हुए सव्यसाची ने कहा—'हम चाहते हैं कि शादी न हो।'

सव्यसाची ने पीछे की ओर बहुत से जूतों की आवाज़ सुनी, कोई पन्द्रह-सोलह पुलिस वाले संघ वालों के पीछे आकर खड़े हो गये थे। मकान मालिक के एक इशारे पर वे संघ वालों को गिरफ्तार करने के लिए तैयार थे। रसिकलाल ने भी उनको देखा, पर न मालूम क्यों वह उन्हें देख कर हृदय से खुश न हो सका था।

सव्यसाची ने कहा—'जब तक हमारे शरीरों में प्राण हैं, तब तक हम इस शादी को न होने देंगे।'

सबने सम्मिलित कंठ से मानो उसकी प्रतिध्वनि करते हुए कहा—'नहीं होने देंगे।'

रसिकलाल ने कहा—'क्यों?'

डाक्टर ने कहा—'अन्याय है, इसलिए।'

पुलिस का दरोगा गंडासिंह अधीर होकर रसिकलाल के मुँह की तरफ देख रहा था। एक इशारा पाते ही वह इनको मकान से निकाल देने, यहाँ तक कि गिरफ़्तार करने के लिये तैयार था। रसिकलाल ने देखा कि गंडासिंह उसकी तरफ देख रहा है, उसने उसकी दृष्टि की उष्णता तथा प्रार्थना का अनुभव किया, पर उसने जान बूझ कर उस तरफ से मुँह हटा लिया। उधर भवानन्द जिसकी घिग्घी करीब करीब बँध चुकी थी, पुलिस वालों को देख कर कुछ चेतन हो

गया था। वह भी रसिकलाल की ओर देख रहा था कि यह पुलिस वालों से क्यों नहीं कुछ कह रहा है तथा क्यों संकट की घड़ी को बढ़ा रहा है।

रसिकलाल डाक के मुहकमे में नौकर था, बहुत दिनों से वह पेंशन पर है। गत कई वर्षों में देश के अन्तर प्रदेश को मथित और उद्वेलित करते हुए जो आन्दोलन आये थे, रसिकलाल पर उनका काफी प्रभाव पड़ा था। रसिकलाल ने बिल्कुल इस रूप में तो नहीं, बल्कि किसी न किसी रूप में यह अनुभव कर लिया था कि पुलिस वाले जिस पक्ष में होते हैं, वह न्याय पक्ष नहीं होता। उसने सारी जिन्दगी सरकारी नमक खाया था, और अब भी उसकी आय का एकमात्र ज़रिया पेंशन था, पर फिर भी इस सम्बन्ध में उसके विचार नये थे।

रसिकलाल ने कहा—'आप लोग जरा ठंडे दिमाग से सोचें। आप यह तो मानते ही होंगे कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने मत की तथा कार्य की स्वतन्त्रता प्राप्त है।'

कुछ व्यंग के साथ आँखों को आधी बन्द करते हुए आशीष कुमार ने कहा—'हाँ-हाँ, कहिए......'

'उस हालत में मैं समझता हूँ कि आप लोग इस शादी में बाधक होकर अपने सिद्धान्त को त्याग रहे हैं। विवाह अनैतिक नहीं है, वर का इसमें मत है, कन्या भी असहमत नहीं है। याद रखिये सरला घर में पढ़ने पर भी इंट्रेंस की लड़कियों को अंग्रेज़ी पढ़ा सकती है। मेरे मित्र सुकवि करुणाकान्त की देख-रेख में उसकी शिक्षा हुई है। ऐसी हालत में हठपूर्वक इस विवाह में बाधा देकर आप नागरिक स्वतन्त्रता के विरुद्ध आचरण कर रहे हैं। है यह बात कि नहीं? सोच कर देखिए।'

डाक्टर ने कहा—'जरूर इसमें कन्या की राय प्राप्त की गई है, पर यह उसकी असली राय नहीं है'—कह कर फिर बोला—'नहीं होगा।'

'यह तो आपकी जबरदस्ती है, जब एक व्यक्ति कह रहा है कि यह उसकी राय है, तो आप कैसे कहते हैं कि यह उसकी राय नहीं है। इसके अर्थ तो ये हुए कि जब तक आपकी राय से किसी की राय नहीं मिल जायगी, तब तक आप यह कहते रहेंगे कि उसकी राय उसकी निजी राय नहीं है। इस प्रकार आपकी धारणाएँ अजीब हैं। मिल ने स्वतन्त्रता की जो व्याख्या की है, वह और ही है। आपकी बात तो नादिरशाही हैं, और कुछ नहीं।'

पीछे से द्वारका पांडे ने कहा—'ओह, मिल स्वतन्त्रता के विषय में क्या जानता था? वह बुर्जुआ स्वतन्त्रता के वेद का प्रचारक, प्रतिनिधि और पैग़म्बर

था। ये लोग समझते हैं कि सार्वजनिक वोट हो गया तो विश्व की सारी समस्याएँ सुलझ गईं। मिल के बाद डफरिन पुल के नीचे बहुत पानी जा चुका है और दुनिया बहुत कुछ सीख चुकी है।'

द्वारिका पांडे की बात की मानो पूर्ति करते हुए डाक्टर ने कहा—'यह सब सिद्धान्त की बात बहस भाड़ में जाय, आप यह बताइये कि भवानन्द बूढ़े न होकर जवान होते, तो यह अच्छा होता कि नहीं ?'

कोने में खड़े भवानन्द की भौहों पर बल आ गये।

'हाँ, पर सब गुण एक साथ कहाँ मिलते हैं—'अत्यन्त यांत्रिक स्वर में रसिक लाल ने कहा—'मेरी क्या यह इच्छा नहीं है कि सरला की शादी उसी की उम्र के किसी युवक के साथ हो। बड़ी इच्छा होती है। इसके लिए मैंने क्या नहीं किया ? आप लोगों ने ही कौन-सा वर ढूँढ़ कर दिया ?'

आशीष कुमार बोले—'क्यों हम तो रुपयों की मदद देना चाहते थे।'

'रुपये नहीं, वर, हम भिखारी नहीं हैं कि रुपये लेते फिरेंगे !'

'रुपये होने पर पात्र मिल जाते।'

'हो सकता है, पर मैं पात्र चाहता था, आप चाहते तो आसानी से यह समस्या सुलझ सकती थी, पर आप लोगों ने ऐसा नहीं किया, क्योंकि आपको तो बस नाम कमाना है'—रसिकलाल ने बातों को एक ही साँस में कहा।

आशीष कुमार आश्चर्य से बोला—'कैसा ?'

'आप लोगों में ही अच्छा वर मौजूद था। आप इच्छा करते तो सब मामला अच्छी तरह सुलझ सकता था।'

इतने में पुरोहित ने आगे बढ़ते हुए कहा—'रसिक, लग्न निकला जा रहा है।'

कन्या पक्ष वाले भी अधीर हो रहे थे और सबसे अधीर एकमात्र बराती वर स्वयं हो रहे थे। वह इन सब बहसों में कोई फायदा नहीं देख रहा था। वह चाहता था कि पुलिस की सहायता से इन बाहरी लोगों को निकाल बाहर किया जाय और फिर शुभ कार्य का आरम्भ हो। वह स्वयं ही आगे बढ़ कर यह बात कहता, पर लज्जा के वशीभूत होकर कुछ कह नहीं पा रहा था।

रसिकलाल जैसे इन सब बातों के प्रति ध्यान न देकर कहता गया—'आप लोगों ही में हमारे पसन्द के लायक पात्र मौजूद है...'

आशीष कुमार ने आश्चर्य के साथ कहा—'कौन ?'

सब लोग कौतूहल के साथ उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे।

'क्यों, सव्यसाची कुमार, जाति गोत्र सब मिलता है'—रसिकलाल ने कहा।

सब लोग सव्यसाची कुमार की ओर ताकने लगे।

डाक्टर ने कहा—'यह बात ? पहले क्यों नहीं कहा ? पहले कहते तो कितना ठीक रहता ?'

सुजाता के मुँह पर जैसे किसी ने कालिख पोत दी।

सव्यसाची कुछ बोला नहीं। डाक्टर ने सव्यसाची से कहा -'एक युवती के जीवन को नष्ट होने से बचाने के लिए तथा प्रतिक्रियाबाद की नाक पर एक घूसा जमाने के लिए तुम्हें यह बोझा अपने ऊपर लेना पड़ेगा।'

उत्तेजना तथा किंकर्त्तव्यविमूढ़ता से सव्यसाची को रोना-सा आ रहा था, पर उसने कुछ नहीं कहा। वह शायद यह बात समझ नहीं पा रहा था कि क्या कहे ? डाक्टर ने उसे हाथ पकड़ कर ले जाकर अन्दर वर के आसन पर बैठा दिया। त्याग की बात सुन कर तथा मित्रों का आग्रह देख कर सव्यसाची ने प्रतिवाद नहीं किया, पर अपने चारों तरफ मंत्र पाठ आदि का उपकरण देख कर वह विद्रोह कर उठा। आधा खड़ा होकर बलिदान के पहले बकरे के अन्तिम चीत्कार की तरह उसने गिड़गिड़ा कर कहा—'और मंत्र! मंत्र! इसमें तो मंत्र की आवृत्ति करनी पड़ेगी और हम मंत्र नहीं मानते।'

अपने को विपत्ति से मुक्त करने की एक अन्तिम निराश चेष्टा थी।

आशीष कुमार ने कहा—'ओह डैम! इनको बच्चों का खेल समझ कर कहे जाओ, हम लोग जवाब दे लेंगे।'

डाक्टर ने कहा—'मैंने तो अपनी शादी सिविल मैरेज ऐक्ट से की, फिर भी मैं इसका अनुमोदन करता हूँ, बात यह है कि विशेष परिस्थिति है।'

सबने राय दी। सव्यसाची का अन्तिम प्रतिवाद इस प्रकार सार्वजनिक जय-ध्वनि में डूब गया। भूताविष्ट की तरह सव्यसाची किसी तरफ न ताक कर मंत्रों की आवृत्ति करने लगा। बुद्धिमान पुरोहित ने जान बूझ कर संक्षेप में काम किया। सव्यसाची ने वर के आसन पर बैठ कर पहली बार अत्यन्त तीव्र रूप से यह अनुभव किया कि वह सामने खड़ी सुजाता से प्रेम करता है, बहुत ही प्रेम करता है।

पुलिस वालों ने जब यह देखा कि विवाह में गैर-कानूनी रूप से बाधा पहुँचाने वाले लोग बरातियों में परिणत हो गये, और उनमें जो मुख्य व्यक्ति था वह वर हो गया, तो वे लोग वहाँ से चुपचाप खिसक गये।

किसी ने भवानन्द को नहीं देखा। वह चोर की तरह सबकी दृष्टि बचा कर निकल गया और उसके पीछे-पीछे सब कुछ खोने की तीव्र अनुभूति लेकर सुजाता निकल गई।

उस समय बाहर बैंड एक सामरिक साज बजा रहा था। आकाश में चाँद का एक टुकड़ा तैरता हुआ चला जा रहा था।

: ३० :

सुजाता लाहौर में जाकर फिर से एम० ए० पढ़ने की चेष्टा करने लगी, पर पढ़ाई बहुत दिन पहले ही शुरू हो चुकी थी, इसलिए यह मालूम हुआ कि उसे और एक साल प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। उसकी सहपाठिनियाँ अब की एम० ए० होने वाली थीं। उसने सोचा कि किस क्षण में उसने बनारस का रास्ता लिया था कि सब मामला ही बिगड़ गया। यह डेढ़ साल जो फोकट में गये उसका उसे गम नहीं था। उसे गम था तो इस बात का था कि एक चीज के बहुत पास जाकर भी वह उसे न पा सकी। यह दुःख वह कहाँ रखेगी? हाँ-हाँ, उसे याद है जिस समय डाक्टर ने हाथ पकड़ कर सव्यसाची को वर के आसन पर बैठाया था उस समय सव्यसाची ने एक बार उद्भ्रान्त दृष्टि से चारों तरफ देखा था। न मालूम वह किसे खोज रहा था।

पर अब उस बात से क्या? सव्यसाची अब जीवन भर के लिए सम्पूर्ण रूप से उसकी पहुँच के बाहर है। एक अखंडनीय, अप्रतिकार्य, अपरिवर्तनीय भाग्य उनके बीच एक खाई पैदा किये हुए था, किसी भी प्रकार उसे पाटना सम्भव नहीं था। पीछे की उन बातों को सोचना ही व्यर्थ है। उसे अब नये सिरे से जीवन को बनाना है। उसे अब इसी दिशा में दत्तचित्त हो जाना चाहिए और कोई रास्ता नहीं।

सुजाता के लाहौर वाले मकान में जो बुढ़िया रहती थी उसने जब यह देखा कि सुजाता उसी प्रकार अविवाहित है, तो उसने साफ-साफ कह दिया कि उसे इस पर बहुत आश्चर्य है। सुजाता बुढ़िया की बातों पर ध्यान नहीं देती थी, पर अब की बार जो उसने विवाह न करने का उलाहना दिया तो उसने कड़वी हँसी हँस दी। यह हँसी एक दीर्घ निश्वास मात्र था।

सुजाता ने कहा—'अच्छा नानी, क्या शादी करना जरूरी है?'

नानी बड़ी देर तक अपने पोपले मुँह को बना कर सुजाता को देखती रही। फिर बोली—'कहती क्या है? अगर शादी जरूरी नहीं है तो क्या जरूरी है?'

यदि दूसरा समय होता तो सुजाता इसके उत्तर में शायद यह कहती कि यदि वह आजीवन कुमारी रह कर देश की सेवा करे, तो उसमें दोष क्या है, पर आज उसे यह बात कहने में हिचकिचाहट मालूम हुई। शादी शब्द शायद कुछ प्राचीन है, इस शब्द के प्रति वह सम्पूर्ण रूप से आत्मीयतापूर्ण रुख न ले सकी थी, पर समाज के द्वारा स्वीकृत स्त्री पुरुष का बहुमुखी सहयोग, वह दूसरी बात थी। वह अब यह अनुभव कर रही थी कि उसके मामले में इस प्रकार का मिलन जरूरी था, और ऐसा मिलन होने से रह गया, और इसके फलस्वरूप उसका जीवन अकस्मात् पगु, शून्य और कुछ अब तक उद्देश्यहीन हो गया यह बात उसे अखर रही थी। इस प्रेम के असफल हो जाने से उसका जीवन अब न मालूम कैसा हो गया था ? उसने बुढ़िया से कहा—"मान भी लिया कि शादी जरूरी है, तो मान लो कि मैं विधवा हो चुकी हूँ, उस हालत में क्या बात है ? कितनी स्त्रियाँ तो मेरी उम्र में बेवा हो जाती हैं, नानी तुम भी तो......"

बात के बीच में टोकते हुये बुढ़िया ने कहा—"तू काशीजी जाकर बातूनी हो आई है, तू क्यों बेवा होने लगी, बेवा हो तेरे दुश्मन," कह कर कुछ सोचती हुई बोली—"नहीं, नहीं, दुश्मन भी न हों, बेवा होना कितनी भारी तकलीफ है, ओह !"

बुढ़िया के मन में अपने जीवन की बात एक मुहूर्त में चित्रपट के दृश्यों की तरह घूम गई। उसका पति सरकारी अस्पताल में डाक्टर था। तरक्की का काफी मौका था। महायुद्ध में जाकर तो कितने ही डाक्टर फौरन मेजर हो आये। यदि वह जीवित होता तो क्या उसे आज दूसरे के अन्न पर पलना पड़ता। अवश्य धर्मशीला बड़ी शरीफ है, उसने कभी इस बात का इशारा नहीं किया, पर......। वह तो परिश्रम कर हमेशा यही कोशिश करती रही कि जहाँ तक हो सके परिवार के काम आवे।

बुढ़िया ने आगे कुछ नहीं कहा। वह जल्दी-जल्दी माला जपने लगी, इसलिए सुजाता वहाँ से चली गई।

बहुत सोच कर भी सुजाता अपने लिए कोई कार्यक्रम तैयार नहीं कर पा रही थी। ऐसे समय उसे अकस्मात् एक बात याद आई। सव्यसाची ने उसे एक बार स्त्रियों की बिक्री तथा वेश्यावृत्ति के सम्बन्ध में बातचीत करते हुए यह कहा था कि एलगाकेरन नामक एक जर्मन महिला ने वेश्याओं के मकान घूम कर उनकी जीवनियों का संग्रह कर एक पुस्तक प्रकाशित की थी जिससे समस्याओं पर यथेष्ट प्रकाश पड़े।

सव्यसाची ने कहा था—"मैंने इस किताब से कोई नई बात नहीं सीखी, क्योंकि भौतिकवाद ने शुरू में ही इस समस्या का समाधान कर रखा है। हमारे कथनानुसार व्यक्ति का दोष नहीं है, अपराध के लिए समाज जिम्मेदार है, और चूँकि वेश्यावृत्ति भी एक तरह का अपराध है, दोष समाज रचना का ही है। ऐलगकेरन की पुस्तक में मैंने इसी मत का समर्थन पाया है। मैं चाहता हूँ कि कोई भारतीय महिला भी इस प्रकार के सब तथ्यों का संग्रह कर एक पुस्तक लिखे तो वह पुस्तक दकियानूसी लोगों की आँखों में ज्ञानांजनशलाका का काम करेगी।"

सुजाता ने इस पर कहा था—"पर यह काम बहुत ही कठिन है।"

"क्यों ?"

एक शरीफ़ औरत के लिए वेश्याओं के घर-घर जाने में अपमान का भय है, इसके अलावा बदनाम होते कितनी देर लगती है। जैसे काठ की हंडिया एक बार ही चढ़ती है, उसी प्रकार स्त्री भी एक बार ही बदनाम हो सकती है यानें एक बार बदनाम हुई कि स्त्री हमेशा के लिए बदनाम हो गई। चाहें या न चाहें यह हमारी हालत है, यही हालत भारत में तथा योरुप में सर्वत्र है, कहीं कम कहीं ज्यादा।'

सव्यसाची ने सहानुभूति के साथ कहा था—'यदि कोई इस प्रकार त्याग स्वीकार कर कीचड़ में पैर रखने की हिम्मत न करे, तो असली तथ्य किस प्रकार मालूम होंगे, और असली तथ्य मालूम नहीं होंगे तो बुराई की दवा किस प्रकार निकलेगी ?'—कह कर कुछ हँसते हुए सव्यसाची ने कहा था—'यदि मैं स्त्री होता तो मैं इस प्रकार का खतरा उठाने से नहीं हिचकता।'

लाहौर में आकर आज सव्यसाची की बातें सुजाता को याद आ गईं। उसने सोचा सचमुच ही यह एक बड़ा काम है, वह उसे क्यों न उठा ले। जिस बदनामी के भय से एक दिन वह इस काम से हिचकी थी, आज मानो वही बद-नामी उसे इस तरफ पुकार रही थी। इस कार्यक्रम में अपने को लगा देने की चिन्ता से ही आज उसके सारे शरीर में बिजली दौड़ गई, जैसे एक नया जीवन उसमें जागने लगा। उसने सोचा कि इस कार्य को करने से उसे इस महान दुःख से छुटकारा मिलेगा।

सिद्धान्त और कल्पना के क्षेत्र से वह अब कार्यक्षेत्र में उतर पड़ी। प्रारम्भ में वह कई बार बाज़ार तक घूम आई। यद्यपि वह किसी वेश्या के घर में नहीं गई, फिर भी वह यह बात देख कर आश्चर्य में पड़ गई कि इस प्रकार एक बार घूम जाने में ही उसे बहुत-सी नई बातें मालूम हो गईं। उसे ऐसा मालूम

दिया कि वेश्याओं के चेहरे पर यह जो प्रफुल्लता तथा हर्ष की छाया रहती है, वह वकीलों के चोंगे की तरह पेशे का एक अनिवार्य अंगमात्र है। असल में उसमें कोई आन्तरिकता, गहराई या सत्यता नहीं थी। वह प्रफुल्लता एकदम बनावटी थी, ग्राहकों को खींचने के लिए एक विज्ञापन मात्र था। उनके हृदय के साथ इस व्यापारिक हँसी का कोई सम्बन्ध नहीं होता।

एक दिन वह साहस कर एक वेश्या के मकान में घुस पड़ी। जो बुढ़िया दरवाज़े पर रहती थी उसने जो यह देखा कि एक शरीफ़ औरत है, तो उसने उसे मकान के अन्दर घुसने देने में अनाकानी की। वह जानती थी कि इस प्रकार कभी-कभी शरीफ़ औरतें वेश्याओं के मकानों पर धावा बोल कर अपने पुत्र पति या भाई को पथभ्रष्ट कर देने के लिए झगड़ा करने आती हैं। वह स्वयं जवानी में वेश्या थी। इसलिए उसे कई बार इन शरीफ़ औरतों से पाला पड़ा था। यह लोग अपने पति पुत्र को समझाने की बजाय वेश्या से आकर लड़ने लगती हैं। कोई उन्हें हाथ पकड़ कर कह थोड़े ही ले आया था। यहाँ तो यह है कि वह नहीं आयेगा तो कोई और आयेगा।

बड़ी अनाकानी के बाद बुढ़िया उसे दो मंजिले में ले गई। अभी-अभी वेश्या दिन की नींद खतम कर उठी थी। सुजाता ने उसे देख कर मन ही मन कहा—'अरे यह ? इतनी साधारण ? और कल सन्ध्या समय कैसी परी-सी मालूम दे रही थी।'

वेश्या ने अपने बिखरे हुए बालों को सम्हाल कर एक बार बुढ़िया की ओर देखा, और दूसरी बार आगन्तुक की ओर।

बुढ़िया ने कहा—'मैं कुछ भी नहीं जानती, इन्हीं से पूछ देखो कि क्या चाहती हैं ?'

सुजाता सोच रही थी कि बैठे या नहीं। उसका सारा शरीर घृणा से कंटकित हो रहा था। एक अजीब बदबू चारों तरफ के वातावरण में तैर रही थी, यद्यपि उसने चारों तरफ ताक कर देखा कि ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिससे यह गन्ध निकल रही हो। कहीं पर गन्ध का नाम भी नहीं है, सब साफ सुथरा दिखाई पड़ रहा है। वह बू, उसी प्रकार की थी, जैसी किसी बन्द मकान को खोलने से निकलती है, कामुकता की इस प्याऊ से कितने ही लोग रोज आकर गन्दा पानी पीते रहते हैं।

पर जो लोग यहाँ आते हैं, क्या वे मनुष्य हैं ? क्या उन्होंने मनुष्यता के नाम को व्यवहार करने के अधिकार को खो दिया नहीं है ?

सुजाता फिर भी ज़ोर से धम से कुर्सी पर बैठ गई। इस कुर्सी में उससे पहले कौन लोग बैठे होंगे? इसी स्त्री के शरीर के भूखे लोग न? शायद कल सन्ध्या समय भी कितने ही आदमी बैठे हों, वह सिहर उठी।

उसने जहाँ तक हो सका सरल करके अपने उद्देश्य को व्यक्त किया। सुन कर वेश्या मुस्करा पड़ी। उसने सुजाता को ऐसी दृष्टि से देखा, मानो वह बहुत कुछ समझ गई। उसके कठिन चेहरे में एक जोड़ा सरल आँखें थीं जो बरबस अपनी ओर उसकी दृष्टि को खींच रही थीं, उसने सुजाता से कहा—'आप शायद कांग्रेस की सदस्या हैं?'

'नहीं, मैं कांग्रेस की नहीं हूँ, पर मैं पतिता बहनों की सेवा करना चाहती हूँ।'

'आप शादीशुदा हैं?'—कह कर उसने कुछ हिचकते हुए आगन्तुक की ओर देखा कि कहीं इससे आगन्तुक की मानहानि तो नहीं हुई है।

सुजाता ने कहा—'नहीं, इसके बाद आप कहें या तुम इस उधेड़-बुन में थोड़ी देर भटक कर उसने पूछा—'तुम्हारा नाम?'

'मेरा नाम छप्पन छुरी है।' पर इस उत्तर को सुनते ही सुजाता की दृष्टि वज्र-कठिन हो गई। यह देख कर वह बोली—'ओह! आप घर का नाम पूछ रही हैं? वह निक्को है, मैं तो उसे भूल गई थी।'

इस बात से सुजाता की दृष्टि फिर कोमल हो गई। उसने अत्यन्त मुलायम आवाज़ में कहा, 'अच्छा निक्को, मुझे तुम सच-सच बताओ कि तुमने यह पेशा क्यों अपनाया?'

निक्को उर्फ छप्पन छुरी कुछ रुक कर बोली—'वह लम्बी कहानी है। उसने बुढ़िया की तरफ एक आज्ञामूलक इशारा किया, बुढ़िया गिड़गिड़ाती हुई निकल गई।

'मैं खुशी से वेश्या नहीं हुई। मैं बहुत बड़े घर की बेटी थी, नाम न लूँगी। दूसरों को क्यों सानूँ। मेरे पिता तथा माता दोनों मुझ से प्यार करते थे, पर दुर्भाग्य से मेरी माँ मुझे आठ-नौ साल की छोड़ कर मर गई। पिताजी ने फिर शादी की। बस यहीं से मेरे दुर्भाग्य का सूत्रपात हुआ। घर की दुलारी लड़की से मैं एकाएक एक लौंडी बाँदी हो गई। जैसे-तैसे स्कूल की पढ़ाई जारी रही। स्कूल में जब रहती थी, तब तक शान्ति से रहती थी, जिस दिन स्कूल में छुट्टी होती थी, वह दिन मेरे लिए पहाड़ हो जाता था। सौतेली माँ से मैं बाघ की तरह डरती थी। जिस समय मैं छठे दर्जे में पढ़ती थी, उस समय एक लड़के

के साथ मेरा परिचय हुआ। लड़का कालेज में पढ़ता था। लाहौर के एक प्रसिद्ध धनी का लड़का था। होते-होते उसके साथ भाग गई और लाहौर में ही उसके पास रही। सौतेली माँ तो खुश ही हुई, मेरी कोई खास खोज नहीं कराई गई।'

'अवश्य खोज करने पर भी मेरा मिलना मुश्किल था। पहले पहल मैं यह समझ घर से रूठ कर भागी थी कि पिता जी खोज कर खुशामद कर मुझे ले जायेंगे। वह लड़का भी मुझ से प्रेम करता था। दो साल चैन से कटे। इस बीच में वह बी० ए० हो गया। उसके पिता ने उसे विलायत भेजना चाहा। इसलिए उसे विलायत जाना पड़ा। जाते समय वह कह गया कि पत्र डालता रहेगा। मालूम नहीं कि उसने पत्र डाला है या नहीं। क्योंकि लंडन पहुँचने के पहले ही नौकरों ने उस बंगले से निकाल बाहर किया। इसके बाद घूम-घाम कर मैं एक गुंडे के हाथ पड़ गई, उसने मुझे वेश्या बनने के लिए मजबूर किया— यह कह कर वह सिसक-सिसक कर रोने लगी।

सुजाता ने इस दिन और अधिक कुछ नहीं पूछा, पर कई एक बार भेंट के बाद उसने उसके सम्बन्ध में सारा ब्यौरा जान लिया, और स्थानीय पत्रिका में इस विवरण को प्रकाशित करा दिया।

इस प्रकार धीरे-धीरे सुजाता ने कई एक वेश्याओं की रामकहानी मालूम कर प्रकाशित कराई। इन ब्यौरों से स्त्रियों की बिक्री, विवाह प्रथा, इत्यादि अनेक विषयों पर काफी रोशनी पड़ी। इन लेखों से काफी सनसनी पैदा हो गई और विभिन्न भाषाओं में इन लेखों पर लेख निकले।

इस प्रकार सव्यसाची द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चल कर सुजाता का समय बहुत कुछ कटने लगा। इस प्रकार जैसे कहीं पर सव्यसाची के साथ उसका एक सूक्ष्म योगसूत्र बाकी रह गया था, एक अत्यन्त क्षीण योगसूत्र।

इसके अलावा जब मन नहीं लगता था, अर्थात् जब इस पर भी उसका मन उचट जाता, तो वह जैसे मन की तलाश में गर्दन तोड़ वेग से मोटर साइकल चलाती थी।

: ३० :

शादी करके सव्यसाची एक मामले में बहुत ही विपत्ति में पड़ गया। वह स्त्री को कहाँ ले जावे, क्योंकि अन्तरतम हृदय से इस विवाह को अस्वीकार कर देने पर भी वह बाहर के शिष्टाचारों तथा जिम्मेदारियों का जहाँ तक हो सके पालन करना चाहता था।

विवाह के मंडप में उसने सरला से आँखें ही नहीं मिलाईं। उसने

सुहागरात भी एक करवट में काट दी। सरला के साथ एक भी बात नहीं की, यहाँ तक कि एक दृष्टि डाल कर उसके अस्तित्व तक को स्वीकार नहीं किया।

जिस कारण से भी हो उसने यह तय किया कि स्त्री लेकर धर्मशीला के मकान में जाना ठीक न होगा, उसने इसे स्वतःसिद्ध करके मान लिया। न मालूम कहाँ से उसका विवेक तथा सुरुचि उसे मना कर रही थी। अवश्य वह इस बात जानता था कि धर्मशीला इसमें कोई आपत्ति नहीं करेगी।······फिर भी।

इधर उसने भी अपने ममिया ससुर रसिकलाल के यहाँ रहना भी उचित न समझा, यद्यपि वह ऐसा करता तो रसिकलाल और सरला दोनों खुश होते। शायद सरला के हक में यह अच्छा भी होता, क्योंकि सव्यसाची ने रात भर सोच कर इस को अन्तिम रूप से तय कर लिया था कि विशेष अवस्था में पड़कर अन्धा होकर इस शादी के गड्ढे के पड़ जाने पर भी वह सरला को ऊपरी अधिकारों के अतिरिक्त कोई अधिकार न देगा। नहीं, कभी नहीं, वह तो एक प्रहसन मात्र होगा। वह सुजाता से प्रेम करता है, उसी से प्रेम करेगा। अवश्य यह प्रेम नीरव रहेगा महीने के बाद महीना, साल के बाद वह चुपचाप अपनी सुजाता की नीरव पूजा करता रहेगा। एकलव्य की तरह सुजाता को इसकी खबर न होने देगा। वह अपने विवाह बन्धन के प्रति सच्चा रहेगा, पर उसका हृदय अपना है, वह सुजाता को हृदय देगा। उसने तो हृदय प्रदान नहीं किया, शादी ही की है।

उसको इस बात का आश्चर्य हुआ कि कल तक वह सुजाता के प्रति अपनी इस भावना को समझ क्यों नहीं पाया था। एक व्यर्थ क्रोध से वह फूलने लगा। तो क्या यह भावना बहुत पुरानी है? वह क्यों इस बात को पहले नहीं समझ पाया था?

सव्यसाची जब शादी के बाद के रोज सबेरे खड़े होकर इन बातों को सोच रहा था, सुजाता उस समय माँ के लिए एक पत्र रख कर किसी की अनुमति न लेकर पंजाब मेल पर सवार चली जा रही थी। सव्यसाची को यह बात नहीं मालूम थी।

अन्त तक सव्यसाची ने डाक्टर ही को पकड़ा। 'डाक्टर तुम्हीं ने यह भारी बोझ मेरे सिर पर लादा है, अब तुम्हीं इसकी आफत उठाओ, कुछ दिन के लिए हम तुम्हारे ही घर पर रहेंगे।'

डाक्टर ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया। सेवा दल से लौटने के बाद उसने एक उच्च शिक्षिता से हाल ही में शादी की थी। डाक्टरी के कर्तव्यों

के सम्बन्ध में उसे बहुत व्यस्त रहना पड़ता था, इसलिए उसकी स्त्री को एक नहीं दो साथी मिलेंगे, इसलिए उसने इस बात का स्वागत किया।

सव्यसाची स्त्री के साथ डाक्टर के यहाँ गया।

सव्यसाची ने डरते हुए धर्मशीला से भेंट की। धर्मशीला ने उसे आशीर्वाद दिया, और कहा कि उसकी स्त्री से भेंट करने वह चलेगी। पर उनके चेहरे की तरफ देखकर सव्यसाची को मालूम हो गया कि इन कई घंटों में जैसे उनमें खाई की सृष्टि हो गई है। कहना न होगा कि यह केवल सव्यसाची के उत्तेजित मन की कल्पना मात्र थी। असल में धर्मशीला पहले ही की तरह स्नेहशील रूप में पेश आई थी। अवश्य वह इस बात से बहुत परेशान थी कि सुजाता बिना कुछ कहे सुने क्यों चली गई। वह सव्यसाची की शादी के साथ सुजाता का चले जाने का सम्बन्ध स्पष्ट देख रही थी, पर अशोक के मुँह से जो कुछ ब्यौरा मालूम हुआ था, उससे वह सव्यसाची, रसिकलाल या डाक्टर किसी को भी दोष नहीं दे सकती थी। इनमें से किसी का उद्देश्य महान के अतिरिक्त कुछ नहीं था। धर्मशीला को ऐसा मालूम पड़ा कि ये सभी एक अदृश्य के द्वार परिचालित हो कर अपने कार्य के जरिये से अपने अपने भाग्य को पूर्ण कर रहे थे, नहीं तो पहले से किसी को कुछ पता ही नहीं था कि घटनाएँ इस दिशा में जा रही हैं।

सव्यसाची शादी के बाद डाक्टर के यहाँ ठहरा। धर्मशीला ने इस पर भी कोई आपत्तिजनक बात नहीं पायी। वह एक दिन तरह तरह के उपहार लेकर डाक्टर के घर गई और नई बहू देख आई।

सन्ध्या समय आशीष कुमार घूमते-घामते धर्मशीला के यहाँ पहुँचा। बातचीत होते-होते इस शादी पर बात चल पड़ी। आशीष ने कहा—'आप इस शादी के सम्बन्ध में क्या समझतीं हैं?'

धर्मशीला के माथे पर बल आ गये, बोली—'ठीक ही तो है...'

'आपकी राय में ये दुःखी होंगे? स्मरण रहे कि यह प्रेम मूलक विवाह नहीं है।'

'हो सकता है, नहीं भी हो सकता है। यह उनके स्वभाव पर निर्भर है। पर एक बात को मैंने एक सिद्धान्त के रूप में मान लिया है कि चाहे जिस क्षेत्र में चले शादी के क्षेत्र में त्याग कर शादी करने की बात में मैं विश्वास नहीं करती। विवाह करने वाले को उचित है कि वह कौड़ी-कौड़ी समझ ले। मैं अवश्य इस बात को आलंकारिक अर्थ ही में कह रही हूँ। धन के लोभ में या आर्थिक फायदा देख कर जो शादी होती है, वह तो बहुत ही निन्दनीय है।

जीवन के और सब क्षेत्रों में प्रेम से प्रिय को वरण करना शायद उचित है, पर विवाह में प्रेम ही श्रेय है। इस दृष्टिकोण के अतिरिक्त विवाह असफल होने के लिए बाध्य है। कम से कम यही मेरी धारणा है।'

'इसके माने यह हुए कि आप कह रही हैं कि यह विवाह असफल रहेगा, क्योंकि इस विवाह को करने में सव्यसाची को बहुत त्याग करना पड़ा।'

दोनों में आलोचना चलने लगी। दोनों ने त्याग शब्द का प्रयोग किया, पर सव्यसाची का त्याग कहाँ और किस बात में है, इस प्रश्न पर दोनों बराबर बात करते रहे। अन्त में आशीष कुमार ने कहा—'जानते हैं? कल संघ का अधिवेशन होगा।'

चौंककर धर्मशीला ने कहा—'कल फिर क्या बात है?' बात का कुछ ऐसा मतलब था कि कल किस की शामत आ रही है?

'कुछ नहीं, कल सव्यसाची को संघ की तरफ से विपुल रूप से अभिनन्दित किया जायगा।

धर्मशीला ने अस्पष्ट रूप से कहा—'अच्छा यह बात?' वह कहने जा रही थी घाव पर नमक!

पर यहीं पर धर्मशीला ने सव्यसाची को गलत समझा था। वह बड़े से बड़े कष्ट को भी बिना चूँ किये सह सकता था, यही उसका स्वभाव था। यदि उसको कोई चोट लगी थी, तो उसका घाव के अन्तराल में रहने के लिए बाध्य था।

आशीष कुमार ने मानो धर्मशीला की बात को समझते हुए कहा—'शायद अभिनन्दन से कुछ क्षतिपूर्ति हो।'

यथासमय संघ का अधिवेशन हुआ और तुमुल जय ध्वनि के बीच सव्यसाची को संघ की तरफ से उसके क्रान्तिकारी आत्म-त्याग के लिए बधाई दी गई। अनुपस्थित भवानन्द पर बड़ी-बड़ी फबतियाँ कसी गईं और उसका खूब मजाक उड़ाया गया। संघ की तरफ से सव्यसाची को बहुत-सी जरूरी चीज़ें उपहार के रूप में दी गईं।

इन चीज़ों की तरफ देख कर सव्यसाची को रोना-सा आ रहा था। वास्तविकता और भी कठिन रूप में दिखाई पड़ी, पर उसने एक भी साँस नहीं ली। उसे चुपचाप अपने दुःख के बोझ को उठाना पड़ा।

: ३१ :

मोटर साइकल चलाते-चलाते सुजाता लाहौर से बहुत दूर निकल जाती थी। मोटर साइकल पर उल्का के वेग से वायु को विदीर्ण करती जाती हुई उसे ऐसा प्रतीत होता था कि वह अन्याय और विषमतापूर्ण इस जगत को पीछे रख कर चली जा रही है। वेश्याओं में आते-जाते रहने से उनकी समस्याओं पर विचार करते-करते वह जीवन के कृष्ण पक्ष के विषय में बहुत कुछ जान चुकी थी। वह उसी कृष्ण पक्ष को पूर्ण सत्य समझ रही थी। उसका मन लिखाई-पढ़ाई, विज्ञान बल्कि सारे जगत के प्रति उदासीन हो चुका था।

उसकी माँ उसे नियमित रूप से पत्र लिखती थी। ये पत्र ही उसके जीवन के एकमात्र आश्वासन थे। माँ के पत्र में वह अपने निराशापूर्ण दृष्टिकोण का कोई भी समर्थन नहीं पाती थी। बीच-बीच में माँ के इन आत्मतृप्त तथा आत्मस्थ पत्रों को पढ़ कर उसे ऐसा सन्देह होता था कि कहीं यह सब ढकोसला तो नहीं है, कहीं यह नकटों के ईश्वर दर्शन की तरह केवल आत्म-प्रवञ्चना का एक ढोंग मात्र तो नहीं है।

वह ठीक-ठीक कुछ भी नहीं समझ पाती थी। एक दिन जब वह गर्दन तोड़ वेग से लाहौर के बाहर मोटर साइकल दौड़ा रही थी, तो उसने देखा कि उसके सामने एक मोटर साइकल जा रही है। उसने गति बढ़ा कर उस साइकिल को पकड़ने की चेष्टा की। एकाएक उसके दिमाग में यह झक सी चढ़ गई कि कुछ भी हो इस मोटर साइकल को पकड़ना ही पड़ेगा। सामने मोटर साइकल वाले ने मानो उसकी यह बात समझ कर और भी गति बढ़ा दी। बड़ी देर तक यह होड़ चलती रही। अन्त में सुजाता को ऐसा मालूम हुआ कि वह प्रति मिनट सामने की साइकल के नजदीक जा रही है। उसके बाद उसने आश्चर्य के साथ देखा कि सामने की मोटर साइकल एक बार रुक गई और उसका चालक एक युवक जल्दी से उतर कर अपनी मशीन की जाँच करने लगा। चारों तरफ गेहूँ के खेत थे, कहीं कोई नहीं था।

मोटर-विलासियों के शिष्टाचार के अनुसार सुजाता ने आगे जाने का विचार त्याग कर, ब्रदर मोटरिस्ट की सहायता के लिए गाड़ी रोक दी।

'ये लो, आपकी मशीन बिगड़ गई।'

युवक ने यंत्र की तरफ से एक बार मुँह उठाते हुए कहा—'मैं अभी पाँच मिनट में सब ठीक किए लेता हूँ,—कह कर वह औजार निकाल कर मोटर ठीक करने लगा।

सुजाता ने एक दृष्टि से देख लिया कि युवक ऊँचे घराने का है, और उसे पंजाब के युवकों में भी सुन्दर मानना पड़ेगा। उसका शरीर मानो नसों से नहीं, लोहे के तारों से बँधा था, यह बात सुजाता ने उसे काम करते हुए देख कर समझ लिया। बहुत ही सलीके से उसने शाम की अंग्रेज़ी पोशाक पहन रखी थी। किसी तरफ ध्यान न देकर वह अपनी मरम्मत का काम कर रहा था। उसकी तितली मार्के की मूँछें बहुत खिलती थीं।

धीरे-धीरे छोड़े हुए दीर्घ निश्वास की तरह शाम की हवा चल रही थी। युवक कुशलता से अपना काम कर रहा था। सुजाता एक बार दूर क्षितिज तक फैले हुए टेढ़े-मेढे रास्ते की तरफ और फिर काम में लगे हुए युवक की तरफ देख रही थी। क्या युवक उसे किसी पथ का निर्देश दे रहा था?

सुजाता ने कहा—'क्या बिगड़ा है?'

युवक ने बिना मुँह उठाये कहा—'ऐसी कोई खास चीज़ नहीं'—और काम करते-करते बिना मुँह उठाये सुजाता को समझाने लगा कि क्या बिगड़ा है।

बहुत जल्दी मरम्मत खतम हो गई। युवक ने खड़े होकर सुजाता की ओर देखा। फिर साथ ही साथ अत्यन्त भद्रता के साथ बोला—'धन्यवाद, आप को जैसे मैंने इसके पहले कहीं पर देखा है, आप का शुभ नाम?'

'हो सकता है कि आपने मुझे देखा हो, मैं भी लाहोर की ही हूँ। मेरा नाम सुजाता बैनर्जी है।'

'क्या कहा? सुजाता क्या?'

'सुजाता बैनर्जी।'

युवक ने कुछ देर तक सोचा, फिर कहा—'आप का नाम मैंने सुना है। आप ही ने वेश्या वृत्ति तथा स्त्रियों के अधिकारों पर कुछ मौलिक लेख लिखे हैं न?' कह कर उसने कुछ सोचते हुए कहा—'आपके साथ परिचय प्राप्त कर खुशी हुई।

सुजाता ने भी दो एक भद्रतासूचक बातें कहीं और बोली—'अपनी तुच्छ शक्ति के अनुसार पतिता बहिनों की कुछ-कुछ सेवा करने की चेष्टा करती हूँ। इतने दिनों में केवल एक पतिता का उद्धार कर उसे भद्र जीवन में वापस ला सकी हूँ।'

युवक ने कुछ देर तक कुछ भी नहीं कहा, मानो गहराई के साथ किसी बात को सोचा, फिर बोला—'मैं हृदय से आपके उद्देश्य की प्रशंसा करता हूँ,

पर मैं समझता हूँ कि आप की खोज कुछ एकांगी है। आप केवल नारियों के कर्त्तव्य को सुन रही हैं, और उसी पर अपने सारे सिद्धान्त को खड़ा कर रही हैं। पर इस विषय में पुरुषों का भी कुछ कर्त्तव्य है। नारी आन्दोलन में प्रगति तथा वेग बल लाने के लिए नारियों को शहीद के रूप में दिखलाना शायद अधिक उपयुक्त है, पर आप जिस प्रकार की आलोचना कर रही हैं, वह एकांगी है। समाज विज्ञान भी एक विज्ञान ही है, इसलिए वैज्ञानिक की निरपेक्ष दृष्टि की आवश्यकता है। जोश में आकर बह जाना उचित न होगा।'

सुजाता ठीक-ठीक नहीं समझ पा रही थी कि युवक का क्या कहना है, बोली—'आप अपने कर्त्तव्य को कुछ और स्पष्टता के साथ कहें।'

'मान लीजिए जैसा कि आपने एक वेश्या की जीवनी में लिखा था कि सौतेली माँ की सन्तान से परेशान होकर वह लड़की एक युवक के साथ भाग गई, फिर युवक के विलायत चले जाने पर वह गुंडे के हाथों में पड़ गई......

'निक्को की कहानी'—बात काटते हुए सुजाता ने कहा।

युवक एक मिनट के लिए जैसे घबड़ा गया, पर फौरन अपने को सँभाल कर बोला—'निक्को हो, बिट्टो हो, या शन्नो हो इससे कुछ नहीं आता जाता। आपने सब दोष उस युवक पर ही डाल दिया मानो उसने पहले से षड़यंत्र कर सब काम किया था पर सब बातें इस प्रकार से नहीं हुआ करतीं। मैं मानता हूँ कि कुछ लोग पहले से सोच-विचार कर षड़यंत्र करते हैं, पर एक बीस-बाइस साल के भद्र युवक के लिए ऐसा मानने को दिल नहीं चाहता।'

सुजाता नहीं जानती थी कि यही वह युवक है जो निक्को को लेकर भागा था।

युवक उत्तेजित होकर कहने लगा—'यदि बहुत कम भी कहा जाय तो यह अन्याय है। युवक कोई अपनी खुशी से विलायत में बैरिस्टर होने नहीं गया था, यदि उसके लिए संभव होता तो वह शायद कभी भी न जाता। इसके अतिरिक्त उसने अपनी किशोर बुद्धि के अनुसार विलायत जाते समय अपनी प्रेमिका के लिए रहने का सब प्रबन्ध किया था, पर उसके जाने के तीन ही दिन बाद सब प्रबन्ध गड़बड़ हो जायगा, यह वह क्या जानता था? उसने शायद विलायत से पत्र भी लिखा था। अब वह बिल्कुल अप्रत्याशित रूप से गुंडों के हाथ में पड़ गई, इसमें किसका दोष है?' ज़रा रुक कर और भी कड़वे लहज़े में उसने कहा—'और यह कौन कह सकता है कि वह युवक निक्को को लेकर भागा था? यदि निक्को ने ही उसे ऐसा करने के लिए मजबूर किया था तो...'

अपनी उत्तेजना से स्वयं लज्जित तथा भयभीत होकर वह चुप हो गया। सुजाता बोली—'आपके विचार मौलिक तथा दिलचस्प हैं। आपके साथ विचार-विनिमय की सुविधा मिले तो खुशी होगी। आपका परिचय ?'

'मेरा नाम हरिकिशन है।' उसके बाद उसने लाहौर के एक प्रसिद्ध धनी मुहल्ले का नाम लेकर कहा—'वहाँ पर स्वर्गीय सर राम किशन बाबा के घर पर मिलूँगा।'

'ओह, वे तो लाहौर के प्रसिद्ध बैंकर थे, आप उनके......'

'मैं उनका एकमात्र पुत्र हूँ।'

हरिकिशन ने स्पष्ट देखा कि सुजाता के चेहरे पर पहले से अधिक सम्मान की भावना आ गई, वह मन ही मन आत्म-प्रमोद से हँसा।

सुजाता ने अकस्मात् कहा—'आपने जो बातें कहीं उन्हें लिखकर छपा क्यों नहीं देते ?'

'आलस्य, परमालस्य, इसके अतिरिक्त यह मेरी लाइन नहीं है, समझीं ?'—वह अपने शुभ्र दाँतों को निकाल कर हँसा।

'देरी हुई जा रही है,' हरिकिशन ने कहा। 'किसी दूसरे दिन विस्तार से बातचीत होगी, आप हमारे गरीबखाने में किसी दिन पधारें। अब चलिए'—

दोनों अपनी-अपनी मोटर साइकलों पर सवार हुए। हरिकिशन की साइकल ने आसानी से सुजाता को पीछे छोड़ दिया। बहुत कोशिश करने पर भी सुजाता उसके साथ न चल सकी। हरिकिशन तीर की तरह बढ़ कर अदृश्य हो गया। सुजाता ने कुछ देर बाद देखा कि हरिकिशन साइकल रोक कर रास्ते के बगल में एक बहुत बड़े वृक्ष के पास खड़ा होकर सूर्यास्त देख रहा है। उसके तरुण सुन्दर चेहरे पर डूबते सूर्य की रोशनी एक विषादपूर्ण समारोह के साथ पड़ रही थी। सुजाता ने सोचा कि हरिकिशन कलाकार है, कवि है, या केवल भावुक है जो प्रकृति के समस्त उत्सवों के साथ ही निकटता का अनुभव करता है। हरिकिशन के चेहरे पर एक अनिर्वचनीय तृप्ति सुनहले अक्षरों में लिखी थी।

साइकल की फटफट की आवाज़ सुन कर हरिकिशन ने मुड़ कर देखा और एक छलांग में अपनी साइकल पर चढ़ कर स्टार्ट दे दिया। अगल-बगल में फिर दो मोटर साइकलें चलने लगीं।

अब बस्ती आ गई थी। बस्ती के लोग इस जोड़ी की तरफ देख कर मुस्करा रहे थे। इसी बात को ध्यान में रखकर या अन्य जिस किसी कारण

से हो, एक मोड़ पर हरिकिशन सुजाता को एक छोटा-सा नमस्कार कर अलग हो गया।

गोधूलि की इस वेला में इस नव परिचित तरुण के साथ इस प्रकार से अलग हो जाना सुजाता को कवित्वपूर्ण और ऐतिहासिक ज्ञात हुआ। अनजाने में उसे एक बार सव्यसाची की याद आई, तत्पश्चात् उसने सोचा कि अब सव्यसाची के साथ उसका सम्बन्ध ही क्या है? उसने एक क्षण के लिए सव्यसाची के साथ हरिकिशन की तुलना की, पर अगले ही क्षण अपने विचार-प्रवाह से स्वयं ही सिहर कर दूसरी बात सोचने लगी। अब वह शहर के हृत्पिण्ड में आ पहुँची थी। अब बहुत ही सावधानी से साइकल चलानी पड़ रही थी।

कई दिन बाद सुजाता नोट लेने के लिए कॉपी, फाउण्टेन पेन आदि लेकर हरिकिशन के मकान पर पहुँची। बहुत बड़ा मकान था, जिधर देखो उधर नौकर ही नौकर थे। कहीं पर किसी स्त्री का पता नहीं था।

हरिकिशन खाकी कमीज़, खाकी हाफ पैण्ट, ब्रिचेज और बूट में था। दूर दीवार पर चाँदमारी बनी हुई थी और एक तरफ दो-तीन राइफलें और कारतूस का बक्स रखा हुआ था।

बन्दूकों की तरफ दिखाते हुए हरिकिशन कहा कहा—'आप इनका कुछ जानती हैं?'

सुजाता मुस्करा कर बोली—'मैं केवल इतना ही जानती हूँ कि ये बन्दूकें हैं, वे करतूस हैं और हाँ वह चाँदमारी है।'

सुजाता के हाथ में एक बन्दूक देते हुए हरिकिशन ने कहा—'तो आप तो फिर सभी कुछ जानती हैं। केवल बाकी रहा इतना जानना कि किस प्रकार से गोलियाँ भरी जाती हैं और किस प्रकार से दागी जाती हैं।' यह कह कर उसने अपनी हाथ को रायफल की मैगजिन में सट से गोलियाँ भरीं और बिना किसी को सावधान किये चाँदमारी पर धाँय-धाँय गोली चलाने लगा।

सुजाता ने आश्चर्य के साथ हरिकिशन की ओर देखा। हरिकिशन ने जब मैगजिन खाली कर ली तो सुजाता की ओर देखा, बोला—'यह मेरा एक व्यसन है, इसमें मैंने बहुत समय नष्ट किया।'

'और कितने रुपये?'

'रुपये तुच्छ हैं, पर समय का मूल्य है।'

'आप अवश्य ही अच्छे निशानेबाज होंगे?'

बालक की तरह उत्साह से हरिकिशन ने कहा—'सो भी नहीं होऊँगा ? मैं आपके सिर पर एक सेव रख कर उसे मार सकता हूँ ।' यह कर कर सचमुच ही सुजाता को अपना कौशल दिखाने को तैयार हो गया ।

सुजाता ने किंचित् भयपूर्ण मुद्रा से किन्तु मुस्करा कर कहा—'रहने दीजिए, मैं यों ही आपका लोहा माने लेती हूँ ।'

'आप शायद डर रही हैं । मेरा मतलब हिचकिचा रही हैं । अच्छी बात है '—कह कर हरिकिशन सीधा मकान के अन्दर गया और एक छोकरे को तथा सेव को लेकर लौटा । बहुत बढ़िया कुल्लू का सेव ।

इशारा पाते ही छोकरा सिर पर सेव रख कर बैठ गया । सुजाता का हृदय धड़कने लगा । माना कि हरिकिशन अच्छा निशाना मारता है, और उसमें अविचलित आत्मविश्वास है, पर यदि किसी कारण से जरा मामला गड़बड़ा गया तो एक बहुमूल्य प्राण समाप्त हो जायगा । बहुत खतरनाक खेल है, इतना अधिक कि प्रायः अमानुषिक है ।

हरिकिशन ने बन्दूक उठा ली, और बिना निशाना लिये ही धाँय से मार दिया । एक क्षीण धुआँ निकला । सुजाता का हृदय धक-धक कर रहा था । उसके जीवन में ऐसा अनुभव कभी नहीं हुआ ।

सेव छिन्न-भिन्न हो गया, और साथही साथ वह छोकरा तालियाँ पीटते हुए हँसते-हँसते हरिकिशन के सामने आ कर खड़ा हो गया । हरिकिशन ने खूब ज़ोर से उसकी पीठ ठोंकी ।

सुजाता को ऐसा मालूम दिया कि वह एक नाटक देख रही है । वह मन ही मन हरिकिशन की दक्षता की प्रशंसा बिना किये नहीं रह सकी । उसे ऐसा मालूम दिया कि यह व्यक्ति धीरे-धीरे उसके सारे अस्तित्व पर शासन स्थापित कर रहा है । एक रहस्यमय आकर्षण से वह खिंची जा रही थी ।

बन्दूक के अन्य प्रकार के कौशल दिखाते-दिखाते दस बज गये । सुजाता इसके बाद नोट लिखने का प्रस्ताव न कर सकी । उस समय नोट लिखने का प्रस्ताव उसे कुछ अशोभन-सा प्रतीत हुआ ।

इस प्रकार सुजाता बीच-बीच में कॉपी लेकर आती पर लंदन, पैरिस, बर्लिन और न जाने कहाँ-कहाँ की कहानी छिड़ जाती । उसी में घंटों बीत जाते और लिखना रह जाता । बाद को सुजाता ने नोटबुक लाने की आवश्यकता ही नहीं समझी ।

: ३४ :

सव्यसाची को एक दिन लम्बे लिफाफे में बीमा द्वारा भेजा हुआ एक पत्र मिला। उसे पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों के बीच-बीच में मोटी-मोटी चिट्ठियाँ मिला करती थीं पर यह चिट्ठी तो बीमा की हुई थी, तथा कुछ दूसरे ही ढंग की थी। इस लिफाफे के भेजने वाले उसके ताऊ राय साहब हरिकेशव थे।

सव्यसाची ने लिफाफे को फाड़ कर देखा तो उसमें से सौ-सौ रुपये के बहुत से नोट निकले। सव्यसाची ने उसको अलग रख कर साथ के पत्र को फाड़ा। पत्र यों था :

'तुम्हारी माँ श्रीमती स्नेहलता की मृत्युशय्या के पास मैं सपरिवार उपस्थित था। यथा साध्य चिकित्सा करने पर भी भगवान् की इच्छा पूर्ण हुई। मेरी ही सलाह के अनुसार वे मकान मुझे दे गईं। शर्त यह थी कि यदि तुम किसी दिन अपना गलत रास्ता छोड़ कर सनातन भद्र रीति के अनुसार व्याह करके गृहस्थ हो जाओ तो यह मकान तुम्हें लौटाया जायगा, नहीं तो इस मकान को बेच कर जो धन मिलेगा वह किसी विश्वविद्यालय को दे दिया जायगा।

'अब मैं विश्वस्त सूत्र से जान चुका हूँ कि तुम गलत रास्ता छोड़ कर गृहस्थ हो चुके हो, इसलिए मैं तुम्हारा मकान तुम्हें वापस दे रहा हूँ। मकान के स्वामित्व के लिए जिन दस्तावेज़ों की आवश्यकता होती है, मैं उन्हें इसी पत्र में भेज रहा हूँ। इतने दिनों तक मकान के किराये से जो आमदनी हुई है, वह हिसाब करके इसके साथ भेजी जा रही है।

'इसके साथ ही तुम्हारी ताई जी बहू जी को अशीर्वाद के रूप में पाँच सौ रुपये भेज रही हैं, वे भी इसी लिफाफे में बन्द हैं।

'आशा करता हूँ कि भविष्य में तुम ऐसे चलोगे जिससे तुम्हारे वास्तविक हितैपियों को सुख हो।

'हम लोगों का आशीर्वाद।

तुम्हारा हितैपी

(रायसाहब) हरिकेशव।'

सव्यसाची को जब यह पत्र प्राप्त हुआ तो उसकी समझ में यह न आया कि वह हँसे या नाराज़ हो। अवश्य उसे मकान तथा रुपये पाने पर प्रसन्नता हुई। विवाह करके दूसरे के मकान में रहने की असुविधा को वह अनुभव करने लगा था, विशेप कर ऐसा विवाह जिसमें पति ने प्रण किया था कि वह स्त्री के साथ एक अपरिचित व्यक्ति की तरह व्यवहार करेगा।

सव्यसाची ने उसी दिन किरायेदारों को नोटिस दे दिया और उनके जाते ही वह सपरिवार उस मकान में पहुँचा। सव्यसाची पहुँचने को तो इस मकान में पहुँच गया, पर उसे इससे कुछ विशेष सन्तोष नहीं हुआ, क्योंकि अब उसने यह देखा कि स्त्री को अलग रखने का अर्थ उसे सीधे-सीधे एकान्तवास की सजा दे देना था। वह इतना निष्ठुर नहीं होना चाहता था। इसके अतिरिक्त वह अपने सम्बन्ध में भी कुछ डर रहा था। डर यह था कि बहुत दिनों तक एक मकान में रहने पर न मालूम क्या हो। उसने नाराज़ हो कर चौबीस घंटों के लिए एक नौकरानी रख ली। बनारस में ऐसी नौकरानी बहुत आसानी से मिल गई। इसके अतिरिक्त वह अपने मित्र रसिकलाल तथा उसके मित्र कवि करुणाकान्त को अक्सर बुलाने लगा।

नित्य सन्ध्या समय जमकर एक अड्डा बैठने लगा। स्वभावतः ऐसे अड्डों में जूता सिलाई से लेकर बड़ी से बड़ी आध्यात्मिक समस्या पर विचार होता था। करुणाकान्त और आशीष कुमार इन सब वाग् युद्धों में प्रधान भाग लेते थे। विवाह के बाद से सव्यसाची को न मालूम क्या हो गया था, वह किसी विषय पर जोशीला व्याख्यान नहीं देता था। मानो उसके व्याख्यानों का स्रोत ही सूख गया था। जो सव्यसाची बात के अन्दर से बात बनाता था, और जिसकी हर बात में मौलिकता की छाप होती थी, वह जैसे कि आघात से एकाएक झुक गया था। अवश्य उसके नियमित जीवन में कोई अन्तर नहीं आ रहा था, यंत्र चालित की तरह वह सभी काम किये जाता था, पर वह उत्साह, लगन, स्पर्धा कुछ भी नहीं रह गई थी। उसके जीवन में जैसे कहीं घुन लग चुका था।

करुणाकान्त आज सन्ध्या समय की बैठक में कह रहे थे—'कविता बहुत ही कृत्रिम वस्तु है...जो उसे पढ़ता है, उसके लिए शायद उतनी नहीं, पर जो लिखता है उसके लिए अवश्य कृत्रिम है। यहाँ तक कि लिखने के बाद स्वयं कवि के लिए कविता स्वाभाविक हो जाती है, परन्तु लिखते समय यह साहित्य के अन्य अंगों की अपेक्षा अधिक कृत्रिम होती है।'

आशीष कुमार ने बातों को बीच ही में काटकर कहा—'आप तो बिल्कुल ही नई बात कह रहे हैं, हम तो बराबर कुछ दूसरा ही सुनते आ रहे थे...'

'हाँ, आप लोग बराबर पढ़ते-सुनते आ रहे हैं, पर वह गलत है। मैं अपने अनुभव से कह रहा हूँ। मैं जिस बात को कह रहा हूँ पहले उसे समझने की चेष्टा कीजिए। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि कवित्व की अनुभूति ही कृत्रिम है। नहीं, वह कृत्रिम नहीं है। यदि स्वल्प मेघ युक्त दिवस में कोई उषाकाल में पूर्व

की ओर उगते हुए सूर्य की ओर ताके और आकाश की उस स्वर्ण रजत मण्डित छवि की ओर निहारे तो आसानी से उसके मन में एक आनन्दानुभूति जाग्रत होगी, पर उसकी कविता में अर्थात् छन्दोबद्ध भाषा में व्यक्त करना दूसरी बात है। वह कम हो या अधिक हो कृत्रिम ही है। इतना तो अवश्य है कि रचना करते समय कवि स्वयं उस कृत्रिमता का अनुभव करता है। जो लोग छन्द रचना में सिद्धहस्त हो गये हैं, उनको यह कृत्रिमता बहुत कुछ नहीं अखरती। उन्हें एक तुक के लिए आध घण्टे तक भटकना पड़ता है बहुधा तुक ही इस बात का निर्णय करता है कि कविता का रूप क्या होगा।

मैं कहना चाहता हूँ कि मोर नाचता है, पर इस बात को कह नहीं सकता। हिन्दी भाषा में पड़त के साथ तुक बैठ सकता है, ऐसे एक गड़त, चढ़त, लड़त, गिरत, मरत इत्यादि हैं, इसलिए मेरे मन में मोर नाचने वाला जो भाव है, उसे या तो पीटपाट कर इन्हीं गड़त, चढ़त आदि के अन्दर ले आना ही पड़ेगा या उसे अगली किसी पंक्ति के लिए स्थगित रखना पड़ेगा। परंतु समय-समय पर तुक ढूँढ़ने में कुछ लाभ ही है। मान लीजिए कि वर्षा के वर्णन में मुझे कदम्ब, मोर, इन्द्रधनुष सब चीजें याद आई, पर यह याद नहीं आई कि सूखे पत्ते गिर रहे हैं, पर तुक खोजते हुए मुझे गिरत मिला, तो मुझे पत्तों के गिरने की बात याद आई तो मैंने कहा :

पातें गिरत।

इस क्षेत्र में केवल तुक ही तलाश करते हुए हमें एक नया भाव मिला, यह कवि के लिए लाभ की बात हुई। रही अन्त्यानुप्रास हीन कविता...उसमें भी संस्कृत की तरह लघु, गुरु न हो, वजन का बखेड़ा है ही।

डाक्टर ने कहा—'आप स्वयं कवि होते हुए ऐसी बात कह रहे हैं।'

'हाँ, कवि होते हुए मैं ऐसी बात कह रहा हूँ, केवल कवि नहीं, सबकी राय से मैं एक बड़ा कवि मान लिया गया हूँ।'—बूढ़े कवि ने एक बार चारों तरफ देख लिया, फिर बोला—'फ्रांस के सुप्रसिद्ध लेखक अनातोल ने कविता से अपने साहित्यिक जीवन का सूत्रपात किया था, पर बाद को इन सब असुविधाओं का अनुभव कर, और यह देख कर कि उनकी प्रतिभा का एक बहुत बड़ा भाग तुक और छन्द के बखेड़े में नष्ट हो रहा है, उन्होंने सम्पूर्ण रूप से पद्य छोड़ कर गद्य लिखना शुरू किया।'

डाक्टर ने आवेश में आकर कहा 'इससे तो अनातोल की पद्य प्रतिभा

की कमी सूचित होती है न कि और कुछ। फ्रेंच प्रतिभा की ही यह विशेषता है कि वह गद्य में ही अपने को व्यक्त कर सकती है। आप रवीन्द्रनाथ के सम्बन्ध में क्या कहते हैं ?

इस प्रकार से आलोचना में गर्मी आती थी। कवि करुणाकान्त आज जिस मत का प्रतिपादन जोश के साथ करते थे, ठीक दस दिन बाद उसके विपरीत मत को उससे अधिक जोश के साथ प्रतिपादित करते थे, पर इससे कुछ आता-जाता नहीं था। बात करने की यदि कोई कला है, तो मानना पड़ेगा कि करुणाकान्त उसके आचार्य थे। जो वाद-विवाद वितंडा या झगड़े में परिणत होने जा रहा है, उसे अकस्मात् वे परिहास की हवा दे कर ठंडा कर देते थे। युवक उन्हें बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। उनके अन्दर का विरोधाभास युवकों को विशेष रूप से आकर्षित करता था। उन्हें यह इच्छा होती थी कि बूढ़ा हो तो ऐसा हो। भारतीयों में करुणाकान्त एक रोमन थे।

सव्यसाची कोने में बैठ कर खूब बातें सुनता था, और बीच-बीच में बहुत ही मजबूर किये जाने पर दो-एक बात कह देता था। जैसे फ्रेंच साहित्य पर बात चल पड़ती तो उसे दो-एक बात कहनी ही पड़ती।

इसी प्रकार से उसके दिन जा रहे थे। संघ के मंत्रिपद से वह इस्तीफा देने की बात सोचा करता था। उसकी पक्की धारणा हो गई थी कि अब उसका जीवन बिल्कुल नीरस हो चुका है।

वह बीच-बीच में विषाद भरी दृष्टि से सरला की ओर देखता था। उसे ऐसा मालूम होता था कि उसी के लिए सरला का जीवन नष्ट हुआ जा रहा है, पर वह न तो उसके पास ही जाता था, और न उससे बात ही करता था। बुढ़िया नौकरानी यह सब देख कर दाँतों तले अँगुली दबाती थी।

कई एक दिन से सरला के एक दाँत में दर्द होता था। वह बीच-बीच में कराहती थी। सव्यसाची ने बुढ़िया से पता लगाया कि क्या मामला है, फिर डाक्टर को बुलवा भेजा। डाक्टर ने आकर क्रियोजोट या न मालूम क्या दवा भर दी, उससे दर्द घटा, पर आधी रात तक दवा का प्रभाव घट गया, और वह फिर कराहने लगी। बगल के कमरे में सव्यसाची सरला का यह कराहना सुन रहा था, पर कुछ किया नहीं जा सकता था, इसलिए चुप रहा।

सारी रात इस कराहने के कारण उसका स्नायु परेशान रहा, एक सर्वग्रासी असहायता और विरक्ति की भावना ने उसके सारे अस्तित्व पर सिक्का जमा

लिया था। उसे अकस्मात् यह बात याद आई कि वह जेल में इससे अधिक शान्ति में था। अपनी इस अजीब धारणा से वह स्वयं सिहर उठा।

कभी धीरे और कभी जोर से कराहना जारी रहा। बीच-बीच में सरला जैसे सो जाती थी, और फिर बीच-बीच में ओह, ओह, ओह करती थी।

जिस समय सवेरे सव्यसाची उठा, उस समय भी यह कराहना जारी था। उसके मन में दया का संचार हुआ। वह सरला के कमरे में जाकर बोला—'देखें क्या हुआ।'

सरला उठ बैठी, और कुछ गुमसुम होकर अपने दाँत की तरफ इशारा करने लगी। उसका तरुण चेहरा मलिन हो गया था, उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में वेदना की छाप थी, परन्तु उस हालत में भी सव्यसाची के आने के कारण उसका चेहरा लाल पड़ गया। वह भूल गई कि उसे दर्द है, एक ऐसा दर्द जिसने उसे रात भर सोने नहीं था।

सव्यसाची ने खोले हुए मुँह के अन्दर देखने की चेष्टा की, पर उसे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा। बड़ी देर तक देखने के बाद उसने कहा—'किस तरफ दर्द है?''

सरला ने अंगुली से बायें मसूढ़े के अन्तिम दाँत को दिखला दिया। सव्यसाची ने फिर देखने की चेष्टा की, पर कुछ दिखाई नहीं पड़ता था। बड़ी देर तक देख कर उसने देखा कि जीभ बीच में पड़ रही है। उसने तब दाहिने हाथ की अनामिका से जीभ को दबा कर बायें हाथ से सरला के सिर के पीछे के हिस्से को पकड़ कर रोगग्रस्त दाँत को देखने की चेष्टा की, पर यह क्या हुआ? अँगुली जीभ के स्पर्श में आते ही उसने सरला के होंठ में सशब्द लोलुप चुम्बन किया—सरला को ऐसा अनुभव हुआ मानो एक तरुण ने अपने हृदय को इस चुम्बन के अन्दर ढाल दिया।

सरला ने उसके इस आकस्मिक व्यवहार से आश्चर्य कर अपनी बड़ी-बड़ी वेदना-क्लिष्ट आँखों को विस्फारित कर उसे देखा, फिर एक तृप्ति से उसने दोनों आँखें बन्द कर लीं।

सव्यसाची को ऐसा मालूम पड़ा कि पीछे से कुछ खट से आवाज़ हुई। वह जल्दी से पकड़े गये चोर की तरह उठ खड़ा हुआ, और जल्दी से वहाँ चला गया। वह अपनी इस आकस्मिक दुर्बलता से बहुत लज्जित तथा क्षुब्ध हुआ था। सरला, वह तो उसी की स्त्री है, पर इससे क्या? उसने तो ऐसा नहीं चाहा था। उसने तो सुजाता को ही अपना हृदय दे रखा था। वह हर समय गुप्त रूप से

उसी की चिन्ता करता है, यद्यपि वह जानता है कि वह उसे नहीं पायेगा, पाने का कोई रास्ता ही नहीं है। वह पश्चाताप की अग्नि में जलने लगा।

उसी दिन वह सरला को उसके मामा के घर छोड़ आया, और अकेला रहने लगा। वह अब अपने पर विश्वास नहीं करता था। ममिया-ससुर से उसने कहा कि वह कुछ दिनों तक अकेला रहना चाहता था। रसिकलाल को मालूम था कि उसका दामाद कुछ सनकी है, इसलिए उसने कुछ नहीं कहा।

इन्हीं दिनों धर्मशीला छः घंटे के हैजे में मर गई। सुजाता को आने का अवसर ही नहीं मिला।

: ३५ :

मातृ वियोग के बाद कई मास व्यतीत हो गये हैं। सुजाता कुछ तो समय के आरोग्यकारी प्रभाव से और कुछ कार्य के दबाव से शोक भूलने लगी थी। इसी बीच में वह दो दिन के लिए बनारस गई थी, पर न तो उसने किसी के साथ भेंट की थी और न वह मकान के बाहर गई थी। वह केवल अशोक के ही कारण गई थी। मातृ-वियोग का शोक शिथिल होने पर भी उसके मन में अशान्ति थी, वह स्वयं नहीं समझ पा रही थी कि वह क्या चाहती है, पर एक अभाव के कारण उसका मन वेदनापूर्ण रहा था। वह चाहती थी कि कार्य-व्यस्तता से अभाव को पूर्ण कर दे।

एक दिन सुजाता कॉपी वगैरह ले कर हरिकिशन लाल के घर गई कि आज वह अवश्य ही नोट लिख कर लौटेगी। स्त्रियों की ओर से लिखे गये वक्तव्य को उसने इतने दिनों में लिपिबद्ध किया था, अब वह चाहती थी कि पुरुषों के वक्तव्य को जनता के सामने रखे। अवश्य वह मोटे तौर पर हरि-किशन की बात जानती थी, पर वह उसे पद्धति के अन्दर लाना चाहती थी।

अभिवादन आदि सामान्य शिष्टाचार के बाद हरिकिशन ने कहा—'कहिए खैरियत तो है? इतनी कॉपियों को लेकर कहाँ जा रही हैं? क्या कोई नया लेख लिखा है?" वह ज़रा मुस्कराया।

'नहीं, यह सब लेकर आप ही के पास आई हूँ।'

मेरे पास?' आश्चर्य में हरिकिशन बोला।

'हाँ, आप ही के पास, आपने वह सब क्या कहा था, उसे लिखाइये।'

'ओह, यह बात!' कह कर हरिकिशन कुर्सी पर बैठ गया।

सुजाता भी सामने की कुर्सी पर बैठ गई और नोट-बुक इत्यादि को पास की मेज़ पर रख दिया।

हरिकिशन कुछ अन्यमनस्क-सा होकर सुजाता की तरफ शून्य दृष्टि से देख रहा था। उसके उज्ज्वल गोरे चेहरे पर लाली दौड़ गई। सुजाता ने उसकी तरफ देखा, पर उसकी विषादपूर्ण आकुल दृष्टि को सहन न कर पाकर उसने आँखें नीची कर लीं।

अकस्मात् हरिकिशन जैसे नींद से जगते हुए बोल उठा—'मुझसे क्या लिखना चाहती हो ?'

उसकी आँखों की नसें स्पष्ट रूप से लाल हो गई थीं। उसका चेहरा इतना गम्भीर हो गया था कि वह रूखा मालूम होता था। सुजाता ने उसे इन आठ महीनों के परिचय में कभी इतना गम्भीर नहीं पाया था।

'आप बराबर यह कहते आये हैं कि अपने लेखों में मैंने स्त्रियों को शहीद रूप में चित्रित किया है, यह गलत है, पुरुषों की ओर से आपने कहा था, बहुत कुछ कहना था।'

'आपका कहना है कि वेश्या वृत्ति तथा स्त्रियों की दुरवस्थाओं के लिए पुरुषों पर सारी जिम्मेदारी डाल कर जो लोग निश्चिन्त होकर बैठे हैं, वे बिल्कुल गलती पर हैं। मैं चाहता हूँ कि आप अपने विचारों को ढंग से सजाकर कहिए,' सुजाता ने कॉपी खोल कर फाउण्टेनपेन निकाल कर लिखने की तैयारी कर ली।

हरिकिशन ने कहा—'नहीं, नहीं, कॉपी-वापी हटाइये। यदि मेरे दिमाग में कुछ विचार आते भी होंगे तो इनको देख कर वे काफूर हो जायेंगे।' वह जरा मुस्कराया, पर उसकी मुस्कराहट अजीब थी। उसकी काली-काली तितली नुमा मूँछों के नीचे शुभ्र दन्तों की पंक्ति चमक गई। आज सुजाता को यह दंत-पंक्ति हमेशा से अधिक चमकीली मालूम हुई।

हरिकिशन अकस्मात् उठ खड़ा हुआ और बोला—'अच्छा, आज मैं एक व्यक्तिगत पश्चात्ताप से शुरू करूँगा'—कह कर उसने चारों तरफ ताक कर देखा कि कोई देख या सुन तो नहीं रहा है, फिर उसने कमरे के दरवाजे भीतर से बन्द कर लिये।

सुजाता का हृदय धड़क रहा था। वह पीली पड़ गई, पर जब हरिकिशन फिर से आकर मामूली तरीके पर कुर्सी पर बैठ गया, और मानो कुछ याद करते हुए आँखें बन्द कर लीं, तब उसे तसल्ली हुई।

अत्यन्त आकस्मिकता के साथ हरिकिशन ने रुँधी हुई आवाज में कहा—'निक्को की बात तो आपको याद होगी न ?'

'हाँ।'

कुर्सी पर सम्हल कर बैठते हुए हरिकिशन ने जोशीली आवाज़ में कहना शुरू किया—'मैंने उन दिनों अभी एफ० ए० की परीक्षा दी ही थी, उस समय निक्को के साथ मेरा परिचय हुआ। निक्को एक अधखिली कली-सी थी। मेरे और उसके घर की हालत एक ही थी। उसके पिता उसकी सौतेली माँ के द्वारा बरगलाये जाकर उसका उत्पीड़न करते थे और मेरे पिता अपने व्यापार, अपनी यूरोपियन तथा ऐंग्लो इंडियन उपपत्नियों को लेकर इतने व्यस्त रहते थे कि उन्होंने करीब-करीब मेरी उपेक्षा कर दी। अवश्य मेरे हाथों में प्रचुर रुपये और एक बंगला रहता था और आदमियों द्वारा जितनी मेरी देख-रेख हो सकती थी होती थी। एक दिन निक्को की सौतेली माँ ने न मालूम किस छोटी-सी बात के लिए उसे मारा, वह मेरे निकट आकर रो पड़ी। मैंने बहुत चाहा कि उसे समझा-बुझा कर घर लौटा दूँ, पर वह तब तक बराबर रोती-बिलखती रही जब तक मैंने उससे यह वायदा नहीं किया कि उसे किसी भी हालत में हटाऊँगा नहीं। मैं पहले तो डरा कि क्या कह गया, पर वादा कर चुका था, उसे बंगले के एक कमरे में रखा। मैं उसके पास दिन भर रहता था, वह मुझ से प्रेम करती थी, इसमें सन्देह नहीं। वह एक अद्भुत समय था। कालेज से आने में जरा भी देरी होती तो वह हैरान हो जाती। मेरे सिर में ज़रा भी दर्द होता तो वह रोने लगती। वह एक अनोखा ही युग था। उस युग में सभी बातें भली मालूम होती थीं।

अब थोड़ी देर रुक कर हरिकिशन बोला, 'यह नहीं कि मेरे पिता कुछ जानते न हों, पर वे कुछ बोलते नहीं थे। बोलते किस मुँह से? पर केवल यही बात नहीं। उनकी यह आदत थी कि दूसरों के मामलों में कभी हस्तक्षेप नहीं करते थे। वे यह भी चाहते थे कि उनके मामलों में भी कोई हस्तक्षेप न करे। वे प्रति इंच शरीफ आदमी थे। अवश्य अपने ढंग के शरीफ। मैं उनके बंगले पर नहीं जाता था, वे ही बीच-बीच में मुझे स्वयं बुला भेजते थे। मैं डरते हुए जाकर खड़ा हो जाता था। बड़े-बड़े साहब उनके सामने खड़े होकर बात करते थे। मुझे पुत्र रूप में केवल इतना अधिकार था कि मैं जब उनके दफ्तर में जाता, तो चपरासी फौरन एक कुर्सी लाकर रख देता। एक दिन उन्होंने मुझे सन्ध्या समय टेलीफोन से बुलाया। मन ही मन डर कर मैं पहुँचा। चपरासी लोग मेरे आने की बात जानते थे, मेरी मोटर साइकल रुकते ही वे सीधा मुझे पिताजी के बैठने के कमरे में ले गये। वे सन्ध्या की पोशाक में सिगार फूँक रहे थे।

वे जिस समय बैंक में जाते थे उस समय अपनी उम्र से दस साल बड़े जँचते थे, पर इस पोशाक में में इस समय वे अपनी उम्र में पन्द्रह साल छोटे जँचते थे। पता नहीं इसमें क्या रहस्य था? उन्होंने मुझे कुर्सी पर बैठने का इशारा किया और सिगार पीते-पीते मेरे मुँह की तरफ देखने लगे। सिगार बुझा कर उन्होंने अंग्रेजी में कहा—'माई बॉय, तुम कैसे हो?'

'अच्छा तो हूँ पापा।'

'सुन कर खुशी हुई, पर तुमने बहुत जल्दी शुरू कर दी, है यह बात कि नहीं?'

मैं रहस्य पीड़ित और भयभीत होकर उनकी तरफ ताकने लगा। उन्होंने मेरे लज्जित चेहरे को न देखा हो ऐसी बात नहीं, पर उन्होंने लघुता के साथ कहा—'खैर, तुम बी० ए० कब दे रहे हो?'

'अगले साल, पापा!'

'अच्छी बात है, मन लगा कर पढ़ो, मैं चाहता हूँ कि तुम्हारा बी० ए० का रिज़ल्ट अच्छा हो!'

मैंने कहा—'कोशिश करूँगा।'

'अच्छा, यह अच्छे लड़के की बात है, तुम्हें कुछ चाहिए तो नहीं?'

'कुछ नहीं, पापा।'

उन्होंने मुझे पास बुला कर खूब गम्भीरता से हाथ मिलाया, फिर कहा—'जो कुछ भी करो, कभी अपने असली काम से मुँह न मोड़ो, यही सफलता का रहस्य है।'

मैं चला आया। सचमुच ही यही उनकी सफलता का रहस्य था। उन्होंने हमेशा आमोद-प्रमोद को अपने व्यापार से अलग रखा।

निक्को मेरे लिए बहुत धड़कते हुए हृदय से प्रतीक्षा कर रही थी। मेरी बातें सुन कर उसे तसल्ली हो गई, पर मेरे मन में एक खटका लगा, सो लग गया। हम लोगों का प्रेममय जीवन फिर चलने लगा। कई साल देखते-देखते बीत गये। मैंने बी० ए० अच्छे नम्बरों में पास किया। यहीं से मेरे दुर्भाग्य और निक्को के सर्वनाश का सूत्रपात हुआ। अब मैं सोचता हूँ कि क्यों न बी० ए० में फेल हो गया। पापा ने एक दिन मुझे बुला कर कहा कि तुम्हें पढ़ने के लिए विलायत जाना होगा। मैं तो विपत्ति में पड़ गया। पर पापा ने मुझे दिखलाया कि मेरा पासपोर्ट ले लिया गया है। यहाँ तक कि जहाज में सीट तक बुक हो गई

है। केवल यही नहीं, उन्होंने अपने विलायत में रहने वाले मित्रों के नाम परिचय पत्र भी लिख रखा था। मना करने की गुंजाइश ही नहीं थी।

बीच में केवल ग्यारह दिन थे।

निक्को को मैंने सब बातें कहीं। वह ऐसे हृदय विदारक रूप से रो रही थी कि उसे सान्त्वना देना कठिन था। मैंने निक्को के रहने का प्रबन्ध किया था, पर पापा स्त्रियों के मामलों में अधिक भावुकता पसन्द नहीं करते थे। वे शायद यह समझते थे कि एक स्त्री को इस बात का अधिकार नहीं है कि वह अपने प्रेमिक से जीवन भर जोंक की तरह लिपटी रहे। बम्बई तक मुझे पहुँचा कर उन्होंने आज्ञा दी कि मेरे बंगले को खाली कर दिया जाय। इसके बाद निक्को का क्या हुआ, आप जानती ही हैं। यह कह कर हरिकिशन रुमाल से आँखें पोंछने लगा। सचमुच ही उस की आँखों से अश्रुधारा जारी थी।

सुजाता ने निक्को के प्रेमिक को एक बदमाश समझा था, एक ऐसा बदमाश जिसका मुँह नहीं देखना चाहिए, पर अब अपने सामने के आदमी में उस व्यक्ति का आविष्कार कर उसमें करुणा का ही संचार हुआ। धीरे-धीरे हरिकिशन के चेहरे पर से भी पश्चाताप की वह भावना दूर हो गई, और फिर वह सुजाता की तरफ डरे हुए तथा आकुल नेत्रों से देखने लगा। उसकी इस विक्षुब्ध और परेशान दृष्टि के मुकाबले में सुजाता की दृष्टि नीची हो गई। हरिकिशन अनुभव कर रहा था कि उसके अन्दर कोई एक चीज़ धीरे-धीरे, बहुत धीरे जग रही है, यह चीज़ भूतकाल के पश्चाताप से सम्बन्धित नहीं थी। इसके अन्दर भविष्य का सङ्गीत था। जितना ही उसके अन्दर यह अज्ञात भाव जागने लगा, उतना ही उसका चेहरा एक कठिन भाव धारण करने लगा। सहानुभूति प्राप्त करने की एक व्याकुल तथा उष्ण इच्छा उसके अन्दर छटपटाने लगी। उसने अकस्मात् अनुभव किया कि वह दुःखी और परित्यक्त है और उसे एक अवलम्बन की आवश्यकता है।

सुजाता मानो बताई हुई कहानी की बात ही सोच रही थी, उसने अकस्मात् कहा—'तो आप ही निक्को के......'

अधैर्य के साथ इस बात को ग्रहण करते हुए हरिकिशन ने कहा—'हाँ, मैं ही वह अभागा हूँ। आप अवश्य मुझसे घृणा कर रही होंगी...'

'नहीं, नहीं, घृणा क्यों करूँगी? आपका तो इसमें कोई दोष नहीं ज्ञात होता'—जल्दी में सुजाता ने कहा।

'नहीं, आप जरूर घृणा कर रही हैं'—कह कर हरिकिशन अकस्मात्

अपनी कुर्सी को पास में लाकर एक तरह से उछलते हुए विक्षिप्त की तरह सुजाता के पैरों में गिर पड़ा, गिड़गिड़ा कर बोला—' आप मुझे क्षमा कर दें।'

सुजाता ने जल्दी से पैर छुड़ाते की चेष्टा करते हुए कहा—'क्या बच्चे की तरह कर रहे हैं ?'

पर हरिकिशन उसी एक बात की रट लगाता रहा—'मुझे माफ़ कर दीजिए, मुझे माफ़ कर दीजिए।'

बड़े कष्ट से सुजाता अपने पैरों को छुड़ा पाई। पर हरिकिशन का हाथ सुजाता के हाथ में रह गया। हरिकिशन निरंतर रो रहा था।

हरिकिशन उत्तेजित हो कर कह रहा था—'कहिए, बोल दीजिए कि आप मुझे माफ़ कर रही हैं।'

सुजाता कह रही थी—'हाँ, हाँ कर दिया, कर दिया, आप क्या कह रहे हैं ? दुर्भाग्य या और क्या ?'

हरिकिशन ने अपने हाथ में सुजाता के कोमल हाथ का स्पर्श अनुभव किया। एक निमेष के अन्दर ही उसके मन में अन्य बहुत-सी नारियों का स्पर्श स्मरण हो आया। इसके पहले उसने जितनी स्त्रियों को स्पर्श किया था, उनमें यही शायद सबसे अधिक अननुभूत-सा प्रतीत हुआ। फिर भी निक्को के मुकाबले में यह हाथ कुछ भी नहीं। एक परिभाषा हीन विषाद तथा साथ ही साथ एक आनन्द ने उसके सारे शरीर में रोमांच पैदा कर दिया।

हरिकिशन ने सिसकते हुए कहा—'नहीं, आपने मुझे क्षमा नहीं किया, क्षमा कीजिए। कीजिए'—कह कर उसने फिर सुजाता के दोनों पैरों को पकड़ लिया। सुजाता उसे कोशिश कर उठाने लगी, पर यह क्या, सुजाता ने देखा कि हरिकिशन और वह एक दूसरे के गाढ़ालिंगन में बद्ध हैं। हरिकिशन उसकी आँख पर, नाक पर, ओठों पर, सर्वत्र सैकड़ों अग्नि-गर्म चुम्बन अंकित कर रहा है। सुजाता ने आँखें बन्द कर लीं। उसका सारा शरीर शिथिल हो गया। वह अपने रोम-रोम में एक संदिग्ध आनन्द का अनुभव कर रही थी।

सुजाता की तरफ़ से कोई जवाब नहीं मिला।

'कहो, कहो, कि तुम मुझसे प्यार करती हो। मेरी राधा, मेरी देवी, मेरी साधना।'

सुजाता ने अस्फुट क्रन्दन की तरह एक शब्द किया।

हरिकिशन ने उसके ओठों को चूमते हुए उसकी वाणी को नीरव कर दिया।

सुजाता के दोनों ओठ कुछ हिल उठे, उसकी आँखें तो बन्द थी हीं। वह प्रायः रोती हुई प्रतिवाद के सुर में बोल उठी—'प्यार करती हूँ...'

हरिकिशन उसको आलिंगित अवस्था में ही उठा ले गया।

घंटा भर बाद सुजाता बालों को ठीक करती हुई बाहर निकल गई। वह अपना नोटबुक तथा फाउण्टेनपेन भूल कर जा रही थी।

: ३३ :

सव्यसाची की शादी के ठीक डेढ़ वर्ष बाद एक दिन रास्ते में उससे और भवानन्द से भेंट हो गई।

सव्यसाची एक जरूरी लेख लेकर किसी स्थानीय पत्रिका के दफ्तर में जा रहा था। उसने उसका ख्याल नहीं किया था। भवानन्द ने ही उसे देखा और ठिठक कर खड़ा हो गया। नमस्कार, सव्यसाची जी!

सव्यसाची ने उसे देख कर पहिचानते हुए कहा—'नमस्कार, कैसी तबियत है?'

'अच्छा ही हूँ। पर हजार हो, इस उम्र में दौड़ धूप नहीं होती'—वह हँस रहा था।

सव्यसाची ने गम्भीर होकर कहा—'कैसी दौड़ धूप?'

'वह शादी हुई थी न, तो उससे एक लड़का हुआ। उसी लड़के के अन्नप्राशन के लिए दौड़-धूप है। बुढ़ापे का लड़का है न इसलिए जरा शान के साथ उत्सव होगा। आपके संघ के प्रत्येक व्यक्ति को न्यौता रहा, कृपा कर पधारिए और बच्चे को आशीर्वाद दीजिए। मेरा घर तो आप लोगों को मालूम ही है।'

बूढ़ा मानो नम्रता की प्रतिमूर्ति हो रहा था। उसके चेहरे की तरफ ताक कर सव्यसाची ने देखा कि उसका स्वभाव पहले से अच्छा है।

सव्यसाची ने कुछ नहीं कहा।

भवानन्द ने पूछा—'आपकी तबियत कैसी है?'

'अच्छी है।' सव्यसाची ने संक्षेप में कहा।

'चेहरा देख कर तो ऐसी कोई बात नहीं मालूम हो रही है। आपका चेहरा कुछ मलिन है। इधर कुछ बीमार थे क्या?' सहानुभूति के लहजे में भवानन्द ने पूछा।

सव्यसाची ने जल्दी में कहा—'नहीं, नहीं, अच्छा तो हूँ।'

'कुछ लड़के-बाले?'

'नहीं'—न मालूम क्यों भवानन्द के सामने यह बात कहते हुए सव्यसाची को लज्जा मालूम हुई कि वह यदि भवानन्द के सामने कुछ और कह सकता तो अच्छा रहता।

भवानन्द ने तसल्ली के तौर पर कहा—'इसमें कोई बात नहीं, मेरी भी पहली स्त्री का पहला लड़का शादी के तीन साल बाद हुआ। सब उसी परमेश्वर की लीला है।'

इसके बाद उसने हाथ मिलाते हुए कहा—'हम लोग किस खेत की मूली हैं ? उनकी इच्छा न होने पर कुछ भी नहीं हो सकता। सूर्य उन्हीं के आदेश से तपता, और चन्द्रमा उन्हीं की इच्छा से चाँदनी देता है......'

वह चला जाने लगा, पर दस कदम आगे बढ़ कर फिर लौटते हुए बोला—'याद रहे कि परसों दिन बारह बजे मेरे घर पर संघ के सब सदस्यों का न्यौता है, प्रत्येक के घर पर जाकर अलग-अलग न्यौता नहीं दे सकता, इसलिए क्षमा प्रार्थी हूँ'।

क्या बुड्ढा हँस रहा था? सव्यसाची ने देखा कि भवानन्द हँस रहा था। पर उसे क्रोध नहीं आया। वह मन ही मन स्वीकार करने के लिए बाध्य हुआ कि भवानन्द को हँसने का यथेष्ट कारण है। उसी ने न इसी आदमी के पास से छीनकर सरला से शादी की है। भवानन्द सरला को जितना सुखीकर सकता था, वह क्या उसे उससे अधिक सुखी नहीं कर सकता था? सच बात तो यह है कि उसने उसे अधिक सुखी किया है। उसने केवल हठवश दो जीवन को अखण्डनीय रूप से नष्ट कर दिया, सरला का जीवन और अपना। वह गम्भीर विषाद के साथ मन ही मन सब बातों की आलोचना करने लगा। उसे ऐसा मालूम हुआ कि उसने शादी कर के भूल की है। मान लिया कि भवानन्द सरला के योग्य पात्र नहीं था, तो उसे शादी करने से रोक लेता, बस। पर वह स्वयं उसकी जगह लेने लगा? अवश्य डाक्टर और मित्रों ने उसे बाध्य किया था, पर उसे अपनी बुद्धि भी तो खर्च करनी थी। इस शादी के बाद उसने कितनी ही बार यह सोचा था कि वह इस शादी में राजी क्यों हुआ? कैसे राजी हुआ? निश्चय ही उस समय उसका दिमाग ठीक नहीं था? इसके पहले ही पुलिस वालों ने उसे गिरफ्तार क्यों न कर लिया? उसे जब डाक्टर ने वर के आसन पर बैठा दिया तो सुजाता ने उसे हाथ पकड़ कर घसीट क्यों न लिया? ओह, ऐसा होता तो कितना अच्छा रहता, पर अब उन सब बातों को सोचकर क्या लाभ है?

अब बात यह है कि वह अपनी विवाहित पत्नी को लेकर क्या करेगा?

उसकी तो साँप-छछून्दर की गति हुई, न तो निगला ही जाता है, न उगला ही जाता है। बड़ी कठिन समस्या थी। वह कुछ सोच नहीं पा रहा था कि क्या करे। सरला को पत्नी रूप में ग्रहण करना यह तो जघन्यता, अपने सब विचारों की हत्या करना होता। फिर सुजाता! यह तो हो ही नहीं सकता।

इसलिए उसने मजबूर होकर अनागत भाग्य के हाथों में अपने को सौंप दिया। तलाक हिन्दुओं में नहीं और होता भी तो वह कुछ न कर पाता क्योंकि उसने तो जान बूझ कर दूसरे के हाथ से छीन कर शादी की है, अब उसे कैसे अस्वीकार कर सकता था।

सव्यसाची पत्रिका के दफ्तर के सामने पहुँच गया था। वह भीतर घुस गया।

: ३७ :

सुजाता ने हरिकिशन के घर पर सात दिन, यहाँ तक कि बहुधा रातें भी काटनी शुरू कर दीं। उसकी लिखाई-पढ़ाई, स्त्री समस्या पर लेख आदि सब बन्द हो गया। सम्पादकगण उससे लेख माँगने के लिए जो पत्र लिखते थे, वह उनका उत्तर भी नहीं देती थी। उसके लाहौर के मकान में जो बुढ़िया रहती थी वह सुजाता पर यों ही खुश नहीं रहती थी, अब तो रंग-ढंग देख कर बिल्कुल आपे से बाहर हो गई, पर सुजाता भी इन दिनों बहुत अभिमानपूर्ण मुद्रा में रहती थी, इसलिए बुढ़िया कुछ कहने की हिम्मत नहीं करती थी, बस कुनमुना कर अपनी मौत माँगती रहती थी! धर्मशीला जीवित होती तो उसे लिखवा भेजती पर वह तो बहुत दिन हुए मर चुकी थी। इसलिए बुढ़िया के पास इसके अतिरिक्त कोई चारा नहीं था कि वह माला जपे। वह ईश्वर से हर समय यह कहती थी—'भगवान् सभी तो गये, क्यों मुझे ब्रह्मा की तरह आयु देकर यह सब देखने के लिए जीवित रखा है? मेरे जीने में कौन-सा सुख है? मुझे जल्दी उठा लो।'

बुढ़िया की यह मानसिक अवस्था अधिक दिन तक स्थायी नहीं रही। वह फिर नियमपूर्वक अपने सब काम करने लगी।

यही उसके पीछे जीवन का रहस्य था।

सुजाता बीच-बीच में यह सोचती थी कि जब वह हरिकिशन के साथ पति-पत्नी के रूप में रह रही है, तो बाकायदा सिविल मैरेज़ ऐक्ट से उसकी रजिस्ट्री क्यों न करा ले, पर यह बात उसके गले तक आकर रह जाती थी। हरिकिशन से यह बात छेड़ने की हिम्मत नहीं होती थी। बात यह है कि हरि-

किशन ने बार-बार उससे कहा था कि विवाह युग प्रथा जिस युग में भी उपयोगी रही हो, अब उसकी कोई भी उपयोगिता नहीं है, बल्कि अब वह एक जंजाल मात्र हो रहा है।

सुजाता स्वयं भी इस बात को मानती थी, पर लड़के-बच्चे होना एक बहुत गड़बड़ में डाल देने वाली बात है। समाज की वर्तमान अवस्था तथा जनमत की इस हालत में लड़के-बच्चे और विवाह प्रथा का लोभ इन दोनों बातों में कोई सामंजस्य मालूम नहीं होता था। वह अनुभव कर रही थी कि उसमें इतना साहस नहीं है कि वह जनमत को इस प्रकार अँगूठा दिखा सके।

वह सम्पूर्ण रूप से हरिकिशन के प्रेम स्रोत में बह रही थी, न आगे देख रही थी न पीछे। बीच-बीच में उसके मन में भूत की तरह एक भयानक सम्भावना झाँक जाती थी, पर वह उस तरफ ध्यान नहीं देती थी। वह एक अद्भुत रहस्य मय तरीके से सोचती थी कि उसके सम्बन्ध में यह सम्भावना पूर्ण नहीं होगी पर उसको इस सम्बन्ध में धोखा हुआ।

एक दिन वह उत्तेजित अवस्था में हरिकिशन के घर आई।

'हरिकिशन'—सुजाता के स्वर में स्पष्ट उत्तेजना थी।

हरिकिशन ने उसकी ओर आश्चर्य से देखा।

'क्या?'

इस क्या शब्द को उसने इतनी निश्चिन्तता के साथ कहा कि सुजाता एक क्षण के लिए लज्जित हो गई कि शायद वह एक बहुत ही तुच्छ घटना को अत्यन्त अधिक महत्त्व दे रही है, पर अगले ही क्षण वास्तविकता अपने पूर्ण रूखेपन में उसके सामने आ गई। वह दृढ़ता के साथ ही कोमलता के लिए भी कुछ स्थान रख कर बोली—'अब रजिस्ट्रेशन करा न लिया जाय?'

विषादपूर्ण अन्यमनस्कता के साथ हरिकिशन ने कहा—'कौन-सा रजिस्ट्रेशन?'

'शादी का।' सुजाता ने डरते हुए कहा।

हरिकिशन ने कोई उत्तर नहीं दिया, ज़रा सोचकर बोला—'इतनी जल्दी काहे की है? बाद को देखा जायगा।'

सच बात तो यह है कि हरिकिशन शादी ही नहीं करना चाहता था। सिद्धान्त रूप से वह विवाह का विरोधी तो था ही, इसके अतिरिक्त अपने पिता के उदाहरण से, तथा अपने अनुभव से उसने समझ लिया था कि विवाह a:I.

मानो अपने हाथ पैर बाँध लेना है। निक्को और सुजाता के बीच में वह और भी कई स्त्रियों के सम्पर्क में भारत तथा विलायत में आ चुका था। उसे यह भ्रमरवृत्ति पसन्द थी। वह बड़ी-बड़ी बातें कह कर अपने लम्पटमय रूप को ढकने की चेष्टा करता था। ऐसा भी पूरे तरीके से नहीं कहा जा सकता, क्योंकि सच तो यह है कि उसमें नैतिक बुद्धि उत्पन्न ही नहीं हो पायी थी। फिर भी बहुतों के निकट वह क्रान्तिकारी रूप में परिचित था, और वह शायद अपने को भी यही समझता था।

खड़ी सुजाता ने कुर्सी में बैठे हुए हरिकिशन के कमीज़ के प्लैटिनम के बटनों को लेकर, खोलते हुई बोली—'नहीं, रोका नहीं जा सकता।'

इसके बाद धीरे से मानो सहलाकर उसने कहा—'मुझे शायद गर्भ रह गया है।'

'ऐं'—उसने सुजाता के चेहरे की तरफ विस्फारित नेत्रों से देखा। जिसका सत्यानाश हो चुका हो उसे लोग जिस दृष्टि से देखते हैं, हरिकिशन ने उसी दृष्टि से सुजाता को देखा। उसके मन में दया का संचार हुआ, पर दया उसी प्रकार की थी, जिस प्रकार की दया एक मुसाफ़िर दूर से एक दूसरे मुसाफिर को गाड़ी के नीचे दब जाते हुए अनुभव करता है। सुजाता के इस सत्यानाश के साथ हरिकिशन ने अपना कोई व्यक्तिगत सम्बन्ध नहीं देखा। वह मानो इसी की आशा कर रहा था।

सुजाता ने बटन छोड़ कर अपेक्षाकृत गम्भीर स्वर में कहा—'तो जितना जल्दी हो उतना ही अच्छा है। क्यों?'

हरिकिशन ने कुछ नहीं कहा।

बहुत देर तक दोनों चुप रहे, सुजाता ने अन्त में फिर कहा—'कुछ कहते क्यों नहीं?'

हरिकिशन ने पहले तो कोई उत्तर नहीं दिया, फिर बोल उठा—'तुम जानती हो कि मैं इस प्रकार की गद्‌गद् भावुकता का विरोधी हूँ।'

सुजाता ने कुछ ललकार के साथ कहा—'वाह रे विरोधी! पर एक तथ्य एक तथ्य है।'

हरिकिशन ने दीवार की ओर मुँह फेर कर कहा—'हो सकता है।'

सुजाता उसके चेहरे की ओर अवाक् भय से देख रही थी। क्या आदमी इतनी जल्दी बदल सकता है? और इस प्रकार? और ऐसे भयंकर समय में?

जब उसे सब तरह की सहानुभूति, प्रेम, तसल्ली यहाँ तक कि शारीरिक सेवा की आवश्यकता है। उसने क्रुद्ध होकर कहा—'इसका अर्थ ?'

हरिकिशन को मानो अब सुध आई, वह सीधा होकर बैठते हुए बोला—'देखो, सुजाता, तुम मेरे घर पर आकर रहो, बच्चा यहीं पैदा हो। तुम्हारी यह कैसी धारणा है कि सरकारी दफ्तर में जाकर एक खाना पूरी करने के लिए कह रही हो जिससे न तुम्हें फायदा है न मुझे, न बच्चे को। हम जो हैं, सो ही रहेंगे, वह भी जो होगा सो होगा। तुमने सब कुसंस्कारों पर विजय प्राप्त कर ली और अब आकर एक चार अंगुल के कागज़ के मोह में फँस गईं। हाँ, एक बात है कि इस कागज़ के अभाव के कारण वह बच्चा सम्पत्ति का अधिकारी न हो सकेगा, तुम जितना कहो सम्पत्ति में अभी उसके नाम लिख दूँ और कोई आपत्ति है तो कहो।'

सुजाता ने सिर हिलाते हुए कहा—'ऐसा नहीं हो सकता, रजिस्ट्री जरूरी है।'

हरिकिशन ने हाथ को निराशा के साथ पटकते हुए कहा—'जब कोई कारण नहीं दोगी तो, मैं क्या कर सकता हूँ। मैं इस प्रकार की भावुकताओं में नहीं पड़ना चाहता।'

सुजाता क्रोध के मारे उबलती हुई दूसरे कमरे में जाकर बैठ गई। उसने सोचा कि हरिकिशन रोज़ की तरह उसकी खुशामद करने आयेगा, पर हरिकिशन नहीं आया। हरिकिशन असमय होते भी चादर तान कर लेट गया और सोता रहा।

एक घंटा हुआ, दो घटे हुए, पर तिस पर भी जब हरिकिशन नहीं आया तो वह निराश हो गई। वह तब उठ कर हरिकिशन के कमरे में गई।

हरिकिशन निश्चिन्त होकर सो रहा था मानो कुछ भी नहीं हुआ। सुजाता ने उसके सिर पर हाथ रख दिया तो वह अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को खोल कर ताकने लगा, फिर आँखें बन्द कर लीं। सुजाता उसके सिरहाने बैठ कर उसके सिर पर स्नेह के साथ हाथ फेरने लगी।

'सुनते हो ?' सुजाता ने विनय से कोमल स्वर में इन बातों को पूछा।

'हूँ'

'रजिस्ट्री करा न लो, उसके बाद हम कितने सुख से रहेंगे।'

'हूँ'

'हूँ क्या ?'

हरिकिशन ने आँखें खोल लीं, फिर सुजाता के हाथ को हटाते हुए बोला—'एक बार कह दिया कि इन बातों में विश्वास नहीं करता। तुम्हारी इच्छा हो मुझसे सम्बन्ध रखो, न इच्छा हो न रखो।'

सुजाता ने स्तम्भित होकर कहा—'क्या कहा?'

'कुछ नहीं,' कह कर हरिकिशन निकल कर सीधा गैरेज की ओर गया, थोड़ी ही देर में मोटर साइकिल की परिचित फटफट आवाज़ सुनाई पड़ी।

क्षोभ, अपमान, तथा लज्जा से काठ मारी हुई सुजाता कुछ देर बैठी रही, फिर वह भी धीरे-धीरे निकल गई। जाते समय उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि हरिकिशन के साथ उसका सब सम्बन्ध समाप्त हो गया। एक बात उसके हृदय में मरोड़ से उठी, पर जाने दिया जाय। उसने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि वह हरिकिशन के मकान में फिर कभी नहीं जायगी।

पर घटनाचक्र से यह प्रतिज्ञा टिकी नहीं।

घर लौट कर वह इस नई अवस्था के सम्बन्ध में जितना ही सोचने लगी, वह उतना ही किंकर्तव्यविमूढ़ होने लगी। वह सन्ध्या समय हरिकिशन के पास गई, उसे भय दिखलाया, धमकाया, विनय की, रोई-पीटी, पर हरिकिशन टस से मस नहीं हुआ। वह अपने हठ पर दृढ़ रहा।

इस प्रकार खुशामदें पन्द्रह दिन तक चलती रहीं, अन्त में सुजाता हरि-किशन के विनय में निराश हो गई। उसकी निराशा और असहायता इतनी दूर बढ़ गई कि उसे ज्वर आ गया। हरिकिशन के पास उसने खबर भेजी, पर आदमी अकेला लौट आया।

इन दिनों जब सुजाता निराशा के सागर में निरन्तर उतराती-डूबती रही। भविष्य के विषय में प्रतिक्षण दुःस्वप्न देख रही थी और उसका स्वास्थ्य गिर रहा था, उस समय उसके ज्वरग्रस्त मस्तिष्क में जेठ की तपी हुई भूम पर आषाढ़ की कुमारी धारा की तरह एक विचार आया।

वह कुनैन की एक बड़ी मात्रा खा कर उसी दिन काशी के लिए रवाना हो गई। रास्ते में उसका ज्वर छूट गया, और आशा ने फिर उसके मन में सुनहले जादू का विस्तार किया।

:: ३८ ::

इन दिनों सव्यसाची सवेरे से शाम तक पढ़ने-लिखने में जुटा रहता था। वह आजकल पत्रों में जिन लेखों को प्रकाशित करवाता था, उनमें उसके मित्र निराशावाद की झलक पाते थे। कम से कम उनमें स्वस्थ और जोरदार आशा-

वाद की कमी थी, इसमें संदेह नहीं। उसके लेखों पर उसके जीवन की छाया पड़ रही थी, इसमें आश्चर्य ही क्या है?

पर सव्यसाची के अन्दर आग नहीं मरी थी। वह केवल प्रतिकूल परिस्थितियों की राख में दबी हुई थी। वह समझ रहा था कि यह अपने ही दोष के कारण हो या दूसरे के दोष के कारण हो, वह जिन जिन परिस्थितियों का शिकार हो रहा था उनसे मुक्त होना जरूरी था। पर उनसे उसे कैसे छुटकारा मिलेगा, यह वह किसी भी प्रकार समझ नहीं पा रहा था।

सव्यसाची ने शादी कर जो गलती की थी, उसे यदि वह इच्छा-शक्ति के प्रबल प्रयास से सार्वजनिक रूप से स्वीकार कर सकता, और उसके परिणाम को, जो उसके गले में एक चक्की की तरह लटक रहा था, कानून के द्वारा या अन्य किसी प्रकार से हटा सकता तो उसके जीवन में फिर वह स्वच्छ प्रवाह आ जाता। पर कुछ तो लज्जावश, और कुछ ज़िद्द वश, जिसे भाग्य के विरुद्ध दुर्जय अभिमान कहा जा सकता है, और बहुत कुछ इस कारण कि वह समझता था कि यदि वह इस परिस्थिति से हट कर सुखी होने की चेष्टा करे तो वह कायरता होगी, क्योंकि त्याग से मुँह मोड़ना होगा, इसलिए वह कुछ कर नहीं पा रहा था। यही उसके चरित्र का रहस्य था। यही उसके चरित्र की पहेली थी।

सरला से अलग रहते हुए भी वह प्रतिमास सरला के लिए एक उचित भत्ता रसिकलाल को दिया करता था, और किसी को भी उसने इशारे से भी अपनी विपत्ति की बात नहीं बताई थी। वह अपने दुःख के बोझे को आप ही ढो रहा था। उसने अपने हृदय के इस घाव को न तो किसी के निकट खोल कर रखा था, और न कभी रखने की इच्छा करता था।

एक सरला ही जानती थी कि उसकी क्या परिस्थिति है। सव्यसाची सन्ध्या समय बैठ कर अपने कमरे में अपने छोकरा नौकर के साथ कैरम खेल रहा था। उसे एक कैरम बोर्ड मित्रों से विवाह के उपहार के रूप में मिला था। बीच-बीच में जब पुस्तक पढ़ते-पढ़ते उसकी आँखें दर्द करने लगतीं थीं, तब वह कैरम लेकर बैठ जाता था। सरला के साथ बुढ़िया नौकरानी के टेढ़ी नीम चले जाने के बाद से यह नौकर रखा गया था। सव्यसाची इसे कैरम खेलना सिखाता है। इसके अतिरिक्त उसे हिन्दी भी पढ़ाता था। सव्यसाची अपने आदर्श के अनुसार इस छोकरे को घर का एक सदस्य समझता था और उससे उसी प्रकार का व्यवहार करता था।

कैरम खेलते-खेलते पीछे से मृदु पद-चाप सुन कर सव्यसाची ने पीछे

ताक कर देखा कि सुजाता है। वह हड़बड़ा कर जल्दी से उठ खड़ा हुआ, और साथ ही साथ नौकर कमरे से निकल गया।

'आप?' आश्चर्य में सव्यसाची ने पूछा, पर उसकी आँखें कह रही थीं 'तुम आवोगी, मैं जानता था।'

'हाँ, मैं ही हूँ। नमस्ते। आपको कोई बीमारी है क्या?' कुर्सी में बैठते हुए सुजाता बोली।

'नहीं; कोई शारीरिक बीमारी तो नहीं है...'

'मानसिक है?'

सुजाता के चेहरे पर दृष्टि स्थिर रख कर सव्यसाची ने कहा—'हाँ, और नहीं......'

यह पहली बार सव्यसाची ने इशारे से दूसरे आदमी को कहा कि वह मानसिक अशांति में है। उसने ऐसा किस आशा में किया कौन जाने? वह ज़रा कड़वी हँसी हँसा।

सुजाता ने अर्थपूर्ण ढंग से कहा—'मैंने सब कुछ सुना है।'

सव्यसाची समझ गया कि सुजाता क्या कह रही है, उसने बात को घुमाने के लिए कहा—'आपने लाहौर से जिन लेखों को पत्र-पत्रिकाओं में लिखा है, उनमें से कुछ मेरे देखने में आये।'

सुजाता के चेहरे पर विषाद की छाया थी। यह थोड़ी ही देर में चली गई और उसकी आँखें आत्मप्रसाद से प्रदीप्त हो उठीं। वह पहले की सुजाता की तरह बोली—'आपने पढ़ा है?'

'हाँ!'

'आपका उनके सम्बन्ध में क्या विचार है?'

'सुलिखित थे, बहुत सहानुभूति के साथ लिखे हुए हैं, पर कुछ एक-तरफ़ा हैं।'

सुजाता को याद आ गई कि उसके लेख के विरुद्ध इसी प्रकार हरिकिशन ने भी एकतरफा होने का दोष लगाया था। इस बात को याद कर उसे कुछ खुशी नहीं हुई। वह फिर विषाद के राज्य में लौट गई, और अकस्मात् अपने भीतर के जीवन के सम्बन्ध में रुलाई के साथ सजग हो गई।

सव्यसाची मन ही मन दुखित हुआ कि सुजाता ने एक भी शब्द इस विषय का नहीं कहा कि आप से ही मुझे इन विषयों पर लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई है।

सव्यसाची ने पूछा—'आपने एम० ए० करने का विचार क्या छोड़ दिया?'

'हाँ, हमेशा के लिए'—कह कर सुजाता फिर कड़वेपन के साथ एक तीक्ष्ण तथा भावपूर्ण हँसी हँसी। उसका हृदय जैसे फटा जा रहा था। सव्यसाची चौंक उठा। एक अज्ञात तथा अनागत आशंका में सव्यसाची का मन भीतर ही भीतर दब-सा गया।

धर्मशीला के विषय में बातचीत चली। बड़ी देर तक बातें होती रहीं। फिर इधर-उधर की बात होते होते बहुत समय निकल गया, इसलिए सुजाता को असली बात न कह कर उस समय चला जाना पड़ा। वह कुछ रुष्ट होकर चली गई, उसका यह रोष अपने ही ऊपर था। उसे ऐसा ज्ञात हो रहा था कि सारा जगत षड़यंत्र कर उसे सर्वनाश की ओर लिए जा रहा है वह अपने विषय में सबसे दुःखजनक जिस बात का अनुभव कर रही थी, वह यह थी कि वह अब भी हरिकिशन को प्यार करती है। सव्यसाची को देखने के बाद भी उसकी यह अनुभूति तीव्रतर हुई थी, कि किस प्रकार घटी नहीं थी।

फिर भी रोज़ एक-दो बार मानो अपने भाग्य को पूर्ण करने के लिए जाना पड़ता था, पर वह किसी न किसी कारण से असली बात छेड़ नहीं पाती थी। वह नाराज़ होकर उठ जाती थी।

इस प्रकार चार दिन बीत गये, अन्त में उसने एक दिन तय कर लिया कि जो कुछ भी हो वह आज बात को छेड़ेगी ही और अधिक विलम्ब नहीं किया जा सकता। इन चार दिनों में सव्यसाची के पास आते जाते वह समझ गई थी कि सव्यसाची उससे प्यार करता है, और शायद उसी प्यार के कारण वह सरला को पत्नी के रूप में ग्रहण नहीं कर रहा है। इन सब बातों को ध्यान में लाकर उसकी आत्मश्लाघा अवश्य तृप्त हुई, और उसने सोच लिया कि इसके कारण उसकी समस्या का हल सुगमता से होगा। इससे उसे एक तरफ और प्रसन्नता हुई किन्तु दूसरी ओर यह सोच कर कि वह प्रेम के बदले प्रेम, हृदय के बदले हृदय नहीं दे सकेगी, इससे उसने कुछ अशान्ति अनुभव की।

नहीं, वह सव्यसाची को अब हृदय-दान नहीं कर सकती। वह समय गया। एक समय था जब वह सव्यसाची को अपना सर्वस्व अर्पण कर सकती थी, पर उस समय वह हरिकिशन से परिचित नहीं थी। वह समझ रही थी कि हरिकिशन के द्वारा इस प्रकार धोखा दिये जाने पर भी हरिकिशन के प्रति उसके ये विचार बुद्धि विरोधी थे। जो उसके लिए मर रहा है, उसे तो दुत्कारना और

जिसने कायर की तरह उसे समुद्र में झोंक दिया है, समाज की क्रूर आँखों के सामने उसे फेंक दिया है, अब भी उसे प्यार करना, यह अजीब बात थी। सुजाता घर पर किवाड़ बन्द कर इस दुनिया में घंटों रोती रहती थी, पर मन पर कोई जबरदस्ती तो नहीं चलती। तो क्या करे?

उसे अकस्मात् यह बात याद आई कि यदि सव्यसाची यह कहे कि तुम्हारा काम तो बन ही जायगा इसके बदले में दाम के रूप में हृदय दे दो, तो वह क्या करेगी? नहीं, यह कभी नहीं हो सकता, हृदय तो इस तरह लेन-देन की वस्तु नहीं है।

इसके अलावा.........

हाँ, इसके अलावा सव्यसाची कभी ऐसी बात नहीं चाहेगा, वह देवता आदमी है। उसका जीवन देश के लिए, समाज के लिए, दूसरों के लिए एक निर्विच्छन्न त्याग है। सुजाता मन ही मन दुःखी हुई कि वह ऐसे एक नर रत्न से प्रेम नहीं कर सकती। कभी करती थी। अब केवल उसके प्रति भक्ति और श्रद्धा का भाव है। ऐसे एक व्यक्ति की छत्रछाया में रहना सौभाग्य का विषय है, इस बात को भी वह समझती है, पर प्रेम करना दूसरी बात है।

जब सुजाता सव्यसाची के घर में गई, तो वह घर पर नहीं था। सुजाता बैठ कर अन्यमनस्क रूप से मासिक पत्रिकाएँ उलटने लगी। मासिक पत्रिकाओं में सव्यसाची के कुछ लेख थे। लेखों को देख कर सुजाता का विषाद बढ़ गया।

सव्यसाची कुछ देर में ही घर लौटा, आकर जब सुजाता को देखा तो वह बहुत आश्चर्य करने लगा। इस भयंकर दुपहर की धूप में।

सुजाता ने मानो सव्यसाची के मन को समझ कर उसका समाधान करते हुए कहा—'बैठिए, एक जरूरी बात है।'

सुजाता को इस प्रकार गम्भीरता के साथ बात करते हुए देख कर सव्यसाची को आश्चर्य हुआ।

'कहिए!'

सुजाता और भी गम्भीर हो गई, इसके बाद संक्षिप्त आकस्मिकता के साथ कहा—'मुझे गर्भ रह गया है।'

सव्यसाची ने बहुत साफ सुना, दुबारा कहने की जरूरत नहीं पड़ी। आश्चर्य के मारे उसके मुँह से कोई बात नहीं निकली। उसने अस्फुट रूप में केवल इतना ही कहा—'ऐं...।'

'हाँ, सचमुच ऐसी ही बात है।' सुजाता ने कहा, फिर कुछ जैसे निगलते

हुए व्याख्या के तौर पर बोली—'एक बदमाश के हाथ में पड़ कर मेरी यह दुरवस्था हुई है। उसने पहले कहा था कि विवाह करेगा, फिर मुकर गया।' सुजाता मिरगी रोग से पीड़ित की तरह हँसी, उसकी आँखों से दो आँसू टपटप गिरे।

सुजाता ने इतना झूठ कहा था कि उसका सर्वनाश करने वाले ने उसके साथ शादी की प्रतिज्ञा की थी। हरिकिशन ने ऐसा वायदा कभी नहीं किया था, पर फिर भी सुजाता का यह झूठ इच्छाकृत नहीं था। वह यही कह कर पहले पहल अपने को आश्वासन दिया करती थी, फिर उसने धीरे-धीरे इसको सत्य करके विश्वास कर लिया था।

सव्यसाची एक ही निमेष में समझ गया कि क्या मामला था। यह कोई अनहोनी या अनसुनी बात नहीं थी, पर सुजाता की तरह एक बुद्धिमती स्त्री इस प्रकार की दुर्घटना की शिकार हो जायगी, यह उसे आश्चर्यजनक ज्ञात हुआ। सारे मामले को फिर भी तटस्थ होकर नहीं देख सका। उसके मनमें एक दुखान्त हाहाकार सुलग उठा। क्या यह हाहाकार सुजाता के साथ सहानुभूति जनित था? उसके दुर्भाग्य की अप्रतिकार्यता या उसे हमेशा के लिए खो डालने के दुःख, या उस अज्ञात प्रतिद्वन्द्वी के प्रति ईर्ष्यावश यह हाहाकार था?

हृदय में एक व्यथा की मरोड़ लेकर जो उसके अन्तरतम को मथित करते हुए चूर कर रही थी, उसने सुजाता के पीले चेहरे की ओर एक विषादपूर्ण तृष्णा के साथ देखा। सुजाता इस समय साक्षात् दुःख की प्रतिमूर्ति बन कर कुर्सी में डूबी हुई बैठी थी।

सुजाता ने बैठे ही बैठे अकस्मात् कहा—'सव्यसाची जी, आप मुझे इस विपत्ति से उबारिए...'

सव्यसाची ने अवाक् होकर सुजाता के मुँह की ओर ध्यान पूर्वक देखा। उसे सन्देह हुआ कि कहीं सुजाता का दिमाग तो नहीं फिर गया है।

'मैं ? मुझे कह रही हो ?'

सुजाता अधिकतर कातरता के साथ बोली—'हाँ, आप ही, आप ही मेरा उद्धार कर सकते हैं।'

सव्यसाची ने पिता जैसे रोगी कन्या से कहता है, उसी प्रकार स्नेह के साथ कहा—'कहिए, कहिए। मैं किस प्रकार आपकी मदद कर सकता हूँ। मैं तो कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूँ।'

सुजाता ने मानों इन बातों की तरफ ध्यान न देकर ही कहा—'आप ही

मुझे मदद दे सकते हैं। आपके जीवन का अंश देश के लिए त्याग है, दूसरा अंग समाज के लिए हैं। आपने ये डेढ़ साल किस प्रकार कष्ट में काटे हैं यह मैं जानती हूँ। अब एक पथभ्रष्ट स्त्री को समाज के निष्ठुर पञ्जों से बचाइए। सव्यसाची जी, मैं जानती हूँ कि मैं किसी भी नाते आप से इस त्याग की माँग नहीं कर सकती, पर फिर भी मैं बड़ी आशाएँ लेकर आई हूँ। सव्यसाची जी, यदि आप मेरा उद्धार न करेंगे तो मेरा सर्वनाश हो जायगा।' उसकी आँखों से टप टप आँसू जारी थे।

सुजाता के इस दुर्भाग्य में सव्यसाची की वास्तविक सहानुभूति होने पर भी सुजाता का यह रोना-धोना सुनकर, उसकी यह कातरता देख कर तथा बार-बार उसके मुँह से यह बात सुन कर कि आप ही मेरा उद्धार कर सकते हैं, किस प्रकार उद्धार कर सकता है यह न जान कर भी उसके हृदय का कोई एक गुप्त तार झंकृत हो उठा। उसके अन्दर के पुरुष ने यह अनुभव किया कि सुजाता आज उसकी पहुँच के अन्दर है। बाहर साँय-साँय लू चल रही थी। सव्यसाची उठ कर खड़ा हो गया और एक कदम आगे बढ़ा।

सव्यसाची को पास आते देख कर सुजाता को एक पुरानी बात याद आई। वह डर गई। उसके चेहरे ने अकस्मात् एक कठिन भाव धारण किया। उसने तीखे स्वर में कहा—'सव्यसाची जी, बैठिए, बैठिए पहले जो कह रही हूँ, उसे सुन तो लीजिए'—कह कर उसने मन ही मन सोचा कि वह जो कुछ कहने जा रही है उसे कहना ठीक होगा कि नहीं।

सुजाता के तीक्ष्ण स्वर से घबड़ा कर सव्यसाची इस प्रकार पीछे हट गया मानो उसने साँप पर पैर रख दिया था। सव्यसाची को इस प्रकार घबड़ाते देख कर सुजाता बोली—'सव्यसाची जी, मेरा दिमाग़ ठीक नहीं है, आप मुझे क्षमा कर दें'—फिर पहले की तरह कातरता से बोली, 'आप मुझे बचाइए नहीं तो मैं आत्म हत्या करूँगी।'

'छीः, क्या कह रही हैं ? आप मुझे यह तो बताइए कि मैं आपको किस प्रकार मदद दूँ। मैं जिनसे स्नेह मानता हूँ, उनके लिए हर तरह से तैयार हूँ, बताइए तो'—अन्तिम बात उसने साहस के साथ कही थी। वह साहस उसे दो तरह से मिला था, एक तो सुजाता के प्रति अपने गुप्त प्रेम से, और दूसरा उस की इस असहाय अवस्था से।

सुजाता हिस्टीरिया के रोगी की तरह दाँत से दाँत दबा कर बोली—'आप

मेरा उद्धार कीजिए' और उसके बाद एकदम चुप हो कर निस्पन्द हो गई। उसकी आँखों की पलकों का गिरना भी बन्द हो गया, मानो मर गई हो।

सव्यसाची ने कहा, 'कहिए।'

सुजाता ने कहा, 'आप ही कर सकते हैं'—कह कर वह कुछ रुकी जैसे कुछ सोचा हो फिर बोली, 'सव्यसाची जी, आप मुझसे विवाह कर लीजिए।'

'मैं? 'सव्यसाची आश्चर्य, परमाश्चर्य में पड़ गया, पर वह थोड़ी ही देर में सब बात समझ गया। पर जितना ही वह समझा, उतना ही वह हतबुद्धि होता गया। कुछ देर बाद मानो होश में आते हुए उसने कहा, 'पर मैं तो विवाहित हूँ।'

सुजाता मानो इस बात से बिल्कुल निराश न होकर बोली, 'इससे क्या? आप मुझसे भी विवाह कर लीजिए। मैं आपकी स्त्री का कोई दूसरा अधिकार छीनने नहीं जा रही हूँ, मैं नाममात्र के लिए आपकी स्त्री होना चाहती हूँ।'

यह बात कह कर सुजाता मानों स्वयं अपने प्रस्ताव की असम्भावना तथा हास्यास्पदता को समझ गई, इसलिए फफक-फफक कर रोने लगी।

सव्यसाची का प्राण जैसे एक सरौते में पकड़ा गया। वह बड़े असमंजस में पड़ गया। वह बिल्कुल हतबुद्धि की तरह बोल उठा—'ऐसा कैसे हो सकता है? यह तो बड़ी अजीब-सी बात है।'

डूबता हुआ व्यक्ति जिस तरह हाथ के पास तिनके को पकड़ कर लटक जाता है, उसी प्रकार से सुजाता बोली—'होने को क्या है? हिन्दू मत में पुरुष का बहु-विवाह सिद्ध है और मैं तो केवल नाममात्र के लिए आपकी स्त्री होना चाहती हूँ।'

निराशा की अधिकता तथा अपनी परिस्थिति की भयंकरता के कारण सुजाता वास्तविकता के साथ संस्पर्श खो चुकी थी, इसलिए वह यह नहीं समझ पा रही थी कि उसका प्रस्ताव कितना हास्यास्पद और अशोभन है।

सव्यसाची पर इन बातों का यह प्रभाव हुआ कि वह समझ गया कि इस मामले को इस बहाने टाला नहीं जा सकता कि यह असम्भव है। यह पूर्ण रूप से सम्भव था। अब सिर्फ यह रह गया कि इतना त्याग स्वीकार करने के लिए वह तैयार है या नहीं। सव्यसाची ने जब प्रश्न को इस प्रकार अपने सम्मुख उपस्थित किया, तो वह डर गया, क्योंकि वह इस प्रश्न का केवल एक तरीके

से ही उत्तर देने में अभ्यस्त था। सव्यसाची के प्रशस्त ललाट में पसीने की बूँदें ज़ोर से निकलने लगीं जैसे कोल्हू में से तेल निकलता है। वह सोचने लगा।

त्याग कोई मामूली त्याग न था। सब तरह का सार्वजनिक जीवन उसके लिए बन्द हो जायगा, केवल यह नहीं कि लोग उसे भगोड़, स्वमत-त्यागी, प्रतिक्रियावादी, ढोंगी और न मालूम क्या क्या कहेंगे? सम्भव है, काशी में उसका रहना ही असम्भव हो जाय। वह मंत्र में विश्वास न तो करता था और न करता है, पर उसने मंत्र और पुरोहित की सहायता से विवाह किया था। उसमें खैर एक बहाना था। पर इसमें? इसमें तो उससे बड़ा कारण है, वह यह कि एक स्त्री की सुख्याति, यहाँ तक कि शायद उसका जीवन भी इसी पर निर्भर है, पर इस क्षेत्र में मुसीबत यह है कि वह लोगों के सामने खोल कर यह नहीं बता सकता कि किस कारण से उसने पहली पत्नी के रहते हुए दूसरी शादी करना स्वीकार किया है। सबसे अधिक कठिनाई तो यहीं पर है। उसे चुपचाप सब व्यंग, बौछार, गालियाँ सहनी पड़ेंगीं। लोग यह कहेंगे कि उसने कामुकता, निर्लज्ज कामुकता से वशवर्ती होकर विवाह किया है। लोग यह कहेंगे कि उसने अपने सारे सिद्धान्तों पर पानी फेर दिया। उसे बगुला भगत, लम्पट और न मालूम क्या क्या उपाधि देंगे। यह इतना बड़ा त्याग है कि इसके दबाव से वह परेशान हो जायगा, शायद धस जाय। नहीं, यह बहुत बड़ा त्याग है।

वह सोचने लगा कि जब प्रत्येक अखबार में उसकी निन्दा छपेगी, लोग उसे जब जो मुँह में आयेगा, वही कह कर गालियाँ देंगे, तब क्या वह हमेशा के लिए महीने के बाद महीना, साल के बाद साल चूँ न कर इस वेदना को भी सहने में समर्थ होगा? क्या एक दिन पट से धैर्य नहीं टूट जायगा और वह इस भयंकर सत्य को जनता के सिर पर फेंक कर न मारेगा। कितना भयंकर है। सोचते-सोचते वह हतबुद्धि हुआ जा रहा था।

उसने इन बातों को एक निमेष के ही अन्दर सोच डाला। उसने मन ही मन अपने मन को टटोल कर देखा कि उसने इस विवाह को एक ऐसी बात के रूप में मान लिया है, जो हो चुकी है। ओह! उसके मन में फिर भी दुःख की इस स्थूल कर्मनाशा के अन्दर एक क्षीण आनन्द की मन्दाकिनी प्रवाहित हो रही थी, परन्तु वह केवल क्षणिक थी।

सुजाता ने देखा कि सव्यसाची इस प्रकार हतबुद्धि हो गया है कि वह जैसे मूर्छित हो गया हो। विपत्तिग्रस्त जंगली पशु की तरह उसने तीक्ष्णता के

साथ अपनी समस्त निराशा को अपनी आवाज़ को केन्द्रीभूत कर कहा—'सव्य-साची जी, मेरी रक्षा कीजिए।'

सव्यसाची सँभल कर बैठ गया, फिर कुर्सी के अन्दर मानो डूबते हुए बोला—'क्या आप समझ रही हैं कि इसका अर्थ क्या होगा? सीधी बात यह है कि मुझे मनुष्य-समाज त्यागना पड़ेगा...।'

सव्यसाची और भी कुछ कहने जा रहा था, पर चुप हो गया।

सुजाता ने कुछ रुकते हुए कहा—'तो आपसे नहीं होगा। उस हालत में मुझे कलंकमय जीवन या आत्महत्या इन दोनों में से किसी बात को चुनना पड़ेगा। अच्छी बात है!' वह मानो उठने लगी, पर उठ न सकी।

सव्यसाची ने फिर भी कुछ नहीं कहा। सुजाता की आँखों से फिर आँसुओं की लड़ी जारी हो गई।

सुजाता के अश्रु-प्लावित चेहरे की ओर देखते-देखते सव्यसाची के चेहरे ने अकस्मात् दृढ़ भाव धारण किया। उसमें वह योद्धा और शहीद जग उठे जो अपने-अपने अग्रगमन के सामने मृत्यु को भी तुच्छ समझते हैं। उसने उत्तेजित हो कर कहा—'मैं कर सकूँगा। जरूर कर सकूँगा।'

सुजाता ने सोचा कि शायद यह एक क्षणिक जोश मात्र है, इसलिए उसने निश्चित तथा निश्चिन्त होने के लिए कहा—'यह आपकी अन्तिम बात है?'

'हाँ, मेरी अन्तिम बात है'—सव्यसाची ने अधिकतर दृढ़ता के साथ कहा। वह अपने अन्दर उस समय एक सौ हाथियों का बल अनुभव कर रहा था।

सुजाता गद्‌गद् होकर बोली—'धन्यवाद, आपने मुझे जीवनदान दिया।'

पर सव्यसाची विषादग्रस्त होकर मानो एक बहुत बड़ी मंज़िल तय करने के बाद थक कर कुर्सी में डूब गया। क्या वह धन्यवाद से कुछ अधिक उम्मीद कर रहा था? कौन जानता है?

शादी जल्दी होने की जरूरत थी। सुजाता उसी दिन सन्ध्या तक बैठ कर शादी का दिन तय कर चली गई। इतनी निराशा में भी सव्यसाची को एक क्षीण आशा की रेखा दिखाई पड़ रही थी। पर यह मृग-मरीचिका की यह आशा? क्या वह अपने को धोखा दे रहा था?

: ३६ :

सुजाता के लाहौर से चले जाने की खबर जब से हरिकिशन को लगी

थी, तब से वह बहुत परेशान था। वह समझ नहीं पा रहा था कि ऐसा क्यों हो रहा है, पर कारण जो हो, वह अपने ऊपर और अपनी दुर्बलता पर बहुत नाराज़ हो रहा था, क्योंकि वह इस व्यर्थ की भावुकता में अपने यौवन की समाप्ति तथा बुढ़ापे के आगमन का लक्षण देख रहा था। यही उसके निकट बहुत भय का कारण था, क्योंकि ऐसे लोगों के निकट यौवन के अन्त का अर्थ जीवन का अर्थ था।

हरिकिशन ने एक बार सोचा कि एक तार देकर सुजाता को वापस बुलावे, पर उसकी समझ ही में नहीं आया कि वह क्या लिखे। क्या वह तार में यह लिखे कि सुजाता लौट आओ, विवाह होगा? असंभव। विवाह का नाम सोचते ही उसकी सिट्टी-पिट्टी भूल गई, उसने मुँह से कहा—'कभी नहीं, मानव जाति इससे कहीं अधिक जान चुकी है,' और ज़ोर से ठठा कर हँसने लगा।

उसने लिखने-पढ़ने में तबियत लगाने की चेष्टा की, जिससे ध्यान आसानी से लगे, वह कुछ अंग्रेज़ी उपन्यास खरीद लाया, पर किसी में भी तबियत नहीं लगी। ज़रा पढ़ते ही वह कहानी का छोर भूल जाता था। सच तो यह है कि उपन्यास पढ़ने से उसका जी और भी उचटता था। उपन्यास की प्रत्येक घटना से वह अनिवार्य रूप से अपनी कहानी में आ जाता था। वह समझ गया कि वह अपने ही उपन्यास में इतना व्यस्त है कि दूसरे के उपन्यास में सिर खपाने की उसमें प्रवृत्ति नहीं रह गई थी।

इसलिए पुस्तकें लायब्रेरी में जमा हो गईं। हरिकिशन ने पुस्तक पढ़ने को व्यर्थ समझ कर मोटर साइकल की शरण ली। वह शहर छोड़ कर दूर बहुत दूर देहात और जंगल में प्रकृति की गोद में निकल जाने लगा। फिर उसके मन में जब शान्ति नहीं आई तो वह गम्भीर हो गया। जिस रोगी की सबसे आखिरी दवा करने पर भी रोग घट नहीं रहा है, उसके मन की जैसी हालत होती है, हरिकिशन के मन की भी वही हालत हुई। वह कुछ शिथिल हो गया; उसका उतना सुन्दर स्वास्थ्य भी बिगड़ने लगा।

सुजाता को भूलने की चेष्टा में उसने दो-तीन दिन केवल सो कर काट दिये। पर उसके नतीजे में सुजाता को भूल तो सका ही नहीं, रात की नींद भी मारी गई। इसलिए एक दिन वह परेशान हो कर चप्पल पैरों से ही लगा कर निकल पड़ा। एक विषादपूर्ण उदासीनता के वशवर्ती हो कर वह रास्ते में किसी तरफ़ न ताक कर क्षिप्र और अभ्यस्त चाल से एक मकान के सामने जाकर खड़ा हो गया। एक मिनट के लिए किवाड़ पर खड़े हो कर वह हिचकिचाता रहा, पर

बाद को आँगन पार कर सीढ़ी डाक कर दो मंजिले के एक कमरे में घुस पड़ा, और सामने की कुर्सी पर धम्म से बैठ गया। उसके व्यवहार से स्पष्ट ज्ञात हुआ कि इस सीढ़ी, आँगन और कमरे के साथ उसका पुराना परिचय है।

चाँदी के मूठदार अपने मोटे बेंत को दीवार से टिका कर उसने कोट के गले के पास के बटनों को खोलते हुए सामने बैठी हुई स्त्री को पुकार कर कहा—'निक्को!'

निक्को हड़बड़ा कर उठ खड़ी हुई। इस संबोधन से उसके अन्दर का मरा हुआ भूत फिर जाग उठा। बोली—'किशन!'

'मेरा कोट उतार दे!' कह कर हरिकिशन ने दोनों हाथ ऊपर ठीक इस प्रकार उठा दिये जैसे चिड़िया उड़ने के पहले पंख उठा देती है।

आनन्द से गद्गद् होकर निक्को उसका कोट उतारने लगी। इन मौकों पर हर बार उसे जो विचार आते थे, इस बार भी वे ही विचार आये, उसने सोचा कि इस व्यक्ति के एक इशारे पर ही वह वेश्या वृत्ति छोड़कर कुल वधू हो सकती है, पर यह आशा व्यर्थ है, यह कभी भी नहीं कहेगा। एक दीर्घ निश्वास उसके हृदय के अन्दर जम कर सुलगने लगती, मानो पुराने दिनों की याद में उसके माथे पर पसीने की बूँदें आ जातीं।

कोट को खोल कर उसने खूँटी पर टाँग दिया।

हरिकिशन ने कहा—'आज मैं यहीं रहूँगा......'

'हाँ'—कह कर निक्को नीचे चली गई ताकि बुढ़िया से सब बन्दोबस्त करने के लिए कह सके।

आज उसके रूप के अन्य खरीदारों को लौट जाना है, यह भी एक बात थी, जिसके लिए प्रबन्ध करना था।

निक्को ने लौट कर निश्चिन्तता के साथ कहा—'इतने दिन कहाँ रहे?' फिर हरिकिशन की कुर्सी के हत्थे पर हाथ रख दिया। हरिकिशन ने यह देखा कि इस बीच में निक्को ने बैंगनी साड़ी बदल कर बसंती रंग की उस साड़ी को पहन लिया था, जिसे वह पसन्द करता है, यानी कभी पसन्द करता था।

हरिकिशन ने प्रश्न सुन कर ऐसा भाव दिखलाया, मानो वह नींद से चौंक पड़ा, बोला—'इतने दिन कहाँ हुए?'

निक्को बोली—'इतने दिन नहीं तो क्या करीब एक साल हो गये। इतने दिन कहाँ रहे?'

'रहे'—संक्षिप्त रूप से हरिकिशन ने कहा।

निक्को ने आगे पूछने का साहस नहीं किया।

कुछ देर सोच कर हरिकिशन ने पूछा—'अच्छा सुजाता नाम की कोई औरत यहाँ आती थी?' अभी तक हरिकिशन का दिमाग़ सुजाता से ही भरा हुआ था।

'क्या कहा? कौन?'

'सुजाता, शायद, बैनर्जी।'

'हाँ, हाँ, कुमारी सुजाता यहाँ आती थी, उनका क्या?'

'कुछ नहीं, यो हीं कह रहा था,' हरिकिशन चुप हो गया। वह सोच रहा था।

पर निक्को ने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया, उसने सोचा कहीं दाल में काला जरूर है। हरिकिशन के चेहरे को आँखों से वजन करती हुई वह बोली—'तुमने उन्हें कैसे जाना?'

'कैसे जाना?' सारा लाहौर और पंजाब उन्हें जान रहा है, मैं क्यों न जानूँ। उनके लेखों से देश में एक सनसनी आ गई है।'

हरिकिशन इतना कभी नहीं बताता, पर चूँकि वह एक जगह फँस गया था, इसलिए अपनी जान बचाने के लिए उसने पूरी बात कह देना उचित समझा।

'अच्छा', निक्को ने कहा मानो वह अब समझ गई। उसने और भी कहा—'मेरे भी दुर्भाग्य की कहानी को उन्होंने छपवा दिया था।'

'हाँ।'

'उस कहानी में मेरा असली नाम नहीं दिया था, पर तुम समझ गये थे न?'

'हाँ, यह कौन सी मुश्किल बात थी? खूब समझ गया था।' हरिकिशन ने धीरे से एक दीर्घ विश्वास ग्रहण किया। भूले हुए जमाने की कुछ बिखरी हुई तस्वीरें उसकी आँखों के सामने नाच गईं।

हरिकिशन ने कहा—'निक्को और करीब आओ......'

'वाह मैं तो पास ही हूँ, आना कैसे होता है।' अत्यन्त कोमल स्वर से निक्को ने कहा। अभी तक वह अपने हरिकिशन से प्रथम यौवन की उष्णता देकर प्रेम करती थी। हरिकिशन को पास पाकर उसे ऐसा ज्ञात होता था कि उसने अपने खोये हुए मनुष्यत्व को वापस पा लिया है। उसके हृदय के बहुत जोर से बन्द किये हुए किवाड़ उसी के सामने एक दम से खुल जाते थे।

हरिकिशन ने कहा—'देख, इधर आ।' यह कह कर उसने निक्को की ठुड्डी को अपनी आँखों के सामने कर लिया। स्त्री शरीर के स्पर्श की तीव्र अनुभूति ने उसके अन्दर फैल कर उसे गम्भीर कर दिया। वह निक्को के मुँह से एक बित्ता दूर पर अपने मुँह को रख कर बड़ी देर तक उसे आँख गड़ाये देखता रहा, मानो वह अपने भूतकाल के साथ योगसूत्र स्थापित कर रहा था। उसने अकस्मात् पहले से अधिक गम्भीर होकर निक्को के मुँह को खींच कर अपने मुँह के साथ मिला लिया, पर चुम्बन नहीं किया।

निक्को ने अनुभव किया कि हरिकिशन के ओठों में कोई गर्मी नहीं थी। वे संगमरमर की मूर्ति की तरह ठंडे हो रहे थे, पर वे अधिक देर तक ठण्डे नहीं रहे।...कई मुहूर्त्त के अन्दर वे आग की तरह हो गये और निक्को ने आकर्षणकारी दृढ़ बाहुओं में अपने को अर्पित कर दिया। आनन्द की एक तीव्र जलती हुई धारा उनके दुःखों का गला घोंट कर और चेतना को थपकियाँ देकर सुलाती हुई बहने लगी। निक्को रोज़ अपनी देह को इसको उसको अर्पण करती रहती थी। पर वह जितनी ही निष्क्रिय रूप से अपनी देह को अर्पित करती थी उतना उसका मन उसके ग्राहक से हटता जाता था। वह तो केवल व्यापार होता था, जिसमें कम से कम देकर अधिक से अधिक लेना ही वसूल समझा जाता है।

पर आज और बात थी।

हरिकिशन जब आता था, तब और ही बात होती थी। आज उसने अपने को पूर्ण रूप से अर्पण किया। अन्य दिन केवलों देह का सौदा होता था, पर आज देह, मन, आत्मा और उससे भी कुछ अधिक हो तो उसका सौदा नहीं, बल्कि अर्ध्य था।

हरिकिशन अब निक्को के पास अधिकतर समय व्यतीत करने लगा।

:: ४० ::

सव्यसाची और सुजाता की शादी के केवल दो दिन रहे थे। पुरोहित ठीक हो चुका था। सव्यसाची का चेहरा इन दो-तीन दिनों में ही ऐसा झटक गया था, मानो वह कई दिन से उपवास कर रहा है। सुजाता उसे बराबर आँख के सामने रखती थी जिससे कि वह बिदक कर विद्रोह न कर बैठे। वह कोशिश करती थी कि सव्यसाची खुश रहे। पर सव्यसाची अधिक नहीं बोलता था, एक मासिक पत्रिका या ऐसा कुछ उठा कर पढ़ने का बहाना करता था। सुजाता बात करने की कोशिश करती थी, पर बात चलती नहीं थी।

सुजाता के विरुद्ध सव्यसाची के मन में धीरे-धीरे एक शिकायत बढ़ती

जा रही थी। वह यह है कि वह जब सुजाता के लिए इतना विराट त्याग कर रहा है, तो सुजाता को यह चाहिए था कि वह उसे पूरा किस्सा बता कर उस आदमी को बता दे। सव्यसाची के मन में इस सम्बन्ध में बहुत ही भारी कौतूहल मच रहा था। इस बात को जान कर उसका क्या लाभ है, पर इस पर भी वह समझ रहा था कि उसे जानने का अधिकार है। जब कोई किसी विषय में यह समझ लेता है कि यह उसका अधिकार है, तो उससे वंचित होने पर उसे बहुत कष्ट होता है।

उस दिन वह भावी पति-पत्नी परस्पर के प्रति उदासीन होकर कमरे में बैठे थे, इतने में अशोक ने वहाँ प्रवेश किया। अशोक को देख कर सव्यसाची की आँखें हमेशा की तरह चमकीं, पर अगले ही क्षण नवीन परिस्थितियों पर विचार कर बुझ गईं। सुजाता डरी।

अपनी बहन की ओर ध्यान न देकर अशोक सव्यसाची के पास एक कुर्सी खींच कर बैठ गया। भूतपूर्व शिक्षक और छात्र में कोई तीन-चार महीने बाद भेंट हुई। सव्यसाची ने कहा—'क्या हाल है?' पर मन ही मन उसे शंका हुई कि यह शायद उसी के लिए आया है। उसके माथे पर बल आ गये।

अशोक ने पूछे हुए प्रश्न का उत्तर न देकर और कोई भूमिका न बाँध कर आकस्मिकता के साथ कहा—'सव्यसाची भैया, आखिर आप भी?' वह और कुछ न कह सका, गला रुँध आया। उसका यह प्रश्न मानो जूलियस सीज़र के 'और तुम भी ब्रूटस' का अनुभव था। सुजाता पास ही में कुर्सी खींच कर करीब-करीब दोनों के बीच आकर बैठ गई।

सव्यसाची ने कहा—'क्या? क्या? मैं क्या?' अशोक मानो तैयार ही था, उसने अपना तोपखाना खोल दिया—'क्यों, आप अपनी पहली स्त्री के मौजूद रहते हुए दूसरी शादी करने जा रहे हैं। यह क्या है और? मैंने आप ही से बार-बार सुना है कि पोलीगैमी अर्थात् बहु-विवाह दासता का सबसे जघन्य रूप है। आपने ही कहा था कि पाश्चात्य के सामने पूर्व देश के लोग हार गये हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि यहाँ के लोगों में बहु-विवाह की प्रथा थी और यहाँ के लोगों ने स्त्रियों की इज्जत करना नहीं सीखा और आप ही इसे जारी रखने जा रहे हैं। सव्यसाची भैया, मैंने आपको इतना कमजोर नहीं सोचा था? आप अपने विचारों को कार्य रूप में परिणत करने की उपयुक्त रीढ़ हैं, पर अब मैं देख रहा हूँ कि यह धारणा गलत थी। भारतवर्ष में आज अच्छे विचारों की कमी नहीं है, भारतवर्ष आज जो मर रहा है तथा उसका सारा रक्त प्रतिक्रिया-

वाद के विष से जहरीला हो रहा है, उसका कारण यह नहीं है कि उसके लोगों में कच्ची कल्पनाओं को कार्य रूप में अनुवाद करने की और उसके लिए जिस त्याग की जरूरत है, उसे करने की हम में कमी है।'

अशोक उत्तेजना के मारे कुर्सी छोड़ कर खड़ा हो गया और कहने लगा—'जिस युग में मनुष्य नहीं जानता था कि बहु-विवाह अपराध है, उस युग की बात अलग है, पर आप से अधिक इस बात को कौन जानता है कि यह एक अत्यन्त दुष्ट प्रथा है। आप अपने सुन्दर ढंग से हमारे सामने इस बर्बर प्रथा के विरुद्ध जिन तर्कों को दिया करते थे, वे न तो मुझे याद ही हैं और न उनकी पुनरावृत्ति की कोई आवश्यकता है। आप सब कुछ जानते हैं।' कह कर उसने बहन की ओर मुँह फेर कर कहा—'और दीदी, तुम तो सब जानती हो, फिर तुम इस अपमानजनक व्यवस्था को क्यों स्वीकार कर रही हो? सव्यसाची बाबू को (अशोक ने सव्यसाची के साथ बाबू शब्द पहली ही बार इस्तेमाल किया) इसमें उतना अपमान नहीं है, बल्कि प्रचलित धारणाओं के अनुसार उनकी आत्म-श्लाघा पुष्ट ही हो रही है, पर तुम अपना तथा अपने नारीत्व का बहुत अपमान कर रही हो। तुम कहोगी कि यह प्रेम है, पर समझ नहीं पाता कि यह कैसा प्रेम है। इस प्रेम में कहीं पर जड़ में गलती अवश्य है, यह रोगग्रस्त असामाजिक प्रेम है......।'

इस प्रकार से अशोक तीखे तीखे शब्दों की चोट करने लगा। ज्वालामुखी जैसे गलित धातु उगल कर अपने क्रोध को व्यक्त कर पास की जमीन को विश्राम नहीं देता है, उसी प्रकार से अशोक तीखे तीखे तर्क तथा वाक्य पेश करने लगा। सुजाता और सव्यसाची दोनों चुप रहे। सव्यसाची एक शून्य दृष्टि से जंगले के बाहर दूर आकाश की ओर ताक रहा था। सुजाता सिर नीचा किये बैठी हुई थी। उस पर तर्कों का कोई असर नहीं हो रहा था। यों वह स्वयं विपत्ति में न होती तो अशोक का क्रोध उसे बहुत सुन्दर लगता, पर इस समय उसकी अपनी इज्जत यहाँ तक कि अपनी जान विपत्ति में होने के कारण वह अशोक की बातों को गुस्ताखी और बचपन के रूप में ले रही थी। वह अपने लिए शंकित नहीं थी कि उस पर अशोक की बातों का कोई असर पड़ेगा, क्योंकि उसके लिए विवाह कोई शून्य गर्भ भावुकता नहीं थी, एक अखंडनीय क्रूर वास्तविकता के कारण ही उसे इस विवाह के लिए तैयार होना पड़ा था। सुजाता सव्यसाची के लिए घबड़ा रही थी।

अशोक का व्याख्यान जितना ही जोशीला होता जा रहा था, सुजाता

को उतना ही भय होता जा रहा था कि कहीं ऐसा न हो कि सव्यसाची का धैर्य समाप्त हो जाय और वह एकाएक फट पड़ कर विवाह के रहस्य को खोल न दे। वह डर रही थी कि कहीं सव्यसाची अशोक के सामने पूरे सत्य को रख कर अपनी सफाई न देने लगे। वह सोच नहीं सकती थी कि अशोक उसे एक व्यभिचारिणी तथा भ्रष्टा समझे। सव्यसाची की बात और थी। उसे बिना कहे काम नहीं बनता था, फिर सव्यसाची को कहना एक दीवार के कहने के बराबर था। अशोक के सम्बन्ध में उसे यह भरोसा नहीं था, यद्यपि वह उसका सगा भाई था।

अशोक का व्याख्यान सुन कर सुजाता दाँत से दाँत दबा कर बैठी रही। धीरे-धीरे अशोक पर वह क्रुद्ध होने लगी। अशोक का वक्तव्य चाहे जितना ठीक हो, यह केवल अनधिकार चर्चा थी। अशोक अपनी अनजान में उसकी हानि कर रहा है, नहीं तो उसका उद्देश्य अच्छा है, इस विचार से सुजाता को तसल्ली नहीं हुई। अशोक जब इस तरह बोलता गया तो एक बिन्दु पर आकर सुजाता से और सहन नहीं हुआ, वह कुछ बोल भी नहीं सकी, पर उठ कर सव्यसाची की कुर्सी के बायें हत्थे को पकड़ कर खड़ी हो गई।

अशोक के सिर पर जैसे खून सवार हो गया था। यह अधिकतर उत्तेजना के साथ कहता गया—'भारत की लुप्त स्वतन्त्रता के उद्धार के लिए आपने एक ज़माने में प्राणों की बाज़ी लगा दी थी, कार्यक्षेत्र में जीवन के कुछ अमूल्य साल आपने जेल में काट दिये। इसके बाद प्लेग के सेवाकार्य में आपने कितनी विराट विपत्ति अपने ऊपर ली और आज वैद्यनाथ जी की मृत्यु के दो साल बाद आप ऐसा कृत्य करने जा रहे हैं, जिसे जिस भी दृष्टि से देखा जाय निन्दनीय ही कहना पड़ेगा। वैद्यनाथ जी की पवित्र स्मृति...'

वैद्यनाथ का बार-बार उल्लेख सुन कर सव्यसाची जैसे बौखला गया, उसके दोनों ओठ फड़कने लगे, मानो आँधी की तरह कोई शक्ति आकर उसके बन्द किवाड़ों को खोलने के लिए तड़फड़ा रही थी। वह उठ कर खड़ा होने लगा, पर सुजाता ने जल्दी से उसके हाथों को पकड़ कर बैठा दिया। इस प्रकार से बाधाग्रस्त होकर उसकी भावनाएँ भँवर के रूप में फूट कर आँखों के अन्दर से अश्रु रूप में फूट कर निकलने लगीं। सव्यसाची की आँखों से टपटप आँसू गिरने लगे, पर उसने कुछ नहीं कहा। सुजाता उसकी तरफ पीड़ित दृष्टि से ताकने लगी, उसकी दृष्टि में यह साफ आवेदन था कि सव्यसाची पर ही उसका जीवन तथा मृत्यु निर्भर है।

सव्यसाची को बच्चे की तरह देख कर अशोक थोड़ी देर के लिए किंकर्त्तव्य विमूढ़-सा हो गया, पर वह फिर बोलने लगा—'सव्यसाची भैया, अभी कुछ नहीं बिगड़ा है, शादी अभी टूट सकती है। अभी तक सिर्फ दो ही चार को यह बात मालूम है, सबको मालूम होने के पहले मुझे यह अधिकार दीजिए कि मैं इसका खण्डन कर दूँ और कह दूँ कि ऐसा हो ही नहीं सकता! दो स्त्रियों के जीवन को नष्ट न कीजिए। प्रतिक्रियावादियों के घरों में घी के दिये न जलाइए। देश के शहीदों के नाम पर मैं आपसे अपील करता हूँ, वैद्यनाथ जी की पवित्रता पर बट्टा न लगाइए।'

सव्यसाची से और सहन नहीं किया गया। वह उठ कर खड़ा हो गया। सुजाता ने बाधा देकर उसे रोकने की चेष्टा की, पर सव्यसाची ने उसके हाथ को झटके से छुड़ा लिया। सुजाता का हृदय ऐसे धड़कने लगा जैसे वह फट ही जायगा।

सव्यसाची ने कहा—'सुजाता जी, मुझे बात करने दीजिए। अशोक, झूठ-मूठ शहीदों को बीच में न घसीटो, मैं अपने काम के लिए जिम्मेदार हूँ। मुझे जितनी चाहे गलियाँ दो, पर शहीदों 'को घसीट कर कुछ फायदा नहीं...' कह कर सव्यसाची आत्म समर्पित की तरह फिर कुर्सी पर उसी तरह बैठ गया जैसे अब तक बैठा था।

अशोक एक मिनट के लिए हिचकिचाया। फिर एक कदम आगे बढ़ते हुए कहा—'आप चाहे जो कुछ कहें आप प्रतिक्रियावादी, गद्दार हैं। आपने अपने सारे गौरव को ग्लानि में परिणत किया है, क्रान्तिकारियों के लिए आप कलंक स्वरूप हैं। आपने मेरी सरल बहिन को फुसला कर पथ-भ्रष्ट किया है। आप उसकी कमजोरी का लाभ उठा रहे हैं।'

सुजाता ने एकाएक बीच में बोलते हुए कड़ाई के साथ कहा—'उन्होंने किसी को नहीं फुसलाया, बिल्कुल झूठ बात है'—सुजाता नागिन की तरह फुफकार रही थी। उसकी आँखें लाल हो चुकी थीं।

'झूठी बात नहीं है, बहुत ही सच्ची बात है। सच और झूठ समझने की तुम में तमीज़ रह थोड़े ही गई है, नहीं तो तुम इस तरह की एक अपमानजनक बात में राज़ी नहीं हो सकती थी'—इसके बाद वह कुछ रुक कर बोला—

'मुझे तो ऐसा मालूम हो रहा है कि तुम्हीं ने यह आफत की है, तुम्हीं ने सव्यसाची जी को इस घृणित शादी के लिए तैयार किया है। तुम्हारा व्यवहार देखकर ऐसा मालूम होता है कि इस शादी में जैसे तुम्हें ही अधिक उत्साह है।

माँ, माँ, माँ, तुम आज कहाँ हो ?'—अशोक असहाय की तरह सिसक-सिसक कर रोने लगा।

सुजाता का हृदय भीतर ही भीतर बैठा जा रहा था। अब तक अशोक पर जो गुस्सा आ रहा था, उसे अब रोते देखकर उसका हृदय द्रवित हो गया। वह सहन की अन्तिम सीमा पर पहुँच गया था। एकमात्र सगे भाई को भी उसे इस प्रकार से दूसरे के मकान पर रुलाना पड़ा, और उस रोने का कारण वह स्वयं थी फिर भी वह क्या कर सकती थी ? उसके तो हाथ पैर बँधे हुए थे। वह उस सत्य को कह नहीं सकती थी। कहने में एक डर यह भी था कि उसका भाई, सव्यसाची, का आदर्शवादी शिष्य कभी भी सव्यसाची को शायद यह विराट त्याग न करने दे। वह क्या करेगा यह मालूम है। वह कहेगा—'दीदी, अपनी इस नासमझी का नतीजा तुम स्वयं ही भुगतो, मैं तुम्हारा भाई हूँ, तुम्हारा साथ दूँगा।

सुजाता मन ही मन यह सोच कर हँसी कि और कोई इसमें साथ दे सके, भाई इसमें कोई मदद नहीं दे सकता। वह क्या कर सकता है ? पर सव्य-साची ? पर सव्यसाची सब कुछ कर सकता है ? नहीं उसे कठिन होना पड़ेगा।

सुजाता ने आगे बढ़कर अशोक के कंधे पर हाथ रख दिया और बोली—'छीः, अशोक दिमाग को ठंडा करो, जाओ घर जाओ...' उसने हाथ से दरवाज़ा दिखला दिया।

अशोक बिना प्रतिवाद किये वहाँ से निकल गया। जाते समय उसने सुजाता की तरफ इस प्रकार करुण नेत्रों से देखा, मानो अब वह अनाथ हो गया, अब उसका कोई भी नहीं रहा। इस दृष्टि के आघात से सुजाता भीतर ही भीतर पागल-सी हो गई, पर अत्यन्त कष्ट से इच्छा शक्ति के एक प्रचण्ड प्रयास से उसने अपने को सँभाल लिया।

सव्यसाची मुर्दे की तरह कुर्सी पर बैठ गया। उसमें मानो समस्त जीवन एकाएक स्तब्ध हो गया था। सव्यसाची खूब समझ रहा था कि आज जो कुछ अपमान हुआ यह तो केवल शुरूआत-मात्र है...। उसे यह उर्दू शेर याद आया—

इब्तदाये इश्क है रोता है क्या,
आगे आगे देखिये होता है क्या ?

पर इस अपमान के कारण उसने एक बार भी यह बात नहीं सोची थी कि किसी तरह जान छुड़ा कर भाग जाय, उसने यह नहीं सोचा कि पीछे चला जाय, बल्कि विरोध से उसका इरादा पक्का हो गया।

: ४१ :

हरिकिशन को निक्को के पास भी शान्ति नहीं मिली। वह शारीरिक उत्तेजना के द्वारा मानसिक अवसाद पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा कर रहा था, पर वह उसमें सफल नहीं हुआ। सुजाता की स्मृति एक प्रेत की तरह बराबर उसके मन को विक्षुब्ध कर रही थी। उसने यह सोचा कि वह अपने दुःख को भुला नहीं पा रहा है। इसमें शायद निक्को का ही कोई दोष है। उसका मन निक्को की तरफ से फिर गया। वह तिब्बी की दूसरी वेश्याओं के पास जाने लगा।

वह वेश्याओं की ठुड्डी पकड़ कर बहुत देर तक उनकी आँखों की तरफ एकटक देखता रहता, उन्हें निष्ठुरता के साथ मसलता मानों उनको मथ रहा है, उन्हें चिकोटी काटता था, और जब वे तकलीफ से कराहने लगतीं, तो वह उन के हाथ में एक रुपया या जो कुछ भी हाथ में आता दे देता। वे उसके मुँह की तरफ अजीब दृष्टि से देखती रह जातीं।

एक दिन हरिकिशन ने सन्ध्या समय के अखबार को खोल कर एक खबर पढ़ी। वह प्रसाधन आदि करके बाहर जाने के लिए तैयार हो रहा था, उसने सुना था कि काश्मीर से एक नया 'माल' आया है, जरा अखबार पर आँख फेर ले रहा था।

उसने दो-तीन बार खबर को पढ़ा। ठीक ही थी, भूल नहीं थी। खबर काशी के सम्बन्ध में थी। अखबार के निजी संवाददाता ने यह खबर भेजी थी इसके माने खबर में कोई गलती नहीं। निश्चय ही वह यही सुजाता है। काशी में कोई दस-बीस सुजाता और सो भी बैनर्जी नहीं हो सकतीं। पर यह सव्यसाची कौन है? सुजाता ने कभी भी उससे इसका नाम नहीं लिया था। उसने बहुत कोशिश की कि याद करे पर कुछ याद नहीं आया। वह फिर खबर को पढ़ने लगा।

(हमारे निजी सम्वाददाता द्वारा)

बनारस, ७ जून

'कल सन्ध्या समय लाठी धारी पंडों के पहरे में सव्यसाची कुमार और सुजाता बैनर्जी की शादी हो गई। कहा जाता है कि शादी हिन्दू मत से हुई। श्री कुमार की पहली पत्नी अभी जीवित है। कुछ उत्साही युवकों ने इस विवाह में बाधा देने की चेष्टा की, पर उस मकान में घुस ही न सके जिसमें शादी हो रही थी। इसलिए वे लोग भी आधी रात तक शोरगुल मचा कर लौट गये। बाधा देने वालों में कन्या का भाई भी था।'

खबर पढ़ कर न मालूम क्यों हरिकिशन बहुत खिन्न हो गया। उसने अपने को समझाने की कोशिश की कि सुजाता उसकी कोई नहीं है, पर इस बात से उसकी कोई तसल्ली नहीं हुई। पराजय और हानि की भावना से उसका हृदय हाहाकार कर उठा। उसने अपने को अपमानित, अवज्ञात तथा पद दलित समझा। उसने सोचा कि सुजाता ने उसके साथ अन्याय किया है, उसने विवाह से इन्कार किया था, पर उसने प्रेम तो किया ही था, अब भी प्रेम करता है। क्या प्रेम का कोई अधिकार नहीं? शादी में ही वह अन्त तक तैयार न होता ऐसी कोई बात नहीं, यदि वह इसकी जरूरत देखता तो शादी भी कर लेता, क्यों न करता? हरिकिशन इस समय इस प्रकार से तर्क करने लगा मानो वह तो शादी के लिए तैयार था। इस प्रकार वह आत्म समर्थन करने लगा। वह भूल गया कि कार्यक्षेत्र में बार बार अनुरोध तथा प्रार्थना करने पर भी उसने साफ-साफ इन्कार किया था।

उस दिन हरिकिशन कहीं न जा पाया। काश्मीर से आये हुए नये माल के प्रलोभन पर भी वह सोचते सोचते सो गया। नींद भी उसे अच्छी तरह न आई।

अगले दिन सन्ध्या समय उसने रोज़ की तरह प्रसाधन किया और उस काश्मीर के माल के यहाँ गया। बड़ी रात तक उसने उसे मसला दबा-दबा कर देखा कि उसके भीतर क्या है। उत्तेजना बार-बार उसे छोड़े जा रही थी। उसके अन्दर का पशु जैसे उसकी पशुता को समारोह में अंध और भीत होकर सब दब गया, बहुत चाबुक मारे पर फिर भी उस पशु ने जागना अस्वीकार किया, पर आज जैसे हरिकिशन पर भूत सवार था। कथित काश्मीरी नया माल नय माल नहीं था। वह हरिकिशन के रंग ढंग को देख कर अवाक् रह गई, पर उसने अपने शरीर को भाड़े पर दे दिया था इसलिए वह चुप रह गई।

हरिकिशन बार-बार जोश में आने की कोशिश करता गया, पर उसके अन्दर की आग पर जैसे राख पड़ गई थी। वह राख उड़ाये न उड़ती थी। रात्रि के अन्तिम पहर में हरिकिशन अवसन्न तथा क्लान्त हो कर लुढ़क गया।

पर यह नींद अधिक देर तक नहीं टिकी। वह एक भयंकर दुःस्वप्न देख कर नींद से जग गया। वह सुजाता को उसी प्रकार सरल, आत्मसमर्पिता तथा प्रेम-मयी रूप में देख रहा था जैसा वह हमेशा से थी। उस स्वप्न में उसने देखा कि एक भयंकर चेहरे वाला व्यक्ति सुजाता को उसके पास से खींच रहा है, वह किसी भी प्रकार उसकी रक्षा नहीं कर पा रहा है। उसने स्वप्न में उस पुरुष से

बहुत अनुरोध किया, फिर रोया-पीटा, फिर लड़ाई की, पर किसी प्रकार उसे बचा न सका।

जब वह जागा तो देखा कि वह पसीने से तरबतर हो रहा है और थोड़ा-थोड़ा काँप रहा है। उसने कल्पना कर ली, यह सव्यसाची कुमार ही वह व्यक्ति है जिसने उससे सुजाता को छीन लिया है। वह सव्यसाची को अपना प्रतिद्वन्द्वी तथा शत्रु समझने लगा।

स्वप्न अच्छी तरह भंग हो जाने पर उसने देखा कि कमरे की सब लालटेनें बुझ चुकी थीं। केवल एक लैम्प चुपचाप जल रहा था। उसने अपनी बगल में देखा कि छोकरी अधनंगी हालत में काठ की तरह निःस्पन्द पड़ी है। अभी तक उसके शरीर पर हरिकिशन के मसलने के चिह्न थे। कौन जाने इसका घर कहाँ है तथा इसका क्या इतिहास है। उसका मुँह अधखुला था, बाल बिखरे हुए थे, कुछ बाल मुँह पर आ पड़े थे, कुछ गले पर थे।

अभी कुछ देर पहले हरिकिशन जिसे आनन्द की आशा कर मसल रहा था, पीस रहा था, न मालूम क्या-क्या कर रहा था, इस समय इसे उसने एक जघन्य तथा घृणित कुतिया की तरह देखा। उसके अन्दर से एक विजातीय घृणा उबल पड़ी। उसने उठ कर उस पर एक लात जमाई फिर कमरे से आँधी की तरह निकल गया। वह छोकरी एक स्फुट शब्द कर एक आँख खोल कर फिर करवट बदल कर सो गई। उसके लिए यह कोई नई बात नहीं थी।

हरिकिशन ने उस दिन से वेश्या-गमन छोड़ दिया, पर खूब शराब पीने लगा और एक पिस्तौल निकाल कर खूब अभ्यास करने लगा। पहले वह बहुधा बन्दूक का ही अभ्यास किया करता था। उसके नौकरों ने इस पर विशेष ध्यान नहीं दिया, उसे वह पागल तो समझते ही थे। इन दिनों वह घंटों बैठ कर न मालूम क्या सोचा करता था, मानो कोई बड़ी भारी योजना बना रहा हो।

: ४२ :

संघ का एक जरूरी अधिवेशन हो रहा था। सव्यसाची के विवाह की निन्दा करने के लिए ही यह अधिवेशन बुलाया गया था। दर्शक के तौर पर सव्यसाची के क्रान्तिकारी युग के दो चार साथी भी उपस्थित थे। इन लोगों का अप्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं था। संघ के कार्य में भी उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं थी, पर आज वे एक भूतपूर्व साथी की ग्लानि तथा अपमान को देखने, बल्कि उपभोग करने के लिए आये थे। देश में जो नये-

नये क्रान्तिकारी पैदा हो रहे थे, उन्हें देखकर उनके मन में ग्लानि या पश्चाताप नहीं होता था, उनके साथ उनका कोई सम्बन्ध भी नहीं था, पर आँख के सामने उन्हीं के एक भूतपूर्व साथी सव्यसाची को किसी न किसी प्रकार देश के हलचलों के साथ त्याग स्वीकार करते हुए देख कर उनके मन में खटका लगता था। वे अपने को सव्यसाची के मुकाबले में हीनतर पाते थे और यह बात इनके लिए बहुत ही बेचैनी पैदा करने वाली थी। अब सव्यसाची की इस प्रकार भद्द होने के कारण उनके मन में कुछ शान्ति हुई थी। इस शादी की खबर को सुनकर वे चिल्ला पड़े थे—देख लिया—मानो जो हुआ था बहुत ही स्वाभाविक था। सबसे बड़ी बात जो उन्हें अनुभव हो रही थी, वह यह थी कि अच्छा ही हुआ कि हम इस बवंडर से अलग रहे।

सभा की कार्यवाही प्रारम्भ होने से पूर्व सदस्य आपस में बातें करने लगे।

सव्यसाची के विरुद्ध व्यक्तिगत तथा राजनीति के क्षेत्र के उसके विरोधी भी जिन बातों को कहने से हिचकते थे, यहाँ तक कि कल्पना भी नहीं कर सकते थे, वह भूतपूर्व साथी उस पर उन्हीं सब लांछनों को लगाने लगे। धीरे-धीरे अधिवेशन का प्रारम्भ हुआ।

द्वारका पांडे ने विषय का सूत्रपात किया। उसने जो कुछ कहा, उसका संक्षिप्त सार यह है—'मित्रो, आज हम प्रतिक्रियावाद की अशुभ छाया के नीचे एकत्र हुए हैं। हम में से एक जिस पर हमारी सबसे अधिक आशा थी, प्रतिक्रियावाद के हाथों में आत्म-समर्पण कर चुके हैं। उन्होंने किस कारण यह अपराध किया है, इसका विश्लेषण करने की हमारे पास न तो समझ है और न अवसर, पर इतना तो मानना ही पड़ेगा कि यह बहुत गलत हुआ है। दुनिया में मैं किसी ऐसी बात की कल्पना नहीं कर सकता जिससे इस अपराध का समर्थन न हो सके। हमारे एक योग्य साथी के पतन से न घबड़ा कर हम झंडे को और और भी ऊँचा थाम कर चलेंगे। प्रतिक्रियावाद का नाश हो!'

संघ के तरुण सदस्यों ने बहुत जोर के नारे लगाये। आशीष कुमार ने संघ के प्रस्ताव को पेश किया जिसमें सव्यसाची के विवाह की निन्दा की गई और उसके नाम को संघ के सदस्यों की सूची से निकाल दिया गया। सबने इसका समर्थन किया।

कुछ लोगों ने प्रस्ताव के पक्ष में व्याख्यान दिये, विरोध में किसी ने कुछ न कहा। डाक्टर ने पक्ष में या विपक्ष में कुछ नहीं कहा। प्लेग के दिनों में उसने सव्यसाची के साथ सेवा-कार्य कर जो उच्च धारणा बनाई थी, वह

इतनी स्पष्ट थी, साथ ही विवाह वाला तथ्य इतना घृणित था कि वह कुछ समझ नहीं पा सका था। वह अपने मित्र के इस प्रकार आकस्मिक पतन से हतबुद्धि हो गया था।

एक गर्म खून वाले नौजवान ने यह संशोधन पेश किया कि प्रस्ताव में सव्यसाची के नाम के साथ जो श्री लगा हुआ है उसे निकाल दिया जाय, और उसकी जगह पर रेनोगेड, प्रतिक्रियावादी या इस तरह का कोई शब्द लगाया जाय। इस नौजवान ने अपने प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा कि सव्यसाची ने ऐसा घृणित कुकर्म किया है कि उससे उसने अपने प्रति किसी भद्र व्यक्ति का प्राप्य सम्मान खो दिया है। अतएव उसके नाम के साथ श्री शब्द का प्रयोग भ्रामक होगा।

किसी ने संशोधन के प्रति ध्यान नहीं दिया कि यह भी ठीक है। पर किसी ने इसका प्रतिवाद नहीं किया। डाक्टर तथा आशीष कुमार को इससे यह मालूम हुआ कि इस विवाह से युवक समाज को कितना आघात प्राप्त हुआ। और भी दो चार ने व्याख्यान दिये, सभी सव्यसाची को बुरा-भला कहते रहे। दो-एक ने सुजाता को भी आड़े हाथों लिया। एक ने तो यहाँ तक कहा कि सव्यसाची का पतन बहुत ही स्वाभाविक था और इसमें कोई आश्चर्य करने की बात नहीं है, सव्यसाची केवल प्रगति का शत्रु ही नहीं, मानव समाज का शत्रु है।

संशोधन का किसी ने समर्थन नहीं किया इसलिए उस पर वोट नहीं लिया गया। प्रस्ताव जोरदार नारों के साथ मंजूर हो गया।

नौजवानों के विपुल उत्साह, गरम-गरम व्याख्यान तथा प्रदर्शन होने पर भी संघ के कुछ पुराने सदस्य दुःखी तथा गम्भीर प्रतीत हुए। क्या एक पुराने सहकर्मी के अपमान के कारण ही उनका यह विषाद था, या इसका कारण यह था कि जब सव्यसाची ऐसे दिमाग का पतन हुआ, तो अपने ऊपर ही क्या भरोसा, और फिर अपने ऊपर भरोसा नहीं तो आदर्श के सफल होने का क्या भरोसा ? वे बहुत दुःखी थे।

डाक्टर के चौड़े माथे पर चिन्ता की एक गहरी रेखा थी। क्रान्ति की जयमाला को पीछे हटते देख कर ही इस रेखा की सृष्टि हुई थी। डाक्टर ने सोचा कि लक्ष्य के लिए वे जो कुछ कर रहे हैं वह यथेष्ट नहीं है, इससे भी ऊँचे वोल्ट वाली दवा की जरूरत है। उसने यह समझ लिया कि दो नाव पर पाँव रखने से काम नहीं बनेगा, सारी शक्ति तथा समस्त समय लगा कर कार्यक्षेत्र में उतरना पड़ेगा।

पर आशीष कुमार को सव्यसाची के विवाह से आश्चर्य नहीं हुआ, मानो इसमें अपनी निराशावादी विश्व दृष्टि का ही समर्थन पा रहा था। वह नौजवानों का जोश देखकर मन ही मन हँस रहा था।

जो भूतपूर्व क्रान्तिकारी दर्शक के तौर पर इस अधिवेशन में सव्यसाची की ग्लानि का उपभोग करने आये थे, वे अन्त तक विशेष खुश होकर नहीं लौटे। सव्यसाची जिस समय तक गौरव के उच्च शिखर पर एक ज्योतिर्मय फव्वारे की तरह था, तभी तक वह उनकी आँखों में खटक रहा था, पर ज्योंही उन लोगों ने उसे अपनों से भी नीचे ग्लानि के अतल गह्वर में डूबते हुए देखा, त्योंही उनका मन दया से द्रवित हो गया। उनके हृदय में एक सहानुभूति का संचार हुआ। अब उसके साथ सहानुभूति करते उन्हें कोई कठिनाई नहीं थी, क्योंकि वह अब बहुत नीचे था। वे सदस्य जो पहले यह कह चुके थे कि सव्य-साची ने रुपयों के लिए शादी की थी, अब अपने आरोपों पर पश्चाताप करने लगे।

सव्यसाची को उन्होंने जो दिग्गज नाम से याद किया था, उसमें न केवल न्याय बुद्धि थी, बल्कि आत्म प्रशंसा भी थी। ये भूतपूर्व क्रान्तिकारी यह समझ कर अपने को तसल्ली देते थे कि वे नये क्रान्तिकारियों की तुलना में दिग्गज थे। हाय आत्म प्रवंचना!

यथा समय संघ के पत्रों में अधिवेशन का विवरण प्रकाशित हुआ। अन्य पत्रों में भी यह विवरण विशेष रूप से प्रकाशित हुआ।

: ४३ :

अपने सम्बन्ध में जो खबरें तथा नोट निकले सव्यसाची ने उन सब को देखा। अपने कार्य के फलस्वरूप उसने इन टिप्पणियों को स्वाभाविक समझा और इसलिए उनको उदासीनता के साथ ग्रहण किया। वह अपने मन में सम्पूर्ण रूप से निश्चिंत नहीं था कि वह जो कुछ कर रहा है वह ठीक ही कर रहा है, क्योंकि सरला का पहलू भी तो था। हाँ, सरला के कारण ही यह मामला जटिल हो गया था, नहीं तो क्या था? सव्यसाची ने यह सोचा कि सुजाता न आती तो वह सरला को पत्नी के सब अधिकार दे देता। वह इस दिशा में अपने को धीरे-धीरे तैयार कर रहा था, पर आँधी की तरह सुजाता के घुस आने के कारण उसके सारे मनसूबे मिट्टी में मिल गये, और एक बिल्कुल नये जीवन का सूत्रपात हुआ। कौन जानता है, यह पानी कहाँ जा कर ठहरेगा? सव्यसाची ने मन ही मन कहा—जाने दो।

वह मजबूरी से सार्वजनिक जीवन से हट गया । वह किसी के घर नहीं जाता था, और न वह किसी का आना ही पसन्द करता था, क्योंकि आने का अर्थ अप्रिय आलोचना और शायद अपमान भी था, जिससे वह बच नहीं सकता था । सुजाता प्रायः उसके साथ एक कमरे में बैठी रहती थी, पर दोनों में अपनी-अपनी दुनिया थी, वे उन्हीं में रमा करते थे जब तक अखबारों में सव्यसाची के विरुद्ध लिखना जारी रहा, तब तक सुजाता सव्यसाची पर अधिक ध्यान देती थी, पर ज्यों-ज्यों महीने बीतते गये, त्यों-त्यों वह सव्यसाची के इस त्याग को स्वाभाविक समझने लगी, बल्कि यह समझने लगी कि यदि सव्यसाची यह त्याग न करता तो गलती करता ।

सव्यसाची पुस्तकें पढ़कर तथा लिख कर ही समय बिताता था । दिन भर वह घर पर ही रहता था और दिया जलने के बाद वह लोकालय से दूर कहीं ऐसी जगह पर टहलने के लिए निकल जाता था कि जहाँ पर उसके भूतपूर्व मित्र उससे न मिलें । इसी प्रकार वह समाज से अलग तथा उसके द्वारा परित्यक्त होकर जीवन व्यतीत करता था । इस विवाह के बाद वह रसिकलाल के मकान की ओर नहीं गया, कैसे, किस मुँह से जाता । रसिकलाल भी नहीं आये थे, उन्होंने समझ लिया था कि उसकी सरला विधवा हो गई है ।

पुस्तकें पढ़ने के अतिरिक्त सव्यसाची का और एक विशेष काम यह था कि वह प्रकृति-पर्यवेक्षण किया करता था । उसका यह अनुराग बहुत पुराना था, पर गत कई एक सालों से, जब से वह छूटा था, काम के मारे इस दिशा में समय नहीं दे पाता था, पर जब से यह विवाह हो गया, और उसे सब कामों से छुट्टी मिल गई, तब से छत पर एक डेक चेयर पर बैठे हुए घंटों वह रात को आकाश की तरफ देखा करता था । वह मोटे तौर पर आकाश तथा उसके सदस्यों से परिचित था । अब साथियों को खो कर वह नक्षत्रों का साथ पसन्द करता था । रोशनी जो दुनिया में सबसे अधिक द्रुत वस्तु है, वह भी लाखों वर्ष में विश्व की परिक्रमा कर सकती है । कितना विराट और विपुल यह विश्व है । विश्व की विराटता और समय के अनन्तत्व पर विचार करते-करते वह अपने छोटे से जीवन की छोटी सी ट्रेजेडी भूल जाता था । छायापथ के छोटे-छोटे तारों की ओर देखते-देखते वह सोचता था कि मनुष्य के यह जो विभिन्न दर्शन शास्त्र हैं; क्या ये सब की सब कल्पना मात्र नहीं है ? यहाँ तक कि अनात्मवाद भी ? इस विश्व-जगत में मनुष्य का अस्तित्व कितना क्षुद्र है ? वैज्ञानिकों की तथ्य राशि का अनुसरण कर वह सोचता था कि पृथ्वी की उम्र दो सौ करोड़ साल, और उसी के अन्दर

मनुष्य जाति की उम्र केवल पचास-लाख साल है। इसके अर्थ यह हुए कि युगों तक पृथ्वी मनुष्यों से हीन होकर सूर्य के चारों तरफ घूम-घूम कर नाचती रही, भविष्य में पृथ्वी इतनी ठंडी हो जायगी कि उस पर मनुष्य रह न सकेंगे। फिर पृथ्वी मनुष्यहीन होकर रहेगी। तो ऐसा हालत में मनुष्य की सभ्यता, विज्ञान इनका क्या स्थायित्व है।

इसी प्रकार के नाना प्रश्नों को वह मन ही मन घण्टों सोचा करता था। स्पष्ट है कि पहले के युग की क्रान्तिकारी आग उसमें बहुत कुछ मर चुकी थी। उसके दुःखमय जीवन ने उसके मतवाद तथा हृदय पर अपनी छाया डाल दी थी। कभी-कभी सव्यसाची अपने इस परिवर्तन के कारण को समझ जाता था, उस समय वह समझता था कि उसका जीवन समाप्त हो आया है।

सव्यसाची सभी समय इस प्रकार की मानसिक अवस्था में रहता था, यह बात नहीं, पर जब वह गहराई के साथ अपने चारों ओर की दुनिया पर दृष्टि डालता था, तो उसकी चिन्ताराशि पर सहज ही में विषाद का अन्धकार-मय रंग चढ़ जाता था। वह किसी भी सूरत से अपने को इस हालत से मुक्त नहीं कर पाता था।

एक दिन सव्यवाची बड़ी रात तक छत पर बैठा रहा। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी, पर वह कम्बल में लिपट कर बैठा था। पूर्णिमा का चाँद समस्त आकाश में अपने शीतल प्रताप का विस्तार कर रहा था। छोटे-छोटे नक्षत्र जो मामूली रोशनी देकर जुगनू की तरह जीते थे, आप वे रोशनी के इस हंगामे से मुँह छिपा कर अलग हो गये थे। बहुत ही ठंडा हवा कभी-कभी उसकी हड्डियों तक को ठंडी कर रही थी। सव्यसाची आज आकाश के नक्षत्रों की ओर नहीं देख रहा था। वह एक फ्रेंच उपन्यास पढ़ रहा था। उसका मन उसी से पूर्ण था। वह उपन्यास की घटनाओं में बढ़ रहा था, इसीलिए आज उसे कुछ दुःख नहीं था। एक आशा उसके मन के अन्दर अंकुर की तरह सिर उठा रही थी। वह अकारण ही खुश हो रहा था। उसने अपने को कहा—'नहीं नहीं, मेरा जीवन समाप्त नहीं हुआ, समाप्त नहीं हो सकता...।'

उसे ऐसा मालूम हुआ कि समस्त विश्व प्रकृति उसकी बातों की प्रतिध्वनि कर रही है। वह पूर्ण चन्द्र, वे टिमटिमाते हुए तारे, यह चाँदनी से छलकता हुआ आकाश, यह जीवन से पूर्ण वायु सभी उसकी प्रतिध्वनि कर रहे हैं। सभी उसे कह रहे हैं कि जीवन व्यर्थ नहीं है, नहीं है।

सुजाता नीचे के कमरे में सो रही थी। सव्यसाची इस बात को जानता

था। इस बात का ज्ञान उसे आनन्द प्रदान कर रहा था। सुजाता, हाँ वही सुजाता, जिसने उसे इस जटिलता में डाल दिया है, जिसे ग्लानि और निन्दा से बचाने के लिए उसने अपने सार्वजनिक जीवन तथा सुयश पर लात मार कर एक बूढ़े भालू की तरह लोक समाज से दूर एक गुफा के अन्दर निवास कर रहा है, जिसके लिए उसने सब कुछ त्याग किया है, और जिसे वह प्यार करता है। सुजाता कोई नादान स्त्री नहीं है, वह क्या उसका त्याग की विराटता को समझती है या नहीं, फिर वह उसे क्यों दुतकारेगी? हमेशा उसकी यह बुद्धि विरोधी उदासीनता टिक नहीं सकती। उसने एक लम्पट को आत्म-समपर्ण किया था और वह तो उसका बाकायदा पति है। किसी से किसी मामले में निकृष्ट नहीं। फ्रेंच उपन्यास तथा पूर्णिमा के वातावरण में आज पहले पहल सव्यसाची की चेतना पर यह स्पष्ट हो गया कि वह रास्ते का आदमी, अपरिचित या आगन्तुक नहीं, बल्कि सुजाता का पति है। उसकी नसों में यह बात तर-तर करके बह गई।

एक बज चुका था। यंत्र-चालित की तरह सव्यसाची चलने लगा। उसके कमरे में जाते हुए रास्ते में सुजाता का कमरा पड़ता था। उस कमरे के किवाड़ खुले हुए थे। सव्यसाची ने चौखट पर खड़े होकर देखा कि सुजाता सो रही है। सुजाता की छाती पर का कपड़ा जरा-सा हट गया था, ठीक उतना ही जितने से कि उसकी लज्जा की हानि न होते हुए भी अंग सौष्ठव स्पष्ट हो जाता था। सव्यसाची ने अपने मन को टटोलकर देखा कि उसमें कोई विकार नहीं था। कलाकार की निःस्पृहता से वह उसे देखने लगा। उसे ऐसा मालूम हुआ कि सारे विश्व की समस्याओं का समाधान क्या नारी के रूप में मौजूद नहीं है? इस रूप को पा लेने, जीत लेने के बाद भी कोई, समस्या रहती है? पुरुष की सब समस्याओं का अवसान क्या नारी के रूप में नहीं हो जाता? सव्यसाची ने सोचा शायद पुरुष की सब समस्याओं का वास्तविक समाधान यह नहीं है, पर इसके कारण कम से कम उसकी सब समस्याएँ शान्त हो जाती हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। सव्यसाची ने सोचा अच्छा तो है। समस्याओं के सम्बन्ध में सिर खपाने से फायदा क्या है? उनका अन्तिम समाधान न तो कभी हुआ है, और न कभी होगा। उसने सोचा कि अनात्मवाद ही एक ऐसा वाद है, जो सत्य पर आश्रित है। इसमें कोई आत्म प्रवचना का प्रयास नहीं है, पर इससे क्या? पृथ्वी तो ठंडी होकर मनुष्य की बस्ती के लायक नहीं रहेगी, फिर? हाँ, विज्ञान है, वह भयंकर अंधकार में टिमटिमाती हुई बत्ती की तरह....

सव्यसाची इस प्रकार कितनी देर तक खड़ा होकर सोचता रहा, यह उसे नहीं मालूम। उसे यह भी नहीं मालूम था कि कब वह चौकठ पार कर सुजाता की खाट के पास खड़ा हो गया था। इतने में सुजाता ने शायद उसकी पैनी और गरम दृष्टि के कारण जाग कर आँख खोल दी और सव्यसाची को सामने देख कर डर कर बैठ गई। हाथ बढ़ा कर उसने बत्ती जला दी।

'आप! यहाँ पर?'

सव्यसाची हक्का-बक्का हो गया। सचमुच ही उसके यहाँ आने का कोई उपयुक्त कारण नहीं था, पर उसे सुजाता का गुस्ताखी भरी आवाज तथा परेशान आँखें पसन्द न आई। वह यों ही आया था, पर यह तिरस्कार और अपमान क्यों? क्या उसने उसके लिए विराट त्याग नहीं किया? फिर यह ढकोसला क्यों? सव्यसाची को क्रोध आ गया। वह पति का अधिकार भले ही न चाहे, पर यह क्या? उसने कहा—'क्यों? कोई दोष है क्या?'

'आपके साथ मेरा क्या समझौता था?' जरा रुक कर उसने कहा—'याद रखिए, कि मैं केवल नाम के वास्ते ही आपकी स्त्री हूँ।'

सव्यसाची ने खीज कर कहा—'हाँ, नाम से ही स्त्री है, पर स्मरण रहे कि तुमको बचाने के लिए ही मैंने अपने सार्वजनिक जीवन से इस्तीफा दे दिया। यह मेरे लिए विराट त्याग है, मृत्यु से भी अधिक। सुना है उन लोगों ने मुझे क्या-क्या कहा है? कायर, प्रतिक्रियावादी, रेनीगेड, जिनसे बढ़कर गालियाँ नहीं हैं। मुझ पर शेर बने हैं, मेरा व्यंग चित्र प्रकाशित हुआ है।' इसके बाद हाथ को पटकते हुए कहा—'खैर, वे गालियाँ दे रहे हैं, वे न तो जानते हैं और न कभी जानेंगे, पर तुम जो सब कुछ जानती हो, मुझ से इस प्रकार का व्यवहार कर रही हो। तुम्हें चाहिए था कि मेरे बोझों को बटाओ। पर तुमने ऐसा नहीं किया। जिसके लिए चोरी करूँ, वही? सोच कर देखो तुमने मेरे साथ कितना भारी अन्याय किया है।'

सुजाता सम्हल कर बैठती हुई बहुत सहज तरीके से बोली—'आपने मेरे लिए चोरी नहीं की, अपने लिए की थी।'

'कैसे?' भौहों पर बल लाते हुए सव्यसाची ने कहा—बाहर उस समय टन-टन कर दो बजे।

'कैसा क्या? न आप मुझसे लगाकेरन तथा उसकी खोजों के विषय में जिक्र कर मुझे वैसा करने के लिए न कहते, और न मैं ऐसी आफत में पड़ती।

सव्यवाची इन बातों के पूरे अर्थ को ग्रहण न कर सका, ग्रहण न

करना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी, क्योंकि उसे यह मालूम तो था नहीं कि कैसे क्या हुआ। पर सव्यसाची इतना समझ गया कि सुजाता उसी को अपने दुर्भाग्यों के लिए जिम्मेवार समझती है। वह यह भी समझ गया कि इस समय सुजाता जो कुछ कह रही है, वह क्रोध के आवेश में ही नहीं कह रही है, वह उसका सुचिन्तित मत है।

विषैली नागिन से डसे हुए व्यक्ति की भाँति लड़खड़ाता हुआ सव्यसाची उस कमरे से निकल गया। हाथ-पैर बँधा हुआ बाघ जिस प्रकार बंधन के कारण काँपता रहता है, सव्यसाची उसी प्रकार काँप रहा था। सुजाता ने पीछे मानो उसे चाबुक लगाते हुए कमरे के किवाड़ को धड़ाके के साथ बन्द कर दिया।

सव्यसाची ने उस दिन के बाद से सुजाता से कभी बात तक नहीं की। वह अपना सारा समय पढ़ने-लिखने में बिताने लगा। सुजाता दूर से उसके खान-पान की देख-रेख करती थी, पर पास नहीं आती थी। इसके अतिरिक्त वह अपने आसन्न-मातृत्व के विषय में व्यस्त थी।

यथा समय उसका बच्चा पैदा हुआ।

इस बच्चे को पा कर सुजाता अपना दुःख कुछ भूल गई। उसका मिजाज ठीक हुआ एक और दिन उसने सव्यसाची के पास स्वयं जा कर अपने रूखे व्यवहार के लिए माफी माँगी। सव्यसाची ने बच्चे को गोद में लिया, पर गोद में लेते ही उसे यह स्मरण हो आया कि समाज में यह बच्चा उसी का समझा जायगा, पर सुजाता को उसने न तो कुछ कहा और न उसके मुँह की तरफ ताका। सुजाता अपने बच्चे के कारण इतनी खुश थी कि उसने सव्यसाची की उदासीनता का कोई ख्याल नहीं किया।

सुजाता फिर सव्यसाची के साथ एक कमरे में बैठने लगी। सव्यसाची अपने काम में मस्त रहता था, सुजाता अपने लड़के में।

सुजाता बीच-बीच में शाम के समय घूमने जाया करती थी। बात यह थी कि उसे बहुत कम लोग पहचानते थे। एक दिन सड़क पर चलते-चलते उसे ऐसा मालूम हुआ एक गली में दो आँखें बहुत ध्यान से देख रही हैं। वह एकाएक चौंक पड़ी, फिर वह उसी गली में गई पर वहाँ किसी का पता नहीं था। वह अपनी कल्पना से स्वयं ही आश्चर्य में आ गई, क्योंकि यहाँ भला हरिकिशन कहाँ से आता? कहाँ लाहौर और कहाँ काशी? वह फिर अपनी राह चलने लगी।

सव्यसाची भी टहलने निकलता था, पर वह सन्ध्या के बाद निकलता था और वेनिया पार्क की ओर से होता हुआ सिमरा की तरफ जाता था। एक दिन अकस्मात् उसे किसी ने पीछे से बुलाया—'मिस्टर कुमार ! मिस्टर कुमार !'

उसने पीछे देखा, फिर रुक गया।

'जी'—उसने अँग्रेजी में कहा।

आगन्तुक सभ्य मालूम होता था। आगन्तुक ने अँग्रेजी में पूछा—'आप ही मिस्टर कुमार हैं ? क्या आप ही मिस्टर सव्यसाची कुमार हैं ?'

'हाँ'—सव्यसाची ने कहा—'क्यों कोई काम है ?'

आगन्तुक उसकी तरफ घूर रहा था। सव्यसाची को ऐसा मालूम पड़ा कि उसके मुँह से शराब की बू निकल रही है, पर यह भ्रम भी हो सकता था। सव्यसाची के प्रश्न का उत्तर बिना दिये ही वह व्यक्ति जैसे आया था वैसे ही चला गया। इस व्यक्ति के आने में, उसके चेहरे में, उसके रंग-ढंग में कुछ रहस्य था, इतना तो साफ था।

सव्यसाची के माथे पर बल आ गये। उसने सोचा खुफिया पुलिस का आदमी होगा।

पर वह खुफिया पुलिस का आदमी नहीं था।

... ...

जाड़ा करीब-करीब खतम हो आया था। जाने के समय जरा प्रचण्डता दिखला रहा था, दीया जैसे बुझने के पहले फक से जल उठता है। सव्यसाची ने अपनी पुस्तक 'भारत में निरीश्वरवाद का इतिहास' करीब-करीब खतम कर डाली थी, कुछ अन्तिम अध्यायों का लिखना बाकी था। बहुत कष्ट और परिश्रम से उसने यह पुस्तक लिखी थी। पुस्तक जर्मन विद्वान लांगे लिखित 'अनात्मवाद के इतिहास' की शैली तथा पद्धति से लिखी गई थी, पर इसमें भारतवर्ष के तथ्य थे। इस पुस्तक को लिखने के लिए सव्यसाची को भुलाई हुई संस्कृत फिर से सीखनी पड़ी थी। उसने इस पुस्तक में जिन बातों को लिखा था, उससे वह इस विषय का एक प्रकाण्ड विद्वान तथा प्रतिपादक समझा जाता इसमें सन्देह नहीं। आश्चर्य का विषय यह है कि इस बीच में सव्यसाची का मतवाद कुछ संदिग्ध हो जाने पर भी इस संदिग्धता की छाया उसकी पुस्तक पर नहीं पड़ी थी। जिस मनोवृत्ति से उसने लिखना प्रारम्भ किया था, अन्त तक वही ओज और आग मौजूद रही, बल्कि पुस्तक जितनी ही आगे बढ़ती जाती थी, उसमें गर्मी उतनी बढ़ती जाती थी।

सव्यसाची बैठ कर पुस्तक को खतम करने में लगा हुआ था। उसके सामने की मेज पर छोटी-बड़ी, मँझली तरह-तरह के आकार की पुस्तकें खुली, अधखुली या बन्द रखी हुई थीं। उसका सारा ध्यान काम पर था। सुजाता अपने बच्चे को पालने पर झुला रही थी। बच्चा सो रहा था। सुजाता का भी सारा ध्यान अपने काम में था। छोकरा नौकर सव्यसाची के पास बैठ कर हिन्दी की पाँचवीं किताब चुपचाप पढ़ रहा था। पढ़ते-पढ़ते उसने पन्ने उलट कर आगे के पाठ देखे।

उस समय दिन के कोई दस बजे होंगे। सुजाता अकस्मात् धाँय-धाँय शब्द से चौंक पड़ी। उसने डर कर सव्यसाची की तरफ देखा तो कि सव्यसाची ने आकस्मात् कुर्सी से उठने की चेष्टा की, पर खड़ा न हो सका। आँखों में आश्चर्य तथा आतंक की दृष्टि लेकर वह गिर पड़ा। सुजाता ने जो दूसरी तरफ देखा तो सामने ही हरिकिशन को देखा। उसके हाथ में चमकती हुई पिस्तौल थी। सुजाता ने देखा कि उसमें से धुवाँ निकल रहा है। आतंक उद्वेग तथा किंकर्त्तव्य विमूढ़ता से वह चिल्ला पड़ी। साथ ही साथ नौकर उल्का की तरह हरिकिशन पर झपटा, हरिकिशन ने कुछ मामूली हाथपाई की, पर बाद को पाशविक अट्टहास कर आत्म-समर्पण कर दिया। पिस्तौल खट से जमीन पर गिर पड़ी। मुहल्ले के लोगों ने आकर हरिकिशन को बाँध डाला।

बच्चा रोने लगा, पर सुजाता ने उसकी तरफ ध्यान नहीं दिया, वह सव्यसाची के पास गई।

सव्यसाची का प्राण-पखेरू उड़ चुका था। एक गोली सीधे सीधे उसके फेफड़े पर लगी थी। मरने पर भी उसकी दोनों आँखें मानो आश्चर्य से खुली हुई थीं, मानो वह मर कर भी कह रहा था क्यों, यह हत्या क्यों?

सुजाता बच्चे की तरह रोने लगी। सव्यसाची की हत्या के सम्बन्ध में जो कल्पना चल रही थी, उनमें से कुछ क्लिष्ट कल्पनाएँ भी उसके कानों में आ रही थीं, पर वे सब झूठी थीं। केवल सुजाता ही सारी बात जानती थी। एक सुजाता ही जानती थी कि हत्यारा कौन है! एक वही जानती थी कि यह कैसे और क्यों हुआ? इसलिए वह और भी करुण रूप से रोने लगी। उसने एक बार पीछे से बँधे हुए तथा फर्श पर डाल रखे हुए हरिकिशन को देखा, उसके मुँह की तरफ देख कर उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि इतने दिनों तक वह कितनी भयंकर आत्म-प्रवंचना करती रही है। नहीं, वह इस व्यक्ति को कतई प्यार नहीं करती। इसको? नहीं, कभी नहीं। इसी धारणा की यशवन्ती

होकर उसने इतने दिनों तक सव्यसाची की उपेक्षा की। कितनी भीषण है। वह सव्यसाची के सिर को गोद में रख कर उसी प्रकार से विलाप करने लगी, जिस प्रकार से हिन्दू विधवाएँ रोया करती हैं।

सव्यसाची चित्त हो कर पड़ा था, एकदम शान्त और नीरव। उसके जीवन का कार्य समाप्त हो चुका था। वह जिस पुस्तक को लिख रहा था वह उसी के रक्त से सिक्त हो कर उसी के पास पड़ी थी। गोली खाते समय पुस्तक उसके हाथ में थी।

सव्यसाची की रचना 'भारत में निरीश्वरवाद का इतिहास' उसी के रक्त से रंजित हो कर पड़ी थी, क्या सव्यसाची ने इस प्रकार निरीश्वरवाद के इतिहास को अपने रक्त से उसके अन्तिम अध्यायों को लिखा, या समस्त जीवन तक उसने जो कुछ लिखा था, उसे इस प्रकार लौटा ताजे रक्त से धो दिया? कौन इस प्रश्न का उत्तर देगा?

: उपसंहार :

सव्यसाची की मृत्यु के बाद सुजाता ने अपने जीवन के सारे तथ्य प्रकाशित कर दिये। फलस्वरूप सरला और सुजाता सौतें न रहीं। वे एक मकान में रह कर हिन्दू विधवाओं का जीवन व्यतीत करने लगीं। बच्चे के पालने का भार सरला पर ही पड़ा, क्योंकि सुजाता तरह-तरह की कृच्छ्र साधना से तथा जन-हित कर कार्यों से छुट्टी नहीं पाती थी। हरिकिशन अब पागलखाने में है: वह सचमुच ही पागल हो गया है। जिस संघ में सव्यसाची की निन्दा की गई थी, वहाँ अब सव्यसाची का एक बृहत् तैल-चित्र टँगा है। संघ के सदस्य अब उसकी प्रशंसा करते हैं। अशोक दीदी के साथ रहता है। आशीष कुमार ने शादी नहीं की और न करेगा। डाक्टर के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वे किसी गुप्त समिति में हो गये। अशोक भी गुप्त समिति में हो गया। संघ के तथा उपन्यास के अन्यान्य पात्र जैसे थे, वैसे ही हैं और रहेंगे।